Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

AVISHKAR 1990 Nov-Dec

G. K. V.
HARDWAR

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Foundation

Gurukul Kan

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079405

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079405

Stock Verification-2024

079405

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SSN 0970-6

आविष्कार

जनभाषा में रुचिकर विज्ञान की सशक्त अभिव्यक्ति

वम्बर 1990 3 रुपए

कैंसर की चपेट में फंसता भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विकेन्द्रित ऊर्जा—एक विकल्प

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायमंड कामिक्स में

मध्यम वर्गीय क्लर्क की समस्याओं से
जूझता कार्टूनिस्ट प्राण का अनूठा चरित्र

रमन

सैकड़ों ठहाकों से भरपूर
रमन का नया कामिक्स

विश्वभर में कम्प्यूटर से तेज
दिमाग वाला एक मात्र व्यक्ति-
चाचा चौधरी और ज्यूपिटर वासी साबू
एक बार फिर आये है मनोरंजन
और एक्शन से भरपूर
नयी कामिक्स के साथ

नवम्बर माह के अन्य कॉमिक्स

प्राण का– चन्नी चाची और चित्रहार	6.00
चाचा भतीजा और ठगसेन	6.00
लम्बू मोटू फांसी के फंदे पर	5.00
महाबली शाका और तिलस्मी ताबीज	5.00
पलटू और सात बौने	5.00
फैण्टम-VI (डाइजेस्ट)	12.00
मामा भांजा-III (डाइजेस्ट)	12.00

दिसम्बर माह के अन्य कामिक्स

ताऊजी और दैत्य का आतंक	6.00
फौलादी सिंह और पाताल लोक की रानी	5.00
राजन इकबाल और हत्यारा पत्थर	5.00
पलटू और शैतान पड़ोसी	5.00
चिम्पू और नकाबधारी शत्रु	5.00
फैण्टम-VII (डाइजेस्ट)	12.00
मोटू पतलू-IX (डाइजेस्ट)	12.00

NEW DIAMOND COMICS (NOV.)

Pran's– Raman & Kumbhakarna's Sleep	6.00
Pran's– Channi Chachi & Chitrahaar	6.00
Chacha Bhatija & Thug Sen	6.00
Lambu Motu On The Noose of Death	5.00
Mahabali Shaka & The Magical Amulet	5.00
Phantom-VI (Digest)	12.00

NEW DIAMOND COMICS (DEC.)

Pran's Chacha Chaudhary & Sheikh Ibnabututa	6.00
Tauji & The Terror of the Demon	6.00
Fauladi Singh & The Queen of Patal-Lok	5.00
Phantom-VII (Digest)	12.00

'विज्ञान-प्रगति' में
'गणित मनोरंजन'
नामक स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित
गणित के,
जादू जैसे मज़ेदार लगने वाले,
ढेर सारे खेलों से भरी

लोकप्रिय बाल-लेखक

आइवर यूशिएल

की पुस्तक

रोचक गणित

अन्य : रोचक सत्य • रोचक जादू • रोचक विज्ञान

पृष्ठ संख्या : 48 • आकर्षक बहुरंगी आवरण
सम्पूर्ण पुस्तक दो रंगों में मुद्रित • मूल्य : 8 रुपए

प्रकाशक : बाल-साहित्य शोध संस्थान, नई दिल्ली

डॉयमण्ड इंगलिश स्पीकिंग कोर्स

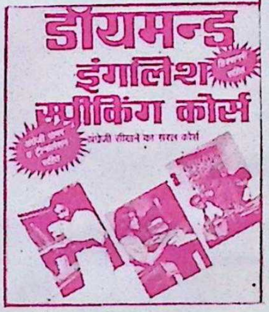

दुनिया में तहलका मचा देने वाला
अद्भुत पात्र

फैण्टम

की रोमांचकारी कहानियों का
रंगीन पिटारा 96 रंगीन पृष्ठों में
हिन्दी व अंग्रेजो में साथ-साथ
हर माह प्रकाशित की जाएंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

डायमंड कामिक्स प्रा. लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयुक्त प्रौद्योगिकी के विकास और संवर्धन की त्रैमासिक पत्रिका

"ग्राम शिल्प"

यदि आप गांव में रहते हैं
गांवों के विकास से सम्बन्धित कार्य में लगे हैं
या गांवों की समस्याओं का हल
विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सहायता से करना चाहते हैं
और गांवों में विज्ञान और प्रौद्योगिक जानकारी का
प्रसार करने में रुचि रखते हैं

तो **"ग्राम शिल्प"**

आपकी पत्रिका है

ग्रामीण प्रौद्योगिकी पर नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन की त्रैमासिक पत्रिका "ग्राम शिल्प" का वार्षिक मूल्य 3 रुपए और एक प्रति का मूल्य 1 रुपया है. एक से अधिक वर्ष के लिए चन्दे की रियायती दरें उपलब्ध हैं. ग्राहक बनने के लिए मूल्य मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट द्वारा निम्न पते पर भेजें. विज्ञापन की दरों के लिए लिखें:

प्रबन्ध निदेशक
नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
(भारत सरकार का उपक्रम)
20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केन्द्र, कैलाश कालोनी एक्स्टेन्शन
नई दिल्ली-110048

एजेंटों के लिए आकर्षक कमीशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आविष्कार' की विज्ञापन दर

	एक विज्ञापन	छः विज्ञापन	बारह विज्ञापन
आवरण पृष्ठ	3500 रु०	17,850 रु०	33,600 रु०
भीतरी आवरण पृष्ठ	3000 रु०	15,300 रु०	28,800 रु०
पूरा पृष्ठ	2000 रु०	10,200 रु०	19,200 रु०
आधा पृष्ठ	1200 रु०	6,020 रु०	11,520 रु०
चौथाई पृष्ठ	800 रु०	4,080 रु०	7,680 रु०
कालम साइज (5.5×5.5 से० मी०)	400 रु०	2,040 रु०	3,840 रु०

- बारह या अधिक विज्ञापनों के अनुबंधों के लिए विशेष विज्ञापन दर बातचीत द्वारा तय की जा सकती है.

- प्रत्येक अतिरिक्त रंग के लिए : 1000 रुपए

पूर्ण विवरण के लिए लिखें

प्रबंध निदेशक

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन

20-22, जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048

ग्राम : 'अनुसंधान विकास'

फोन : 6432580

क्या आप जानते हैं कि

'विज्ञान'

- राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान की सर्वप्रथम पत्रिका है.
- कि इस पत्रिका में विज्ञान के विविध विषयों पर सरल एवं रोचक भाषा में सामयिक लेख, विज्ञान समाचार आपको घर बैठे मिलते हैं.
- कि 25 रुपए भेज कर आप वार्षिक या 60 रुपए भेज कर त्रैवार्षिक या 200 रुपए भेज कर आजीवन सदस्य बन सकते हैं.
- कि 'विज्ञान' (मासिक) अप्रैल 1915 से निरन्तर प्रकाशित हो रही है.
- कि विज्ञान के शीर्षस्थ लेखक यथा प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा, डॉ० गोरख प्रसाद, स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती इस पत्रिका के सम्पादक रह चुके हैं.
- कि इस पत्रिका के माध्यम से 'विज्ञान परिषद, प्रयाग' में आयोजित संगोष्ठियों, व्याख्यानों और अन्य गतिविधियों की भी जानकारी मिलती है.
- कि 'विज्ञान' में प्रकाशित प्रतिवर्ष 3 सर्वश्रेष्ठ लेखों को 'डॉ० गोरख प्रसाद पुरस्कार' प्रदान किया जाता है.
- कि नए लेखकों के लेख छाप कर उन्हें प्रोत्साहित किया जाता है.

आज ही अपना चंदा भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करा लें

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

संपादक

विज्ञान परिषद, प्रयाग

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद—211002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविष्कार

नवम्बर 1990 वर्ष 20, अंक 11

प्रवंध निदेशक
एन०के० शर्मा

प्रमुख (आई०पी०पी० एवं इ०)
एम०पी० भटनागर

•

वरिष्ठ सम्पादक
डी०एन० भटनागर

सम्पादन सहायक
राघवेंद्र कुमार शर्मा
आर०के० अन्थवाल

•

उत्पादन अधिकारी
चन्द्र मोहन

•

मुद्रण कार्य सहायक
राधे श्याम अरोड़ा
अरुण कुमार अरोड़ा

•

व्यावसायिक चित्रकार
के०के० थपलियाल

•

वरिष्ठ चित्रकार
नबनीता भौमिक

■ 'आविष्कार' नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (एन आर डी सी) द्वारा प्रकाशित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की लोकप्रिय मासिक पत्रिका है.

■ लेखकों के कथनों व मतों के लिए कारपोरेशन उत्तरदायी नहीं है.

■ 'आविष्कार' में प्रकाशित सामग्री का किसी भी रूप में उपयोग करने से पूर्व सम्पादक की अनुमति लेना जरूरी है.

एक प्रति : 3 रुपए
वार्षिक मूल्य : 30 रुपए

फोन: 6432580, 6419929, 6419945, 6419947 टेलेक्स: 031-71358
टेलीग्राम : 'अनुसंधान विकास'

इस अंक में

407 चट्टान निक्षेपों द्वारा काल का निर्धारण
—डा० विजय कुमार उपाध्याय

409 कैंसर की चपेट में फंसता भारत
—डा० अचल गर्ग

414 विकेन्द्रित ऊर्जा—एक विकल्प
—एस० पॉल

419 भारत में परमाणु ऊर्जा के जनक—होमी जहांगीर भाभा
—पूनम वार्ष्णेय

388 आपकी प्रतिक्रियाएं

390 व्योमविहार

393 **आविष्कार मंच** : पानी की टंकी भरने पर सूचित करने वाली युक्ति. शून्य वोल्ट से 220 वोल्ट तक का वोल्टता रेग्यूलेटर. बिना चोक के फ्यूज ट्यूब लाइट जलाएं. फ्यूज ट्यूब लाइट को पुनः जलाए.

395 **समाचारिकी** : सौर विकिरण से अधिक कपास उत्पादन. कंप्यूटर टोमोग्राफी से प्रकाश वल्बों की गुणवत्ता में सुधार. अच्छी गुणवत्ता के कच्चे तेल के लिए देशज प्रौद्योगिकी. भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लि० की प्रौद्योगिकियों का एन आर डी सी द्वारा व्यापारीकरण.

397 **विज्ञान के विविध आयाम** : प्रकाशिक कंप्यूटर में सूक्ष्म छिद्र होलोग्राफी. औषधि विज्ञान में भौतिकी का योगदान. कहीं हम साफ-सफाई के नाम पर विषाक्तता तो नहीं फैला रहे ? मेरुदंडी प्राणियों की उत्पत्ति : नई खोज. रेगिस्तान में छिपे पानी की खोज. कैंसर के विरुद्ध कंप्यूटर का अभियान. जलस्रोतों का दम घोंट रही—एक घातक खरपतवार.

420 **विज्ञान साहित्य चर्चा** : गंगा तेरा पानी दूषित. महान वैज्ञानिकों की जीवन गाथा. मानव और प्रकृति के शाश्वत संबंधों की जानकारी.

424 **क्या और कैसे ?** : विद्युत कैसे उत्पन्न की जाती है? विद्युत परिपथ में फ्यूज क्यों उड़ जाता है? विद्युत का संप्रेषण. दो जीवित तारों के बीच वोल्टता 400 वोल्ट क्यों होती है ?

430 अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी प्रतिक्रियाएं

'आविष्कार' का यह अंक आपको कैसा लगा? किस लेख विशेष ने आपको प्रभावित किया? किस अंक में आपको क्या अखरा? 'आविष्कार' से आपको क्या अपेक्षाएं हैं—ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके बारे में यदि आपके सुझाव मिलते रहें तो 'आविष्कार' को आपकी आशा-अपेक्षाओं के अनुरुप ढालते रहने में हमें मदद मिलेगी. आपकी रचनात्मक टिप्पणियों और विचारों का स्वागत है.

—वरिष्ठ सम्पादक

□ **आविष्कार : कुछ सुझाव :** मैं 'आविष्कार' का नियमित पाठक हूँ. मुझे इसके सभी लेख अच्छे लगते हैं, विशेषकर 'हम सुझाएं आप बनाएं', 'समाचारिकी', 'आविष्कार मंच', 'नए उत्पाद नई तकनीकें', 'व्योमविहार', 'खेल खेल में विज्ञान' इत्यादि के लेख. मैं 'आविष्कार' को राष्ट्रीय स्तर पर हर विज्ञान के विद्यार्थी के पास देखना चाहता हूं इसके लिए मेरे कतिपय सुधार या सुझाव हैं :

1. पत्रिका के पृष्ठ बढ़ा कर कम से कम 100 कर दिए जाएं जिससे यह विज्ञान की लगभग सभी मूलभूत शाखाओं का प्रतिनिधित्व कर सके.

2. 'स्त्री और विज्ञान' तथा 'प्रेरणा' नामक दो स्तम्भ अवश्य आरंभ करें. 'स्त्री और विज्ञान' में महिलाओं के लिए विज्ञान संबंधी नई तकनीकों का वर्णन और 'प्रेरणा' में कम से कम एक वैज्ञानिक की जीवनी छापें.

3. यदि 'घरेलू विज्ञान' संबंधी कोई लेख हर अंक में निकाला करें तो आम पाठक वर्ग की विज्ञान संबंधी जिज्ञासाओं का भी तुष्टिकरण होता रहेगा.

4. गणित का भाग पत्रिका में अलग कर दें जिसमें गणित संबंधी लेख अन्य लेखों के पृष्ठाभाव से पाठक तक पहुंचने में वंचित न हों.

5. कम ने कम छः माह में एक बार इलेक्ट्रोनिक्स का एक विशेषांक दें. मैं समझता हूं आप मेरे सुझाव पर अवश्य अमल करेगें. फिर देखिए 'पत्रिका' का पाठक वर्ग में कितना आदर होता है.[**सुभाष चन्द्र पाण्डेय, पाण्डेय लेन, रवीन्द्र नगर, खरिका, लखनऊ-2**].

□ **संपूर्ण अंक ज्ञानवर्धक :** 'आविष्कार' का जून 1990 का अंक संपूर्ण रूप से ज्ञानवर्धक रहा. पत्रिका में प्रकाशित संपूर्ण सामग्री पर्याप्त थी. पर्यावरण दिवस पर प्रकाशित प्रदूषण पर लेख अति ज्ञानोपयोगी रहा. इस लेख को पढ़कर हमें ज्ञात हुआ कि यदि देश को खुश रखना एवं विकसित करना है तो दो बातों पर नियंत्रण रखना होगा : (1) जनसंख्या वृद्धि, और (2) वृक्षों की अंधाधुन्ध कटाई.

इन बातों पर जब तक ध्यान नहीं दिया जाएगा देश कभी पूर्ण रूपेण अपने कदमों पर खड़ा न हो सकेगा. देश की प्रगति एवं खुशहाली हम देशवासियों पर ही निर्भर है. यदि हम ही सचेत नहीं रहेगें तो देश को कौन संभालेगा. प्रदूषण पर प्रकाशित डा० जगदीप सक्सेना एवं डा० दिव्या श्रीवास्तव के लेख सराहनीय रहे.

'आविष्कार मंच' अति ज्ञानोपयोगी रहा. 'व्योमविहार', 'समाचारिकी', 'खेल खेल में विज्ञान' पत्रिका के मुख्य आर्कषण रहे. पत्रिका अपनी लम्बाई-चौड़ाई के साथ-साथ अधिक सामग्री भी प्रकाशित कर रही है. विज्ञान वर्ग के पाठकों एवं गणित के पाठकों हेतु उपयोगी पत्रिका है. आशा है आप इसी तरह ज्ञानवर्धक लेख प्रति माह प्रकाशित किया करेंगे. 'आविष्कार' के इस अंक में 'क्या और कैसे?' भी अति उत्तम रहा. इसे पढ़कर हमें नवीन जानकारी प्राप्त हुई. कृपया अगले अंक में प्रकाशित 'क्या और कैसे?' में निम्न प्रश्नों को भी शामिल करें तो उचित होगा :

1. प्याज काटते वक्त आंख से पानी क्यों आता है?

2. किसी चटपटी वस्तु को देखकर मुंह में लार क्यों आ जाती है?

इसके अतिरिक्त पत्रिका में 'प्रश्नमंच' नामक नया स्तंभ भी प्रकाशित किया जाए जिसमें पाठकों द्वारा भेजे गए प्रश्नों के उत्तर प्रकाशित किए जाएं.[**निरंजन कुमार चौरसिया, राणा संजय कुमार सिंह, राकेश कुमार शुक्ल, मोहम्मद शोएब अजीज, बी० एस-सी०, प्रथम वर्ष, कमला नेहरू संस्थान, सुल्तानपुर, उत्तर प्रदेश-228001**].

□ **वन ही नहीं हर पेड़ बचाना होगा :** मैं 'आविष्कार' का अनन्य पाठक हूँ. इसकी कहां तक प्रशंसा की जाए. वास्तव में इसमें प्रकाशित रचनाएं ही प्रशंसा के योग्य होती हैं.

मैने 'जून 1990' अंक में प्रकाशित लेख 'वन ही नही हर पेड़ बचाना होगा' पढ़ा. अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं प्रेरणाप्रद लगा. यदि हम केवल एक वृक्ष का सम्मान नही कर सकते तो वनों का क्या सम्मान कर सकेंगे और इसे भी नहीं भूलना चाहिए कि 'वन सम्पदा' ही एक ऐसी सम्पत्ति है जो किसी भी राष्ट्र के सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक तत्वों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से निर्धारित करती है. इसलिए हमें प्रत्येक वृक्ष को उतना ही आश्रय देना चाहिए जितना कि एक वन को.

इसके अतिरिक्त आपके इलेक्ट्रोनिक जगत में 'बिना बिजली का रेडियो' पढ़ा और बनाया भी. यह अच्छी तरह कार्य कर रहा है परंतु मेरी हमेशा से यही जिज्ञासा रही है कि आप कभी न कभी इस पत्रिका में ट्रांजिस्टर या बाल्ब प्रयुक्त 'बिना बिजली का रेडियो' अवश्य ही प्रकाशित करेंगे जिससे हम पाठकगण प्रत्येक प्रवर्धित प्रसारण को अच्छी तरह सीकर के माध्यम से सुन सकेंगे.

निःसंदेह यह विशिष्ट ज्ञान (विज्ञान) के क्षेत्र में उत्कृष्ट पत्रिका है. [**राजकुमार मिश्र, श्री हरिश्चद्र महाविद्यालय, वाराणसी**].

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□ **हमारी जिज्ञासा :** मैं 'आविष्कार' का काफी लंबे समय से नियमित पाठक हूं. इसमें प्रकाशित सभी लेख ज्ञानवर्धक तथा रुचिकर होते हैं. इसका 'हम सुझाएं आप बनाएं' स्तंभ हमें विशेष पसंद आता है. जून 1990 में प्रकाशित 'बिना बैट्री का रेडियो' हमने बिना किसी कठिनाई के सफलतापूर्वक बनाया है. मोदीनगर दिल्ली से 35 किलोमीटर दूर है फिर भी हम इसके द्वारा स्पष्ट रूप से दिल्ली 'ए' तथा 'बी' सुन लेते हैं. अर्थ हमने इसे अपने हाथों से दिया तथा ऐंटीना की जगह टी० वी० ऐंटीना जो कि 8-10 मीटर ऊंचाई पर है, इस्तेमाल किया हुआ है. 'आविष्कार' से हमें अन्य बहुत अपेक्षाएं हैं जैसे 'रोचक गणितीय सामग्री', 'विज्ञान कार्टून' तथा 'आपकी उलझन हम सुलझाएं' आदि बहुत कुछ. हमारे मन में विज्ञान की अनेकों जिज्ञासाएं हैं क्या आप उनका निदान करने का कष्ट करेंगे :

1. इलेक्ट्रोनिक उपकरण (जैसे कैलकुलेटर) बरसात में नमी से बंद क्यों हो जाते हैं?

2. गिलास में ठंडा पानी लेने पर गिलास के बाहर भी पानी आ जाता है, क्यों?

3. मनुष्य दिन में श्वसन अपने बाएं नासाछिद्र से करता है तथा रात्रि में दाएं नासा छिद्र से क्यों? तथा 'हम सुझाएं आप बनाएं' के अंतर्गत ऐसी युक्ति बनाना बताएं जिसे किसी भी ऑडियो उपकरण से जोड़ने पर स्टीरियो सिस्टम जैसी आवाज प्राप्त हो.[**अरूण कांत जिन्दल, आदर्श नगर, मोदी नगर-201204 (उ० प्र०)**].

□ **अतिचालकता, चुनौतियां और उपलब्धियां :** आपके संस्थान द्वारा जिन पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जाता है वे सभी अपने आप में विशेष तथा अत्यंत ज्ञानवर्धक होती हैं.

इनमें 'आविष्कार' पत्रिका मुझे काफी पसंद आती है. इस पत्रिका के मई 1990 के अंक में 'मनुष्य की आंख अंतरिक्ष में' एवं 'अतिचालकता , चुनौतियां और उपलब्धियां' विशेष ज्ञानवर्धक लेख थे. पत्रिका के स्थायी स्तंभ 'आविष्कार मंच', 'हम सुझाएं आप बनाएं' आदि मुझे काफी पसंद आते हैं.

मैं 'आविष्कार' का नियमित पाठक हूं. यह मेरे जीवन की मार्गदर्शक बनकर विज्ञान के हर क्षेत्र की विस्तृत जानकारी देती रही है. इसमें छात्रगण भी इसका लाभ उठा सकें.

संक्षिप्तियां या किसी अन्य स्तंभ या लेख के अंतर्गत किसी नई वस्तु के निर्माण की जानकारी प्रदान की जाती है उसमें निर्माण संस्थान का पूरा पता तथा उसकी लगभग कीमत भी अवश्य दी जानी चाहिए ताकि आवश्यकता पड़ने पर प्राप्त की जा सके. [**गोवर्धन अग्रवाल, 211, आजाद नगर, बिल्हा, बिलासपुर-495224**].

□ 'आविष्कार' के मई 1990 के अंक को देखकर आश्चर्य से आखें जैसे चुधिंया गईं इतनी बेहतरीत कवरेज और एक से बढ़कर एक लेख कि क्या कहने. और पत्रिका का आकार भी बड़ा था. इसके सारे लेख 'एड्स और अतिचालकता', 'व्योमविहार' और 'विज्ञान के विविध आयाम' काफी रोमांचक थे. इस बार मैं पत्र लिखने से अपने आपको रोक नहीं सका. वैसे मैं इस पत्रिका का नियमित पाठक हूं. पहले पहल मैंने 'नव०-दिस० 1986' 'पर्यावरण' की जानकारी के लिए खरीदा और उसके बाद से लगातार मैं इसका पाठक हूँ. मुझे इलेक्ट्रोनिक का काफी शौक है. इसकी जानकारी मुझे 'आविष्कार मंच' और 'हम सुझाएं आप बनाएं' से मिलती रहती है. मैने इसकी सहायता से काफी सर्किट तैयार किए हैं. हिन्दी में विज्ञान की इतनी अच्छी पत्रिका शायद ही कोई हो. आशा है कि आप पत्रिका को और भी सुंदर बनाने का प्रयत्न करेंगे.[**सुभाष चन्द्र गुप्ता, डी 2, फ्लैट-55, आर० टी० एस० बेगुसराय-851117**].

□ **हम सुझाएं आप बनाएं :** मैं द्वितीय वर्ष मैकेनिकल इंजीनियरी का छात्र हूं. मुझे आपकी पत्रिका के 'हम सुझाएं आप बनाएं', 'आपकी प्रतिक्रियाएं', 'आविष्कार मंच' तथा 'समाचारिकी' आदि स्थाई स्तंभ बहुत पसंद हैं. आपकी इस पत्रिका के स्थाई स्तंभ 'हम सुझाएं आप बनाएं' के अंतर्गत इलेक्ट्रोनिक्स से संबंधित सामग्री दी जाती है. मेरा सुझाव यह है कि पत्रिका के इस स्तंभ में मेकेनिकल और विद्युत से संबंधित जानकारी भी दी जाए. [**अब्दुल गफूर, सुपुत्र श्री वफाली खां रंगरेज, खरादी मोहल्ला, वार्ड नं० 20, सवाई माधोपुर-322021 (राजस्थान)**].

□ मैं विगत दो वर्षों से 'आविष्कार' का नियमित पाठक हूं. यह मेरा दूसरा पत्र है. पहले पत्र को प्रकाशित न देख निराशा हुई और मैने पत्र लिखना छोड़ दिया परंतु जून 1990 का अंक पाकर फिर से पत्र भेजने की तमन्ना हुई.

यह पत्रिका 'गागर में सागर' के समान है. जून 1990 के अंक में 'हम सुझाएं आप बनाएं' के अंतर्गत 'बिना बिजली से चलने वाला रेडियो', '12 वोल्ट डी सी से जलाएं ट्यूब-लाइट' अत्यंत प्रशंसनीय रहे हैं, और मैने इसका सफल प्रयोग भी किया है. कृपया इसके अंतर्गत लगे सामान का अनुमानित मूल्य भी दिया करें. 'आविष्कार मंच' में प्रकाशित 'संगीतमय हार्न' तथा 'घरेलू सामान से हेडफोन' भी रोचक रहे.

'समाचारिकी' में प्रकाशित 'सीधे टी० वी० अभिग्रहण के लिए नई एंटीना प्रणाली' के बारे में कृपया विशेष जानकारी दें. विश्व पर्यावरण दिवस पर प्रकाशित लेख ज्ञानवर्द्धक थे. 'खेल खेल में विज्ञान' के तो क्या कहने! इनके लेखक आइवर यूशियल को भी धन्यवाद. 'क्या और कैसे' ने हमारे विज्ञान के कोष को बढ़ा दिया है.

'आविष्कार' में 'पत्र मित्र स्तंभ' और 'पाठकों द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर' नामक स्तंभ जोड़कर इस पत्रिका की महत्ता में चार चांद लगा दें.[**राजेश कुमार झा, 'राजा', सुपुत्र प्रो० अमर नाथ झा, पटना, गढ़ी रोड, जयनगर, मधुबनी-847226-बिहार)**].

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्योमविहार

आविष्कार के इस स्तंभ में हम आपका परिचय नए तारामंडलों से कराते हैं. आप केवल निर्देशों का पालन करते जाएं, आपके सामने खुलता जाएगा तारों, ग्रहों और नक्षत्रों का अनोखा संसार. आपकी प्रतिक्रियाओं का स्वागत है.

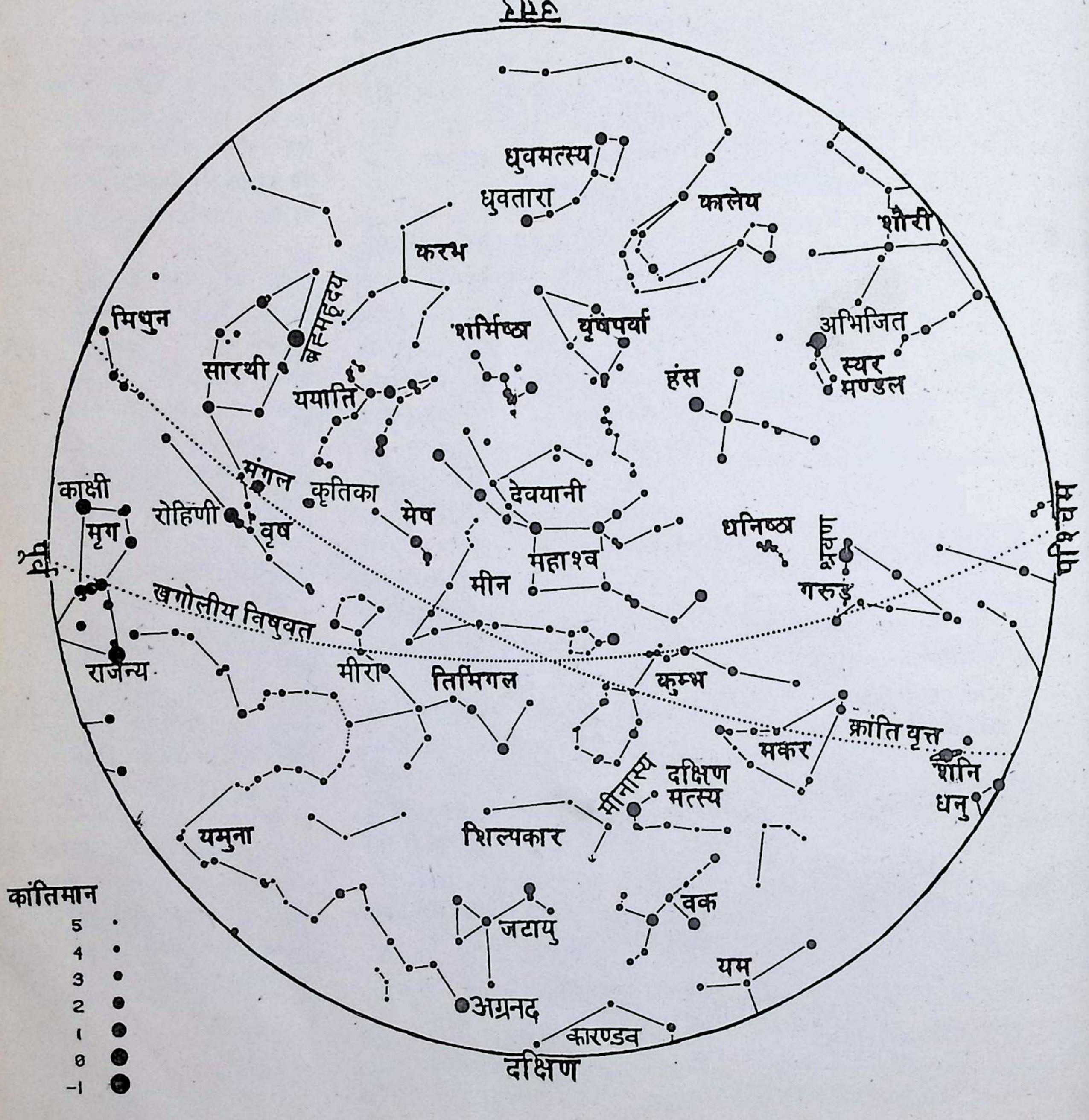

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

☐ मानचित्र की परिधि के संध्याकाश में दो ग्रह शनि तथा मंगल हैं जिनकी स्थिति क्रमशः धनु तथा वृष राशियों में प्रदर्शित की गई है. अट्ठाईस नवम्बर को मंगल वियुति (व्योमविहार 'आविष्कार', अक्तूबर 1990) की अवस्था में होगा तथा इसकी चमक बहुत बढ़ जाएगी. कान्तिमान–2 के लगभग होगा. (इस अवस्था में यह गुरु ग्रह से थोड़ा ही कम चमकीला होगा).

संध्याकाश के दो अन्य ग्रह मानचित्र की परिधि से बाहर है. मध्य नवम्बर से बुध ग्रह पश्चिम के सांध्य आकाश में सूर्यास्त के तुरंत बाद दीखना आरंभ होगा. तब बुध वृश्चिक राशि में होगा तथा मास के अन्त में धनु में आ जाएगा. दूसरा ग्रह है तेजस्वी बृहस्पति या गुरु ग्रह जो कर्क राशि में स्थित है तथा रात्रि दस बजे के बाद उदय होता देखा जा सकेगा.

शुक्र ग्रह पूरे मास सूर्य के अत्यन्त समीप होने के कारण न देखा जा सकेगा. संभवतः मास की अंतिम तारीख को (30 नवम्बर) यह आपको सूर्यास्त के तुरंत बाद कुछ देर के लिए

079505

तारामंडलों के नाम

क्र० स०	पाश्चात्य नाम	भारतीय नाम
1.	एण्ड्रोमेडा	देवयानी
2.	एण्टलिया	वाताकर्ष
3.	एपस	कपोत
4.	एक्वेरियस	कुम्भ
5.	एक्विला	गरूड़
6.	एरा	पीठ
7.	एरीज	मेष
8.	ऑरिगा	सारथी
9.	बऊटिज़	भूतप
10.	सीलम	सीलम
11.	कैमीलोपार्डालिस	करभ
12.	कैन्सर	कर्क
13.	केनिस वेनाटिसी	श्याम शक्ल
14.	केनिस मेजर	बृहल्लुब्धक
15.	केनिस माइनर	लघु लुब्धक
16.	केप्रिकोर्नस	मकर
17.	कैरीना	नौकातल
18.	कैसिओपिया	शर्मिष्ठा
19.	सैण्टॉरस	नरतुरंग
20.	सीफियस	वृषपर्वा
21.	सीटस	तिमिंगल
22.	कैमीलियन	वायुभक्षी
23.	सर्सिनस	कर्कटक
24.	कोलम्बा	पारावत
25.	कोमा बैरैनिसेज	अरून्धती केश
26.	कोरोना ऑस्टिनस	दक्षिण मुकुट
27.	कोरोगा बोरीएलिस	उत्तर मुकुट
28.	कॉर्वस	हस्त
29.	क्रेटर	चषक
30.	क्रवस	त्रिशंकु
31.	सिग्नस	हंस
32.	डैल्फिनस	घनिष्ठा
33.	डोरेडो	असिदंष्ट्र
34.	ड्रैको	कालेय
35.	इक्यूलियस	लघु अश्व
36.	एरिडैनस	यमुना
37.	फोर्नेक्स	अश्मन्त
38.	जैमिनी	मिथुन
39.	ग्रस	वक
40.	हर्क्यूलिज़	शौरी
41.	होरोलोजियम	कालयंत्र
42.	हाइड्रा	वासुकी
43.	हाइड्रस	अलगर्द
44.	इन्डस	यम
45.	लेसटी	सारठ
46.	लिओ	सिंह
47.	लिओमाइनर	लघु सिंह
48.	लीपस	शशक
49.	लिब्रा	तुला
50.	लूपरा	वृक
51.	लिंक्स	गव्य
52.	लाइरा	स्वरमण्डल
53.	मैन्सा	त्रिकूट
54.	माइक्रोस्कोपियम	सूक्ष्मदर्शी
55.	मोनोसिरस	श्रृंगाश्व
56.	मस्का	मक्षिका
57.	नौमी	अंकनी
58.	ऑक्टैन्स	अष्टक
59.	ओफियूकस	भुजंगधारी
60.	ओरायन	मृग
61.	पावो	मयूर
62.	पैगेसस	महाश्व
63.	पर्सियस	ययाति
64.	फिनिक्स	जटायु
65.	पिक्टर	चित्रफलक
66.	पीसिस	मीन
67.	पीसिस ऑस्ट्रिनस	दक्षिण मत्स्य
68.	प्यूपिस	अरित्र
69.	पिक्सिस	दिग्दर्शक
70.	रैटिक्युलम	जालक
71.	सैजिटा	शर
72.	सैजिटेरियस	धनु
73.	स्कॉर्पियस	वृश्चिक
74.	स्कल्प्टर	शिल्पकार
75.	स्क्यूटम	फलक
76.	सर्पेन्स	भुजंग
77.	सैक्सटैन्स	षडंश
78.	टॉरस	वृष
79.	टेलिस्कोपियम	दूरबीन
80.	ट्राएन्गुलम	त्रिकोण
81.	ट्राएन्गुलम ऑस्टल	दक्षिण त्रिकोण
82.	टुकाना	कारण्डव
83.	अर्सामेजर	सप्तर्षि
84.	असीमाइनर	ध्रुवमत्सय
85.	वेला	नौर्शीष
86.	वर्गो	कन्या
87.	वोलैन्स	शफरी
88.	वुल्पैकुला	जम्बूक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुजंगधारी तारामंडल (वृश्चिक तथा धनु के बीच) में दिखाई दे जाए.

चन्द्रमा की कलाएं: पूर्णिमा 3, कृष्णा अष्टमी 9, अमावस्या 17 तथा शुक्ल अष्टमी 25 नवम्बर को है.

अन्य प्रमुख आकाशीय घटनाएं हैं– 18 नवम्बर की संध्या को चन्द्र और रोहिणी की युति (आकाश में पास-पास स्थित होना) प्रतिपदा की कला में यदि चन्द्रमा उस अवस्था में दिखाई दे गया तो एक पतली घुमावदार रेखा सा होगा. इसी प्रकार 22 नवम्बर को चन्द्रमा और शनि की युति है इसे आप उषाकाश में देख पाएंगें.

पिछले मास की संयुति वाली प्रहेलिका का हल

सरल अंकगणित की इस समस्या में हमने आपसे घड़ी की घंटे व मिनट की सुइयों के बारह बजे के बाद अगली बार साथ-साथ स्थित होने के समय का आकलन करने के लिए कहा था तथा आपको पृथ्वी और मंगल के परिक्रमा काल दिए होने पर उनके संयुति काल की गणना करनी थी.

घंटे की सुई की गति 12 घंटे में एक चक्र यानी 1/12 चक्र प्रति घंटा; मिनट की सुई की गति 1 चक्र प्रति घंटा. इनकी सापेक्ष गति $1-\frac{1}{12} = \frac{11}{12}$ प्रति चक्र घंटा. इस सापेक्ष गति से एक चक्र में लगने वाला समय (गति का व्युत्क्रम) 12/11 घंटा यानी 1 घंटा 5 मिनट $27\frac{3}{11}$ सेकंड, अर्थात् बारह बजे के बाद पहली बार घड़ी की सुइयां एक बजकर पांच मिनट 11 सेकंड पर पुनः मिलेंगी, फिर 2 बजकर 10 मिनट 54 सेकंड पर, इत्यादि.

मंगल का परिक्रमा काल 687 दिन तथा पृथ्वी का $365\frac{1}{4}$ दिन है. अतः इनकी चक्रीय गति 1/687 तथा 1/365.25 चक्र प्रतिदिन हुई. सापेक्ष गति 1/365.25–1/687, अतः एक चक्र में इस सापेक्ष गति से लगने वाला समय या संयुति काल इस सापेक्ष गति का व्युत्क्रम होगा यानी $\frac{687 \times 365.25}{687 - 365.25}$ अर्थात 780 दिन जो अभीष्ठ उत्तर है.

तारामंडल

जून मास में हमने तारामंडलों के नामों तथा आकाश में उनकी वास्तविक आकृतियों के संबंध की चर्चा की थी. हमने अपने इस मानचित्र में तारामंडलों के प्रमुख तारों को सरल रेखाओं से जोड़ रखा है. इससे वास्तविक आकाश में तारामंडलों को खोजना सरल हो जाता है. तारों के प्राचीन मानचित्र इससे भिन्न होते थे. उनमें तारों को टेढ़ी मेढ़ी रेखाओं से जोड़ा जाता था जिससे तारामंडल के नाम से अभिव्यक्त होने वाली आकृति का निर्माण किया जा सकें. अतः प्राचीन संदर्भ में कोई तारामंडल आकाश में बन रही कोई टेढ़ी मेढ़ी आकृति बताता था जिसमें मानव को अपनी कल्पना द्वारा अपनी किसी कथा-कहानी के किसी पात्र की आकृति दिखाई देती थी जैसे शर्मिष्ठा तारामंडल में राजा वृषपर्वा की पुत्री राजकुमारी शर्मिष्ठा की आकृति, इत्यादि.

परंतु तारों के आधुनिक मानचित्रों में न तो प्राचीन मानचित्रों वाली टेढ़ी मेढ़ी आकृतियां दिखाई जाती हैं और न हमारे इस मानचित्र की तरह सरल रेखाओं से संयोजित आकृतियां. आधुनिक मानचित्रों के तारामंडल खड़ी और पड़ी रेखाओं से घिरे दुपरिभाषित क्षेत्र होते हैं. इस संदर्भ में कोई तारामंडल—जैसे हंस—आकाश के एक क्षेत्र विशेष का नाम होता है—न कि तारों से बनने वाली किसी पक्षी की आकृति का. उस क्षेत्र में स्थित प्रत्येक तारा हंस तारामंडल का सदस्य कहलाएगा. साथ में दिए चित्र में हमने हंस तारामंडल की आधुनिक सीमाएं प्रदर्शित की हैं तथा बिन्दुवत रेखाओं से जोड़कर केवल वे छः तारे दिखाएं हैं जिनमें हम हंस पक्षी की आकृति खोजते हैं.

पूरे आकाश को इस प्रकार अट्ठासी क्षेत्रों या तारामंडलों में बांटा गया है. तारामंडल को अंग्रेजी मे कांस्टेलेशन कहते हैं. आकाश का प्रत्येक तारा उन अट्ठासी में से किसी एक तारामंडल का सदस्य अवश्य होगा. तारामंडलों के भारतीय तथा पाश्चात्य नाम एक तालिका में साथ में दिए जा रहे हैं. मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन—इन बारह तारामंडलों को एक अलग नाम से पुकारा जाता है. इन्हें हम राशियां कहते हैं. ये वे बारह तारामंडल हैं जिनकी पृष्ठभूमि पर हम आकाश में ग्रहों तथा चन्द्र को स्थित पाते हैं. इनके बीचों बीच से गुजरता है क्रान्ति वृत्त या इक्लिप्टिक. यह पृथ्वी के सूर्य के गिर्द कक्षातल को निरुपित करता है. यदि पृथ्वी के कक्षातल को उसी समतल में सभी तरफ आगे बढ़ाएं तो वह आकाश को इसी वृत्त पर काटेगा. (इसी प्रकार खगोलीय विषुवत पृथ्वी की विषुवत रेखा के समतल में स्थित होती है). परंतु पृथ्वी से देखने पर हमें सूर्य आकाश में चक्कर लगाता दिखाई देता है तथा वह प्रतिमाह एक राशि से दूसरी राशि के सामने आता प्रतीत होता है. इसके कारण प्रतिमाह हम संध्याकाश में भिन्न-भिन्न राशियों को स्थित देखते हैं. अतः हम क्रान्ति-वृत्त को सूर्य का **आभासी** मार्ग भी कह सकते हैं.

आधुनिक विभाजन के अनुसार सूर्य के इस आभासी मार्ग अथवा राशि चक्र में **बारह नहीं** बल्कि **तेरह** तारामंडल पड़ते हैं. वह अतिरिक्त तारामंडल हैं भुजंगधारी अथवा ओफियूकस जो वृश्चिक और धनु के बीच स्थित हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौर विकिरण से अधिक कपास उत्पादन

केंद्रीय नमक और समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान, भाव नगर (गुजरात) के एक वैज्ञानिक श्री सुधाकर टी जोपडे ने कपास के बीजों में किए गए अध्ययनों में पाया कि बुआई से पहले बीजों का संदित सांद्रित सौर विकिरण (पल्स्ड कंसंट्रेटेड सोलर रेडिएशन) उपचार बीजों में अंकुरण और फसल की उत्पादकता बढ़ाने में सहायक है. इन प्रयोगों में प्रयुक्त बीज सौर विकिरण इस संस्थान द्वारा ही तैयार किया गया था.

बीजों में अंकुरण संचित के लिए आमतौर पर खाद्य प्रोटीन, स्टार्च या टाइग्लिसरॉल के रूप में होती है. अंकुरण के दौरान ये खाद्य संचय जल-अपघटन द्वारा गतिशील होते हैं. यह काम प्रोटिएस, एमिलेस और लाइपेस एंजाइमों द्वारा किया जाता है. एमिलेस और प्रोटिएस की ज्यादा अच्छी गतिविधि से बीज जल्दी व ज्यादा तेजी से बढ़ते हैं. बीजों में मौजूद वसा तत्व लाइपेस द्वारा वसा अम्ल और ग्लिसरॉल में बदल दिया जाता है जो अंततः सुक्रोस मुक्त करता है. सुक्रोस से भ्रूण के विकास के लिए ऊर्जा प्राप्त होती है.

श्री जोपडे के अध्ययनों से पता चला है कि संदित सांद्रित सौर विकिरण उपचार से लाइपेस और उपचायक एंजाइम, जैसे कैटेलेस व परआक्सीडेस, अपेक्षाकृत उच्च स्तर में बनते हैं जिससे श्वसन की दर उच्च बनी रहने के कारण पौधे की वृद्धि के लिए ज्यादा ऊर्जा प्राप्त होती है.

मौटे तौर पर यह उपचार अंकुरण, एंजाइमी-क्रिया और कुछ निश्चित उपापचयों (मेटाबोलाइट्स) के समकालिक संश्लेषण को बढ़ाता है. इससे कपास के उत्पादन में 8 से 10 प्रतिशत तक की वृद्धि पाई गई. इसमें शुष्क मात्रा या जैव मात्रा प्रति मिनट संद दर के समानुपाती होती है. दस प्रतिशत आर्द्रता वाले बीजों को 300 संद प्रति मिनट की दर से 10 मिनट तक उपचारित करने से अनुकूलतम उत्पादन प्राप्त होता है. यह उपचार आर्थिक दृष्टि से उपयुक्त और उपयोगी बताया जाता है.

कंप्यूटर टोमोग्राफी से प्रकाश बल्बों की गुणवत्ता में सुधार

बिजली के बल्बों की कार्यक्षमता बढ़ाने और छोटे आकार के बल्ब डिजाइन करने के उद्देश्य से अमेरिका में एक ऐसी तकनीक विकसित की गई है जिससे कंप्यूटर टोमोग्राफी को हैलाइड प्रकाश बल्बों के अंदर की गर्म गैसों को देखने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है.

अमेरिका अनुसंधानकर्ताओं ने कंप्यूटर टोमोग्राफी द्वारा उच्च-तीव्रता के धात्विक हैलाइड लैंपों के भीतरी भाग के त्रि-विमीय प्रतिबिंब उत्पन्न किए. ये बल्ब मरकरी और सोडियम-वाष्प लैंप जैसे होते हैं और अपेक्षाकृत ज्यादा क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं. घरों में प्रयुक्त सामान्य बल्बों में विद्युत धारा एक तंतु से गुजरती है, जो उद्दीप्त होकर प्रकाश देता है जबकि इन लैंपों में विद्युत आर्क उत्पन्न होकर बल्ब की गैस को ऊर्जित करता है जिससे ये प्रकाशित होते हैं.

हैलाइड बल्बों का तापमान अत्यधिक ऊंचा, 6000 डिग्री सेल्सियस तक पहुंच जाता है. सामान्य तापदीप्त बल्ब 800 घंटे तक काम देते हैं जबकि हैलाइड बल्ब 10,000 से 25,000 घंटों तक काम देते हैं. परंपरागत तरीके से ताप वैद्युत-युग्मों की सहायता से कई स्थानों का मापन किया जाता था, जिससे आनुभविक न्यास (इम्पीरिकल डेटा) तो प्राप्त होते थे लेकिन पूरी तस्वीर प्राप्त नहीं होती. अब अनुसंधानकर्ता कंप्यूटर टोमोग्राफी स्कैनर को लैंप के चारों ओर घूमा कर बल्ब के प्रत्येक हिस्से से उत्सर्जित प्रकाश को माप सकते हैं.

इसमें स्कैनर लैंप के चारों ओर घूमता है और एक फोटोन संसूचक नलिका इसके भीतरी भाग से उत्सर्जित पूरे प्रकाश को मापती है. स्कैनर के आंकड़ों को एक लघु-सुपर कंप्यूटर लैंप के त्रिविमीय तापमान मानचित्र में बदल देता है. प्राप्त आंकड़ों को कंप्यूटर में हस्तांतरित किया जा सकता है जिनका उपयोग करके वैज्ञानिक भावी लैंप डिजाइन करेंगे.

अच्छी गुणवत्ता के कच्चे तेल के लिए देशज प्रौद्योगिकी

तेल और प्राकृतिक गैस आयोग ने कच्चे तेल में मौजूद पानी की प्रतिशतता को कम करने के लिए एक नई प्रौद्योगिकी विकसित की है जो देश में ही विकसित रसायनों पर आधारित है. नई प्रौद्योगिकी प्रचलित विधियों की अपेक्षा सस्ती बताई जाती है.

कच्चे तेल में गैस, पानी व अन्य तल-अवसाद (बेसिक सेडिमेंटस) मिले होते हैं. इस तेल में से पहले पानी व तल-अवसाद की प्रतिशतता को कम करना आवश्यक होता है. इसके बाद ही इसे मिट्टी के तेल, पेट्रोल, डीजल आदि उप-उत्पादों में संसाधित करने के लिए परिष्करण-शाला (रिफाइनरी) भेजा जाता है. तेल और प्राकृतिक गैस आयोग इस नई प्रौद्योगिकी पर आधारित एक संयंत्र गुजरात में नवाग्राम के समीप स्थापित करने जा रहा है. ऐसी संभावना है कि उत्तरी गुजरात से प्राप्त 65 लाख मीट्रिक टन कच्चे तेल को परिष्करण शाला भेजने से पहले इस संयंत्र में लाया जाएगा. ऐसा बताया जाता है कि नई प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से तेल में मौजूद पानी व तल-अवसाद की उपस्थिति को एक प्रतिशत से भी कम किया जा सकेगा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड (भेल) की प्रौद्योगिकियों का एन आर डी सी द्वारा व्यापारीकरण

भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड (भेल) और नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (एन आर डी सी) के बीच हुए एक समझौते के अंतर्गत भेल की अनुसंधान एवं विकास इकाइयों द्वारा विकसित कुछ विधियों, आविष्कारों, तकनीकी जानकारियों और पेटेंटों का व्यापारीकरण एन आर डी सी द्वारा किया जाएगा.

एन आर डी सी से लाइसेंस प्राप्त उद्योग को भेल, प्रयोगशाला स्तर पर विधि के प्रदर्शन पर पूर्ण तकनीकी प्रलेखन उपलब्ध करेगा और उद्योग के किसी उपयुक्त योग्यता वाले व्यक्ति को विधि से पूर्णतया अवगत कराने की भी व्यवस्था करेगा. इसके अलावा भेल उद्योग को लाइसेंसित विधि/आविष्कार/तकनीकी जानकारी के कार्यान्वयन के लिए विशेषज्ञ सहायता भी प्रदान करेगा.

भेल से व्यापारीकरण के लिए प्राप्त विधियों की उपलब्धता के विषय में एन आर डी सी द्वारा व्यापक प्रचार किया जाएगा. इसके अलावा एन आर डी सी आवश्यक बाजार संबंधी आंकड़े, पूर्व-व्यवहार्यता/व्यवहार्यता/ परियोजना रिपोर्टें आदि तैयार करेगा ताकि लाइसेंस देने का काम और उद्योग द्वारा व्यापारीकरण का काम तेजी व प्रभावकारी ढंग से किया जा सके.

समझौते के ज्ञापन पर भेल के इंजीनियरी अनुसंधान और विकास प्रभाग के निदेशक श्री के० रामकृष्णन और एन आर डी सी के प्रबंध निदेशक श्री एन० के० शर्मा ने हस्ताक्षर किए. इस अवसर पर भेल के अध्यक्ष सह प्रबंध निदेशक श्री पी० एस० गुप्ता और वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान विभाग के अतिरिक्त सचिव श्री अशोक पार्थसारथी भी उपस्थित थे.

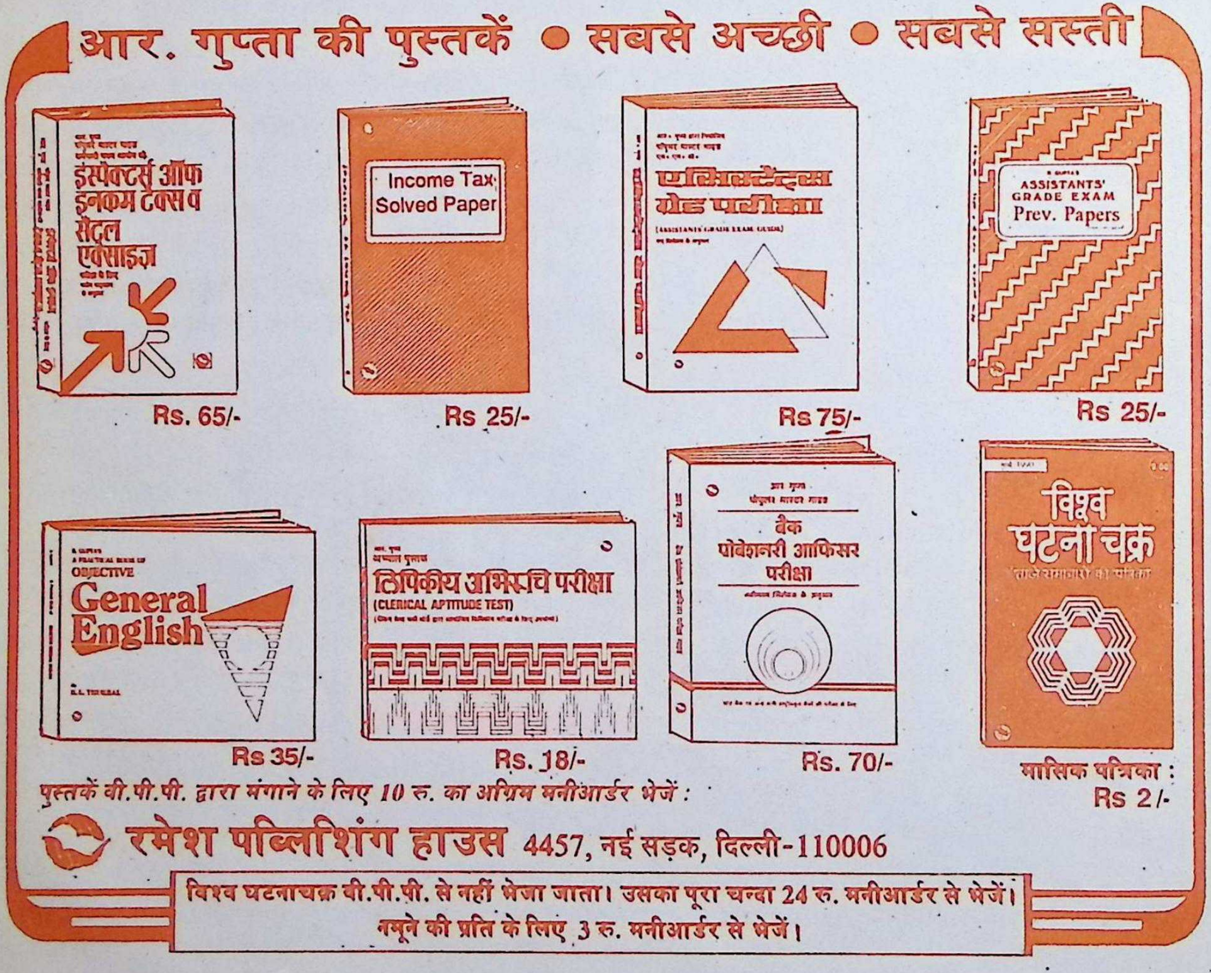

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशिक कंप्यूटर में सूक्ष्म छिद्र होलोग्राफी

□ डा० महेश कुमार शर्मा

□ इम्पीरियल कॉलेज ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, लंदन के भौतिकविदों ने वर्ष 1989 में सूक्ष्म छिद्र (पिन होल) कैमरा के साधारण सिद्धान्त को अपनाकर सूक्ष्म छिद्र होलोग्राम बनाएं हैं. इनका उपयोग प्रकाशित कंप्यूटर (ऑप्टिकल कंप्यूटिंग) में होने की आशा है जहां इनकी सहायता से प्रकाशिक तंतुओं (ऑप्टिकल फाइबर्स) के जरिए प्रकाश के रूप में आंकड़ों को कंप्यूटर में भेजा जाएगा.

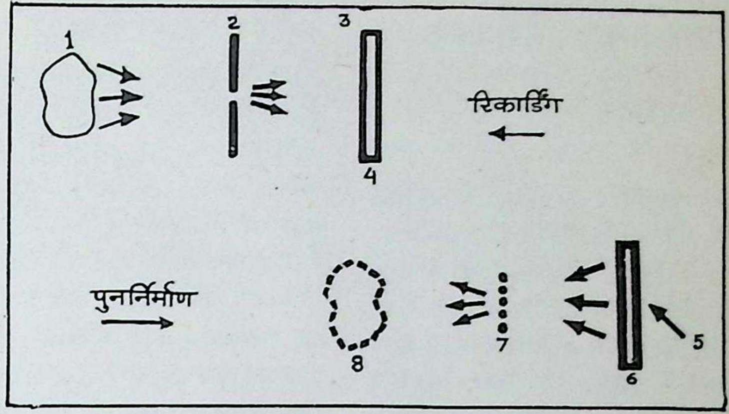

चित्र—सूक्ष्म छिद्र होलोग्राफी में रिकार्डिंग (ऊपर) और पुनर्निमाण (नीचे). (1) वस्तु; (2) सूक्ष्म छिद्र; (3) संदर्भ किरणें; (4) होलोग्राफी प्लेट; (5) आपतित किरणें; (6) होलोग्राम; (7) पुनर्निमित सूक्ष्म छिद्र; (8) होलोग्राफी प्रतिबिंब.

साधारण होलोग्राम बनाने का सिद्धान्त क्या है? लेसर किरण को दो भागों में विभक्त कर साधारण होलोग्राम रिकार्ड किया जाता है. एक भाग जिसे वस्तु किरण (ऑब्जेक्ट बीम) कहते हैं, वस्तु पर डाला जाता है. वस्तु प्रकाश को परावर्तित कर किरणों को प्रकाश सुग्राही फोटोग्राफी प्लेट पर डालती है. दूसरे भाग को संदर्भ किरण (रेफरेन्स बीम) कहते हैं और इसे परावर्तित कर, सीधे बिना किसी व्यवधान के फोटोग्राफी प्लेट पर डाला जाता है. जब दोनों किरणें फोटोग्राफी प्लेट पर एक साथ पड़ती हैं तो वे आपस में व्यतिकरण (इन्टरफिअरेन्स) उत्पन्न करती हैं जिसके कारण प्लेट पर वस्तु का चित्र अंकित हो जाता है और प्लेट के सामान्य डिवेलपमेंट के बाद होलोग्राम रिकार्ड कर लिया जाता है. पुनर्निमाण के समय जब प्लेट पर अंकित होलोग्राम पर आपतित (इन्सिडेन्ट) किरणें डाली जाती हैं तो इनका परिवर्तन इस प्रकार होता है कि ये वस्तु से परावर्तित होती हुई प्रतीत होती हैं जिससे वस्तु आपके सामने स्थित दिखाई देती है.

इम्पीरियल कॉलेज के वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अपने नए होलोग्राफी प्रयोगों में वस्तु और रिकार्डिंग फोटोग्राफी प्लेट के मध्य एक सूक्ष्म छिद्र रखा जाता है जिससे सूक्ष्म छिद्र वस्तु के सामने स्थित होने पर इसका एक भाग बन जाता है और इस प्रकार वस्तु का होलोग्राम फोटोग्राफी प्लेट पर अंकित किया जाता है (चित्र 1). पुर्ननिर्माण के समय जब होलोग्राम पर आपतित किरणें डाली जाती हैं तो सारा प्रकाश छिद्र में से होकर बाहर निकल जाता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अंकन के समय वास्तविक सूक्ष्म छिद्र में से प्रकाश गुजरा था और इस प्रकार होलोग्राफी प्रतिबिंब को पुर्ननिर्माण हो जाता है. सूक्ष्म छिद्र के उपयोग का एक महत्वपूर्ण लाभ यह है कि परिणामी होलोग्राफी प्रतिबिंब में बिल्कुल विरूपण नहीं होता जबकि सामान्य होलोग्राम बनाने में लेंसों के इस्तेमाल से विरूपण का सामना करना पड़ता है. साथ ही पुर्ननिर्माण में वास्तविक सूक्ष्म छिद्र न होने के कारण वैज्ञानिक इस स्थान पर प्रकाशिक (ऑप्टिकल) युक्तियां रखकर प्रतिबिंब को परिचालित कर सकते हैं.

वैज्ञानिकों ने अपने अन्य प्रयोगों में सूक्ष्म छिद्र की स्थिति में परिवर्तन कर एक ही होलोग्राफी प्लेट पर भिन्न-भिन्न वस्तुओं के अनेक होलोग्राम रिकार्ड किए हैं. इस प्रकार एक ही होलोग्राम पर अनेक विभिन्न प्रतिबिंब अंकित किए जा सकते हैं जिनमें प्रत्येक का अपना एक सूक्ष्म छिद्र होता है. यदि सूक्ष्म छिद्रों के समतल (प्लेन) में कपाटों (शटरों) की पंक्ति रख दी जाए तो वे प्रतिबिंबों के किसी भी प्रकार के अनेक संयोजन बना सकते हैं. कपाटों के स्थान पर द्रव क्रिस्टल भी रखा जा सकता है तो प्रतिबिंब को केवल 'ऑफ' या 'ऑन' ही नहीं करता परंतु होलोग्राम पर पड़ने वाली प्रकाश की मात्रा में परिवर्तन कर तीव्रता (इन्टेन्सिटी) के मापक्रम (स्केल) को भी नियंत्रित कर सकता है. इस प्रकार कपाटों या द्रव क्रिस्टल का इस्तेमाल कर होलोग्राफी प्रतिबिंबों के संयोजन को प्रकाशिक कंप्यूटर में 'प्रोग्राम' किया जा सकता है.

होलोग्राफी अंकन के एक अन्य प्रयोग में भौतिकविदों ने सूक्ष्म छिद्र के सामने एक विवर्तन (डिफ्रेक्शन) ग्रेटिंग रखी. इससे मूल वस्तु के साथ-साथ रखे हुए अनेक प्रतिरूप बन जाते हैं. यदि प्रकाश का प्रत्येक बिन्दु अपना संसूचक (डिटेक्टर) सक्रिय करता है तो सूक्ष्म छिद्र, होलोग्राम और शटर का संयोजन, प्रकाशित कंप्यूटर में 'तार' (वाइरिंग) का कार्य कर सकता है. इस तकनीक का इस्तेमाल कर वैज्ञानिकों ने छोटे कुछ मिलीमीटर आकार के होलोग्राम तैयार किए हैं जिनका उपयोग निकट भविष्य में प्रकाशिक कंप्यूटर में होने की आशा है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औषधि विज्ञान में भौतिकी का योगदान

☐ डा अहरार हुसैन

☐ आज के विज्ञान के इस युग में भौतिकी, रसायन, गणित और औषधि विज्ञान ने मानव सभ्यता के विकास और स्थायित्व में बहुत योगदान दिया है. औषधि विज्ञान ने मानव को शारीरिक व्याधियों से बहुत हद तक छुटकारा दिलाया है. प्रस्तुत लेख में औषधि विज्ञान में विद्युत, ध्वनि, प्रकाश, शीत, ऊष्मा तथा रेडियो सक्रिय पदार्थों के उपयोग की चर्चा की गई.

विद्युत और औषधि विज्ञान

हमारे शरीर में उत्पन्न विद्युत स्नायु, मांसपेशियों तथा अन्य शारीरिक अंगों के सही प्रकार काम करने में सहायक होती है. आज औषधि विज्ञान में भिन्न प्रकार के रोगों से निजात पाने के लिए विद्युत का उपयोग आम होता जा रहा है.

विद्युत प्रघात (डायाथर्मो तथा विद्युत शल्यचिकित्सा) में जब विद्युत धारा शरीर में प्रवाहित की जाती है तो शरीर पर भिन्न प्रकार की क्रियाएं देखने में आती हैं. जब 60 हर्ट्ज विद्युत से ज्यादा विद्युत शरीर में प्रवाहित की जाती है तो शरीर तथा हाथों पर रेंगने की सी संवेदना का अनुभव होता है. 10-20 मिली एम्पियर धारा के प्रवाह से शरीर में पेशी संकुचन होना प्रारंभ हो जाता है. लगभग 100 मिली एम्पियर धारा के प्रवाह से हृदय में संकुचन तथा वेंट्रिकुलर फाइब्रिलेशन होना शुरू हो जाता है. उन रोगियों पर जिनके हृदय में वेंट्रिकुलर फाइब्रिलेशन की समस्या होती है, 6 एम्पियर विद्युत धारा का उपयोग करके हृदय गति को ठीक किया जाता है. कभी कभी लगातार 6 एम्पियर विद्युत धारा का उपयोग श्वास अंगों में पक्षाघात कर सकता है.

गुर्दे की पथरी जिसे कुछ समय पहले तक शल्य-चिकित्सा से निकाला जाता था. आज विद्युत प्रघात उपचार द्वारा कुछ ही समय में खत्म की जा सकती है. इसी पथरी को विद्युत प्रघात द्वारा चूरा करके शरीर से पेशाब के रास्ते बाहर निकाल दिया जाता है.

औषधि विज्ञान में उच्च आवृत्ति विद्युत का भी उपयोग किया जाता है. इसे डायाथरमी कहते हैं. लघु तरंग डायाथरमी का उपयोग गठिया, घाव, मोच आदि जैसी शारारिक समस्याओं के उपचार में किया जाता है. सूक्ष्म तरंग डायाथरमी का इस्तेमाल पीठ के दर्द के उपचार में किया जाता है. उच्च आवृत्ति विद्युत का उपयोग शल्य-चिकित्सा के दौरान रक्तस्राव से बचाव के लिए भी किया जाता है. विद्युत धारा का उपयोग रोगियों को बेहोश करने के लिए विद्युत संवेदनाहारी के तौर पर उस समय किया जाता है जब रासायनिक संवेदनाहारी का उपयोग रोगी पर करना संभव न हो. विद्युत संवेदनाहारी के उपयोग से रोगी जल्दी बेहोश हो सकता है और उसे जल्दी ही होश में भी लाया जा सकता है. इसके अलावा इसका रोगी पर किसी प्रकार का दुष्प्रभाव भी नहीं होता पाया गया है.

ध्वनि और औषधि विज्ञान

औषधि विज्ञान में ध्वनि का उपयोग भिन्न भिन्न प्रकार की जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाता है. हृदय वाल्व गति और माता के गर्भ के शिशु के आगमन जैसी जानकारी प्राप्त करने के लिए स्टेथोस्कोप का इस्तेमाल किया जाता है. ध्वनि को तीन मुख्य भागों में बांटा जाता हैः (1) इन्फ्रा ध्वनि < 20 हर्ट्ज; (2) श्रव्य ध्वनि $20 <$ हर्ट्ज; < 20000 हर्ट्ज; (3) अल्ट्रा ध्वनि > 20 किलोहर्ट्ज.

सन् 1808 के प्रारंभ से 'परकशन' तकनीक द्वारा कैंसर तथा सीने की दूसरी बीमारियों के बारे में जानकारी प्राप्त की जाती थी. आज औषधि विज्ञान में पराध्वनि का उपयोग मस्तिष्क ट्यूमर की जानकारी प्राप्त करने के लिए बहुत उपयोगी साबित हुआ है. चक्षु विभाग में पराध्वनि तकनीक का उपयोग आंख का ट्यूमर, आंख में बाहरी वस्तु तथा ऐंटीना के विखंडन जैसी समस्याओं के निदान के लिए किया जाता है. पराध्वनि द्वारा हम आंख के अंदर की दूरियां जैसे लेंस की मोटाई, रेटिना की दूरी तथा वीट्रिस ह्यूमर की मोटाई जैसी जानकारी प्राप्त करते हैं. इस प्रकार आंख की शल्य चिकित्सा में पराध्वनि तकनीक लाभदायक सिद्ध हो रही है.

पराध्वनि तकनीक का उपयोग आज औषधि विज्ञान में शरीर के अंदर के भागों की जानकारी प्राप्त करने के लिए भी किया जाता रहा है. यह तकनीक आंख, यकृत, स्तन, हृदय तथा गर्भाशय आदि में उत्पन्न हो गई विकृतियों की जानकारी प्राप्त करने के लिए भी उपयोगी है. इससे गर्भधारण के पांचवें हफ्ते में गर्भाशय अंसगति के बारे में तथा गर्भ में शिशु के स्थान तथा उसके बदलाव के बारे में जानकारी प्राप्त करके उपचार करना आसान हो जाता है. इन जानकारियों से बच्चे के जन्म के समय चिकित्सकों को उपचार करने में मदद मिलती है.

प्रकाश और औषधि विज्ञान

दृश्य प्रकाश का उपयोग चिकित्सकों को चर्म, रंग, तथा शरीर के बाहरी तथा आंतरीय भागों की जानकारी प्राप्त करने में मदद देता है. शरीर के बाहरी भागों की जानकारी दृश्य प्रकाश से मिल जाती है लेकिन शरीर के अंदर के भागों की जानकारी प्राप्त करने के लिए भिन्न प्रकार के यन्त्रों का उपयोग किया जाता है. अंतर्दर्शी यन्त्र का उपयोग शरीर के अंदर की गुहिकाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाता है. सामटोस्कोप यन्त्र को ब्लैडर, प्रोक्टोस्कोप यंत्र को बड़ी आंत तथा ब्रान्चोस्कोप का उपयोग फेफड़ों में हवा जाने वाले मार्ग का परीक्षण करने के लिए किया जाता है.

ट्रांसइलीम्यूनेशन का उपयोग आज हायड्रोसिफेलस और पिन्यूमोरथेरेक्स जैसी बच्चों की बीमारियों का पता लगाने के लिए काम में लाई जाती है. इसका उपयोग साइनस, मसूढ़ों, स्तन तथा वृषण से संबंधित रोगों में भी उपयोगी साबित हुआ है.

दृश्य प्रकाश का उपयोग प्रकाशीय उपचार के तौर पर भी किया जाता है. इसके इस्तेमाल से शिशुओं में होने वाले पीलिंया रोग में बहुत लाभ पहुंचता है. सन् 1958 में वैज्ञानिकों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह जानकारी प्राप्त की थी कि उन बच्चों की जिन्हें पीलिया हो जाता है 450 नेनोमीटर तरंग लंबाई तथा दृश्य प्रकाश के अनावरण से मुक्ति मिल सकती है.

पराबैंगनी प्रकाश (तरंग लंबाई~290 नेनोमीटर) के अनावरण से कीटाणुओं को खत्म किया जाता है. औषधि यन्त्रों को कीटाणुरहित करने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है. इस प्रकाश से शरीर में मौजूद आण्विक उत्पादनों को विटामिन-डी में तब्दील करने में मदद मिलती है. पराबैंगनी प्रकाश का उपयोग निवेध भी है क्योंकि इस के अनावरण से चर्म कैंसर होने की सम्भावना बढ़ जाती है.

अवरक्त प्रकाश (तरंग लंबाई~1000-2000 नेनोमीटर) का उपयोग भौतिक उपचार के लिए किया जाता है. इस प्रकाश का अनावरण शरीर की भीतरी पेशियों को ऊष्मा देने के लिए भी किया जाता है. इसका उपयोग लाभदायक होता है.

परावर्ती अवरक्त फोटोग्राफी (तरंग लंबाई ~700-900 नेनोमीटर) द्वारा त्वचा तथा धमनियों के विन्यास की जानकारी प्राप्त की जाती है जो स्तन तथा आंख के कैंसर के बारे में सूचना देती है. इस तकनीक में अवरक्त किरणें कैंसर वाले भाग द्वारा ज्यादा सोख ली जाती हैं जो कि फोटोग्राफ में आसानी से पता लग जाती है.

लेज़र का योगदान जीव तथा औषधि विज्ञान में बहुत महत्वपूर्ण है. लेज़र प्रकाश की तीव्रता अत्यधिक बढ़ने के साथ-साथ इसमें वर्णता का गुण भी रहता है तथा फैलाव की प्रवृत्ति बहुत कम होती है. इसी से इसमें तीव्रता अधिक होती है. लेज़र प्रकाश जब शरीर पर पड़ता है, उस भाग का तापमान बहुत अधिक हो जाता है जिसके कारण वह भाग खत्म हो जाता है. इस का उपयोग कैंसर के उपचार में किया जाता है. लेज़र शल्य-चिकित्सा को चाकू और रक्त विहीन शल्य चिकित्सा भी कहा जाता है. लेज़र शल्य-चिकित्सा का उपयोग आज औषधि विज्ञान के हर क्षेत्र में किया जा रहा है. शल्य-चिकित्सा का इस्तेमाल आंखों की समस्याओं जैसे 'डायवेटिक रेटीनोपेथी' 'डिटेचमेंट आप रेटिना' 'ग्लाय कोमा' और कैंसर के उपचार में किया जा रहा है. लेज़र का इस्तेमाल हड्डी काटने व हड्डी आरोपण के लिए भी होता है. लेज़र का उपयोग शरीर के किसी भी भाग के कैंसर व टयूमर से उपचार के लिए भी किया जा सकता है.

न्यूक्लीय मेडिसिन और औषधि विज्ञान

सन् 1898-1904 के वर्षों में मैडम क्यूरी और उनके पति ने यूरेनियम से बहुत शक्तिशाली रेडियो सक्रिय तत्व रेडियम को अलग किया था. इस तत्व का इस्तेमाल आज औषधि विज्ञान में कैंसर के उपचार में बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है. लेकिन रेडियो सक्रियता का उपयोग औषधि विज्ञान में सही प्रकार से न्यूक्लीय रिएक्टर बनने के बाद शुरू हुआ क्योंकि न्यूक्लीय रिएक्टर के द्वारा हम कृत्रिम रेडियो सक्रिय तत्वों का निर्माण कर सकते हैं. आज न्यूक्लीय भौतिकी औषधि विज्ञान में निदान एवम् उपचार के लिए रेडियो के लिए आशा की एक किरण है. न्यूक्लीय तत्वों के उपयोग से चिकित्सक कैंसर, हृदय, फेफडों, गुर्दों तथा जोड़ों की शारीरिक समस्याओं के निदान व उपचार के लिए इस्तेमाल करते हैं.

एक्स किरण और औषधि विज्ञान

एक्स किरण का उपयोग भी औषधि विज्ञान में अपना अलग महत्व रखता है. आज मनुष्य शरीर के हर भाग का एक्स किरण किया जा सकता है. इसका महत्वपूर्ण योगदान रोगों के निदान में है.

ऊष्मा, शीत और औषधि विज्ञान

ऊष्मा तथा शीत का उपयोग औषधि विज्ञान में चिकित्सक हजारों वर्ष पहले से करते आ रहे हैं. गेलेन तथा हिप्पोक्रेटस जैसे ख्याति प्राप्त चिकित्सक गर्म पानी व तेल का इस्तेमाल कुछ रोगों से मुक्ति पाने के लिए किया करते थे. आज के युग में भी ऊष्मा तथा गति पदार्थों का उपयोग शारीरिक समस्याओं के निदान के लिए किया जा रहा है. भिन्न अंगों का शारीरिक तापमान भिन्न होता है. यह तापमान शरीर के भौतिक कारक, आंतरीय उपापचयी तथा रुधिर परिसंचारण पर निर्धारित होता है. सन् 1950 के लगभग वैज्ञानिकों ने शरीर के तापमान विचरण पर अनुसंधान शुरू किया और पाया कि टयूमर या कैंसर वाले भाग का ताप साधारण शारीरिक

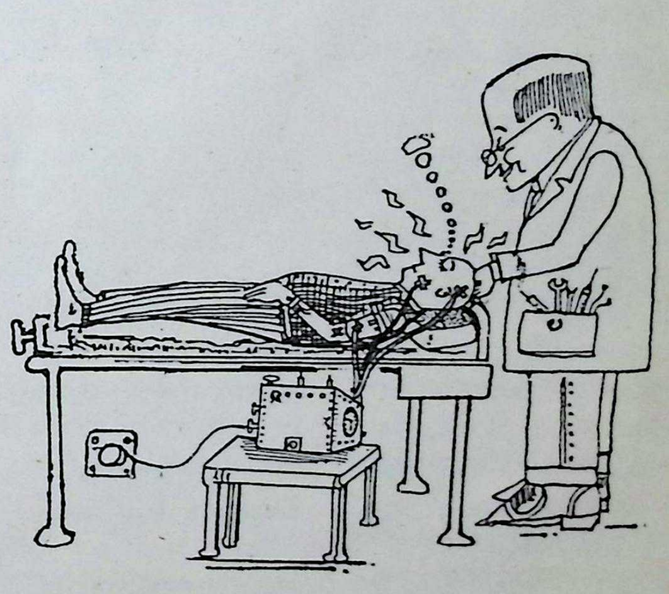

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागों से ~ 1°C अधिक होता है. स्तन कैंसर की जल्दी जानकारी प्राप्त करने के लिए ताप आलेख रिकार्ड किया जाता है. थर्मोग्राम से मस्तिष्क के रुधिर के बहाव के बारे में जानकारी प्राप्त की जाती है. रुधिर परिसंचरण की समस्या का उपचार संभव हो पाता है. हजारों वर्ष पहले से मनुष्य को जानकारी थी कि गर्म जल से स्नान करने पर शरीर के दर्द से छुटकारा मिल सकता है. ऐसा इसलिए कि गर्म किए गए भाग में चयापचय बढ़ने से केपिलरी प्रणाली में रुधिर परिसंचरण बढ़ जाता है और ऊतक को फायदा पहुंचता है.

शरीर को गर्म करने के लिए निम्न प्रकार के तरीके उपयोग में लाए जाते हैं: (1) चालकीय तापन, (2) अवरक्त विकिरण तापन, (3) रेडियो तरंग तापन, तथा (4) पराश्रव्य तरंग तापन. शीत का उपयोग औषधि विज्ञान में रुधिर, शुक्र, 'बोन मैरो' तथा ऊतक इत्यादि को परिरक्षित करने के लिए किया जाता है. निम्नतापीय शल्य-चिकित्सा आज बहुत लोकप्रिय है. इसकी सफलता के मुख्य कारण हैः

(1) रुधिर प्रवाह बहुत कम होता है.

(2) शरीर में दर्द का एहसास कम होता है क्योंकि कम ताप स्नायुओं की संवेदना कम कर देते हैं.

(3) निम्नतापीय शल्य-चिकित्सा का उपयोग पारकिंसन रोग में बहुत उपयोगी साबित हुआ है. इस रोग में पैरों और हाथों में कंपकपाहट होती है. इस तकनीक से मस्तिष्क के थैलेमस भाग को खत्म करके कंपकपाहट को नियमित किया जाता है.

निम्नतापीय शल्य-चिकित्सा का इस्तेमाल ट्यूमर तथा मस्सों के उपचार के लिए भी किया जाता है. यह तकनीक रेटिना विखंडन तथा मोतियाबिंद की शल्य क्रिया में उपयोगी हैं.

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि औषधि विज्ञान में भौतिकी का उपयोग मानव की शारीरिक समस्याओं के निवारण में कितना उपयोगी है. □

कहीं हम साफ-सफाई के नाम पर विषाक्तता तो नहीं फैला रहे ?

□ एस० एम० मोहम्मद इदरीस

□ तरल तथा पाउडर के रूप में मौजूद विरंजक (ब्लीचिंग) सबसे ज्यादा प्रदूषक घरेलू रसायन होते हैं. ये पदार्थ जीवाणुओं को सिर्फ मारते ही नहीं बल्कि उन्हें मार कर पाखानों में बहा देने के बाद भी उन्हें मारते रहते हैं. नतीजा यह होता है कि ये विरंजक उन जीवाणुओं को भी नष्ट कर देते हैं जो मल-मूत्र का भक्षण कर उसे हानि रहित बनाते हैं. बहुत अधिक मात्रा में उपयोग किए जाने पर ये विरंजक हमारे सेप्टिक टैंकों को भी नुकसान पहुंचाते हैं.

ब्लीच खुद जहरीले नहीं होते लेकिन अन्य रसायनों से मिलने पर वे घातक बन जाते हैं. मसलन किसी भी अम्लीय रंजक (क्लीनर) से मिलने पर ब्लीच में कुछ ही क्षणों में क्लोरीन गैस बनने लगती है जो घातक हो सकती है. डिटरजेन्टों का भी बुरी तरह दुरुपयोग होता है. लगभग सभी डिटरजेन्टों में फॉस्फेट होते हैं जो पानी में उपस्थित वनसति तथा जीवों को नष्ट कर देते हैं.

रासायनिक डिटरजेन्टों से भी हमारे स्वास्थ्य को खतरा होता है. पानी के जरिए पेट में पहुंचने पर मतली, कै (उल्टी) तथा दस्त हो सकते हैं. डिटरजेन्टों में जो सुखाने वाला तत्व होता है वह चीनी मिट्टी के बर्तनों की सतह पर जम जाने के लिए होता है. उसके कारण क्रॉकरी पर से पानी जल्दी फिसल जाता है. मगर इस पदार्थ के कारण शरीर डी डी टी तथा हमारे भोजन में मौजूद अन्य कीटनाशकों को सोखने की क्रिया बढ़ा देते हैं.

स्वच्छता और सह-अस्तित्व

जीवाणु, विषाणु तथा सूक्ष्म फफूंद हमारे चारों तरफ हमेशा मौजूद रहते हैं. हम उनसे ढके हुए हैं, घिरे हुए हैं. मगर सभी सूक्ष्म-जीवाणुओं से बीमारियां नहीं होतीं. हमारी त्वचा और पाचन-संस्थान में असंख्य जीवाणु जिंदा रहते हैं. यहां तक कि जाहिरा तौर पर नुकसानदेह यक्ष्मा के कीटाणुओं जैसे कीटाणु तक स्वस्थ व्यक्तियों के फेफड़ों में भी रहते हैं. हमारे शरीर की प्रतिरोधक प्रणाली उन्हें हमें नुकसान नहीं पहुंचाने देती. यदि हम अच्छा पौष्टिक भोजन, उचित मात्रा में खाते रहें, खूब व्यायाम करें, अक्सर खुली हवा का सेवन करें तो इन सूक्ष्म-जीवाणुओं में से कोई भी हमें हानि नहीं पहुंचा सकता क्योंकि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ जीवाणु भी होते हैं.

इस धरती पर सभी प्रकार के जीवों के बीच प्राकृतिक सह-अस्तित्व होता है. ऐसा लगता है आजकल बहुत से लोग इस विचार को ही बर्दाश्त नहीं कर पाते कि उन्हें इन सूक्ष्म हानिरहित जीवों के साथ रहना ही है. वे उन विज्ञापनों द्वारा मूर्ख बन रहे हैं जो उन्हें यह समझाते हैं कि गुसलखानों में रसायनों के निरंतर उपयोग से ही वे कीटाणु-मुक्त रह सकेंगे.

बिना रसायनों का उपयोग किए स्वच्छ कैसे रहें ?

बाजारों में हजारों तरह के प्रसाधन तथा स्वच्छता बनाए रखने वाली चीजें बिक रही हैं. आप अपने तथा पर्यावरण के लिए निरापद वस्तुओं का चुनाव करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रख सकते हैं:

प्राकृतिक संघटकों की ही तलाश करें. क्रांतिकारी मानव-निर्मित संघटकों के बारे में किए जाने वाले झूठे दावों के चक्कर में न पड़कर सुरक्षित और प्राकृतिक चीजें ही चुनें.

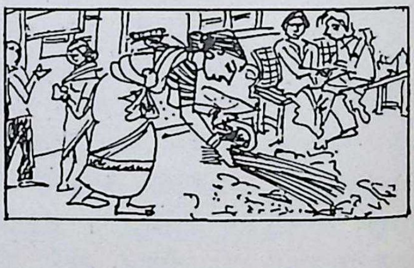

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्याधुनिक लोगों के सर पर सफाई का भूत सवार रहता है. हम चाहते हैं कि हमारे घर-बार साफ-सुथरे और कीटाणुमुक्त रहें. अपने घरों को साफ रखने के लिए हम सैकड़ों प्रकार के रसायनों का उपयोग करते हैं.

हो सकता है कि हमारे घर साफ और खुशबूदार भी नजर आएं मगर वे विषाक्त रसायनों, ब्लीचिंग पाउडरों, दुर्गन्धनाशकों, कीटनाशकों, प्रसाधनों तथा ताजगी प्रदान करने वाले पदार्थों से प्रदूषित हो सकते हैं. क्या हमें इस बात का अहसास है कि उनका जहर हमें नुकसान पहुंचाने के साथ-साथ पर्यावरण को भी दूषित करता है.

''सादा ही सुरक्षित है'': सादे साबुन और शेम्पू ही रंग-बिरंगे साबुन-शेम्पुओं से बेहतर होते हैं. बेकार के अतिरिक्त संघटकों से केवल रासायनिक कारखानों का प्रदूषण ही आप तक पहुंचता है.

सबसे कम पैकेजिंग वाली वस्तुएं ही खरीदें. खासतौर से सौंदर्य-प्रसाधनों का बिलावजह अत्यधिक पैकेजिंग किया जाता है.

दुर्गन्धनाशकों से बचें : इनसे त्वचा के जीवाणु-आवरण को क्षति पहुंचती है.

हम लोग उतने गंदे या गंधायमान नहीं होते जितना हमें विज्ञापनों में बतलाया जाता है. अतः इसके लिए कम से कम मात्रा में रसायनों का उपयोग करें.

स्वच्छता विषाक्तता कैसे फैलाती है?

झागदार टब में स्नान, स्नान-तेल तथा शेम्पू का सम्यक उपयोग तो हानिकर नहीं होता लेकिन डिटरजेन्टों, खुशबूओं तथा अन्य रसायनों से जल-चक्र में अनावश्यक समस्याएं पैदा होती हैं.

हमारे गुसलखाने की आलमारी में दवाओं के अलावा कई प्रकार के रसायन-उत्पाद होते हैं मसलन टूथपेस्ट में टाइटेनियम डाइऑक्साइड (जिसका उपयोग सफेद पेंट में भी होता है) तरल पेराफिन तथा वही डिटरजेन्ट होता है जिसका उपयोग कई धोने के पाउडरों में होता है.

धीरे-धीरे वातावरण में फैलने वाले कीटनाशकों से कमरों में खतरनाक बायोसाइड भर जाते हैं जो सांस द्वारा शरीर में तो पहुंचते ही हैं, खाद्य-पदार्थों में भी प्रवेश कर सकते हैं.

कपड़े धोने की मशीनों तथा वैसे भी प्रत्येक परिवार प्रतिवर्ष 20 से 40 किलोग्राम धोने के पाउडर का इस्तेमाल करता है. एन्जाइम, श्वेतकों, ब्लीच तथा खराश पैदा करने वाले तत्वों से युक्त ये पदार्थ अंततः पानी में पहुंच जाते हैं.

फर्श साफ करने वाले उत्पादों में आमतौर से एथेनाल, अमोनिया, फार्मेल्डीहाइड तथा क्लोरीन जैसे शक्तिशाली रसायन होते हैं. इनके पेट में पहुंचने से वे घातक हो सकते हैं.

एयर फ्रेशनर यानी हवा साफ करने वाले मानव निर्मित रसायन वास्तव में कमरों में बंद हवा को शुद्ध व ताजा बना सकते हैं यह विचार ही नादानी भरा है. शुद्ध करने के बजाए ये पदार्थ हवा को पैरा-डाइक्लोरोबेंजीन जैसे पदार्थों से प्रदूषित करते हैं.

पाखानों को साफ करने वाले क्लोरीनीय ब्लीच तथा जीवाणुनाशक सेप्टिक टैंकों में जैव संतुलन को नष्ट कर देते हैं. टायलेट फ्रेशनर भी पानी को प्रदूषित करते हैं.

रासायनिक स्वच्छता प्रसाधनों के प्राकृतिक विकल्प

चूंकि रासायनिक स्वच्छता प्रसाधन इस ढंग से बनाए जाते हैं कि उनसे तत्काल नतीजे प्राप्त हों, वे बहुत शक्तिशाली तथा इसीलिए हानिकर होते हैं. मगर इन कृत्रिम रूप से निर्मित रासायनिक क्लीनरों का उपयोग करना आवश्यक नहीं है. परम्परागत, प्राकृतिक उत्पादों से निर्मित साधन भी यह काम भलीभांति कर देते हैं. नीचे पांच प्रकार के रासायनिक 'क्लीनरों' से पैदा होने वाली समस्याओं के साथ ही प्रत्येक के प्राकृतिक विकल्प भी दिए गए हैं :

(1) **टॉयलेट (शौचालय) क्लीनर्स :** रासायनिक 'क्लीनरों' में ब्लीच होता है जिससे बाद में सोडियम हाइपोक्लोराइड पैदा होता है. यह एक 'कॉस्टिक' दाहक पदार्थ होता है जो पानी को प्रदूषित करके जल-मल का जीवाणु-संतुलन नष्ट कर देता है. इसका विकल्प है सिरके जैसे किसी भी प्राकृतिक अम्ल का गाढ़ा घोल जो गंदगी की पर्तों को बगैर प्रदूषण फैलाए दूर कर देगा.

(2) **कपड़े-फर्श आदि धोने के पाउडर:** पानी को तो प्रदूषित करते ही हैं वे त्वचा को भी भारी नुकसान पहुंचाते हैं. उनके खुशबूओं जैसे संघटकों का कोई उपयोग नहीं होता. इनके विकल्प के रूप में हाथ की धुलाई के लिए पानी में थोड़ा-सा साबुन और सोडा घोल लेना पर्याप्त होता है. वाशिंग मशीनों के लिए बिना फॉस्फेट वाले पाउडर उपयोग किए जाने चाहिए.

(3) प्रसाधन साबुन, डिटरजेन्ट तथा क्रोकरी धोने के पाउडरों में फॉस्फेट होते हैं जो जल-जीवन को नुकसान पहुंचाते हैं. डिटरजेन्टों में चर्बी तेजी से घुल जाती है और उसके साथ ही त्वचा के नैसर्गिक तेल भी. मीठे पानी वाले क्षेत्रों में गर्म पानी तथा साबुन से यह काम भलीभांति हो सकता है. बहुत ज्यादा धूल या गर्दयुक्त चीजों की सफाई उबलते पानी में सोडा और साबुन मिलाकर की जा सकती है.

(कंज्यूमर एसोसिएशन आफ पेनांग एवं सहावत आलम, मलेशिया के अध्यक्ष एस० एम० मोहम्मद इदरीस द्वारा सप्रेस के सौजन्य से प्रस्तुत) □

मेरूदंडी प्राणियों की उत्पत्ति : नई खोज

□ **डा० जगदीप सक्सेना**

□ लंदन के ब्रिटिश प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय के डा० रिसर्ड जेफरीज के अनुसार मेरूदंडी प्राणियों की उत्पत्ति एक अनोखे और अस्पष्ट प्राणियों के वर्ग से हुई है जो धरती पर चार से छह करोड़ साल पहले मौजूद थे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने इन जीवाश्मों (फॉसिल) को 'कैल्सीकॉर्डेट' का नाम दिया है, क्योंकि इनमें कॉर्डेट लक्षणों के साथ ही कैल्साइट का कंकाल भी मौजूद है (कैल्साइट, कैल्सियम कार्बोनेट का खनिज रूप है).

सत्तर प्रजातियों में विभाजित हजारों कैल्सीकार्डेट जीवाश्म अनुसंधान के लिए उपलब्ध हैं और जेफरीज महोदय पिछले 16 सालों से इन पर अध्ययन कर रहे हैं.

अनेक सालों से जीवविज्ञान की पाठ्य पुस्तकों में मेरूदंडी प्राणियों की उत्पत्ति को बिना किसी जीवाश्म प्रमाण के समझाया जा रहा है. यही कारण है कि मछलियों से पहले के प्राणियों के जीवाश्मों की भली प्रकार पहचान नहीं हुई है.

मेरूदंडी बनाम नोटोकॉर्ड

यहां हम कॉर्डेट और वर्टीब्रेट (मेरूदंडी प्राणी) दोनो की ही उत्पत्ति की चर्चा करेंगे. वे सभी प्राणी कॉर्डेट कहे जाते हैं, जिनमें अपने जीवन-चक्र की किसी न किसी अवस्था में नोटोकॉर्ड (कोशिकाओं की बनी सहारा देने वाली दृढ़ छड़) उपस्थित होती है. सभी मेरूदंडी प्राणियों के भ्रूण में किसी न किसी अवस्था में नोटोकॉर्ड मौजूद होती है. बाद में यही मेरूदंड बनाती है. कुछ आदिम कॉर्डेटों में व्यस्क प्राणी में (जैसे एम्फियोक्सस में) तथा लार्वा में (जैसे ट्यूनी केट्स में) नोटोकॉर्ड मौजूद होती है.

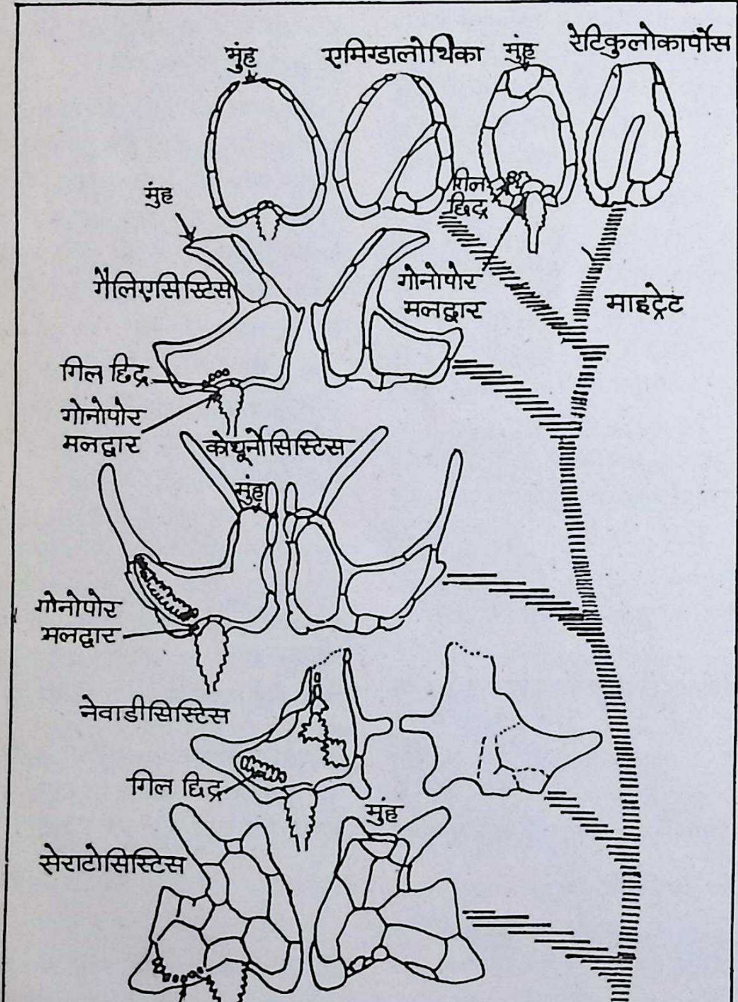

चित्र-1. कुछ कोर्नूट और माइट्रेटों से उनके संबंधों का प्रदर्शन. उनके जीवाश्म मध्य कैम्ब्रियन से ऊपर ओर्डोवीशियन तक ज्ञात हैं.

तारामछली तथा इसी वर्ग (इकाइनोडर्मेटा) के अन्य प्राणियों का शरीर रचना तथा भ्रूण रचना के आधार पर कॉर्डेटों से संबंधित माना जाता है. उदाहरण के लिए कैल्सीकॉर्डेट की कंकाल रचना तारा मछली से मिलती-जुलती है. अगर यह प्रमाण न होता हो यह अन्दाजा लगाना मुश्किल था कि मनुष्य और तारा मछली के बीच इतना गहरा रिश्ता है.

वर्ग कॉर्डेटा में वर्गीकृत होने के लिए प्राणी में, जीवन चक्र की किसी न किसी अवस्था में तीन लक्षण होने चाहिए: (1) प्राणी के सिर से दुम तक नोटोकॉर्ड हो, उसके ऊपर तंत्रिका (नर्व कॉर्ड) हो तथा दोनों ओर पेशियां हों, (2) गले में गलफड़े हों, और (3) मलद्वार शरीर के अन्त में न होकर, दुम से पहले हो.

कॉर्डेटों के ये तीन प्रमुख लक्षण तथा अन्य लक्षण कैल्सीकॉर्डेटों के सभी जीवाश्मों में मौजूद हैं.

व्यापक प्रमाण

कैल्सीकॉर्डेटों की शरीर रचना पर विस्तृत अध्ययन करने के बाद जेफरीज इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि केवल कुछ सेंटीमीटर लंबे यही प्राचीन समुद्री प्राणी मेरूदंडी प्राणियों के सबसे पुराने पूर्वज हैं. सन् 1930 में स्वीडन के प्राणिविज्ञानी टोर्सटेन जिसलेन ने भी यही बात कही थी, परंतु किसी ने इसे गंभीरता पूर्वक नही लिया. लेकिन आज अपनी बात सिद्ध करने के लिए जेफरीज के पास व्यापक प्रमाण हैं.

सभी कैल्सीकॉर्डेटों के एक दुम और एक बड़ा सिर है, लेकिन इन्हें दो वर्गों में बांटा गया है. पहले के सभी आदिम कैल्सीकॉर्डेट असममित (एसिमेट्रिकल) हैं. इन्हें कोर्नूट कहा गया है. दूसरे वर्ग को माइट्रेट कहा गया है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

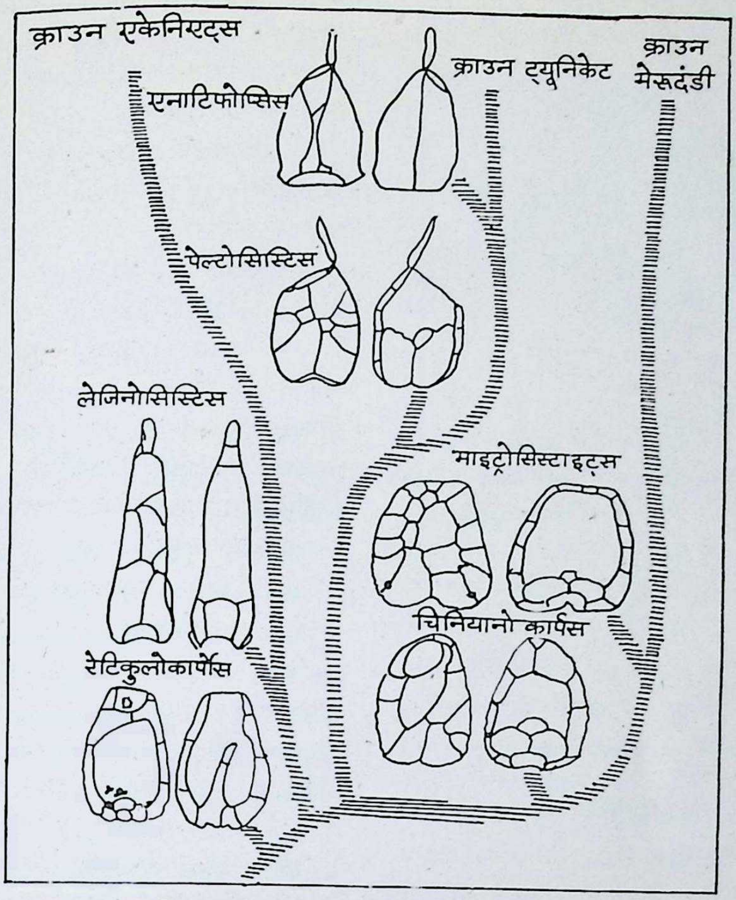

चित्र-2 कुछ माइट्रेट (केवल सिर) और एक्रेनियेट के क्राउन ग्रुप से उनके संबंध प्रदर्शित (सिस्टेमेटिक्स एसोसिएशन)

इसके प्राणी बाहरी तौर पर लगभग सममित है और 4 करोड़ 80 लाख साल पहले के मेरूदंडी प्राणियों की तरह लगते हैं.

समुद्र की तलहटी पर

कोथुर्नोसिस्टिस एलिजी नामक कोर्नूट पर सबसे ज्यादा अध्ययंन हुए हैं. इसे गिरवान (स्कॉटलैंड) ने पास की साढ़े चार करोड़ साल पुरानी तलहट से प्राप्त किया गया है. अन्य कैल्सीकॉर्डेट की तरह यह भी समुद्र की तलहटी पर पट पड़ा रहता है. इसके सिर का ऊपरी और निचला तल कैल्साइट की प्लेटों से ढका है, तथा ये दोनों प्लेटें कैल्साइट की एक बड़ी प्लेट के फ्रेम से चमड़ी के माध्यम से जुड़ी हैं. सिर के ऊपरी भाग में केवल बाईं ओर 16 छिद्र हैं. डा० जेफरीज इन्हें गलफड़े मानते हैं.

केवल एक ओर गलफड़े होना कुछ आश्चर्यजनक-सा लगता है. परंतु, यह डा० जेफरीज के सिद्धान्त को और मजबूत करता है, क्योंकि **एम्फियोक्सस** के भ्रूण में केवल बाईं ओर ही गलफडे होते हैं. सभी कॉर्डेटों की तरह सिर के अगले भाग में मुंह और दुम की बाईं ओर मलद्वार था. इसी छिद्र से शुक्राणु और अंडे भी बाहर आते थे.

डा० जेफरीज कोथुर्नोसिस्टिस के सिर के अंदर कई कक्षों की उपस्थिति का प्रमाण मिला है. सबसे ज्यादा कक्ष गलफडों के नीचे पाए गए. उनके अनुसार गलफडों से आने वाले जल–प्रवाह में मौजूद खाद्य पदार्थ इन कक्षों के श्लेष्मा (म्यूकस) में धंस जाते हैं. सभी जीवित आदिम कॉर्डेट इसी प्रकार भोजन ग्रहण करते हैं.

सिर के निचले भाग में कुछ कांटे जैसी संरचनाएं होती हैं, जिनसे यह समुद्र की तलहटी पर चिपका रहता है. इसकी दुम पर प्लेटें लगी थीं और मजबूत पेशियां थीं, जिससे लचीली नोटोकॉर्ड के विरुद्ध दुम को इधर-उधर हिलाया जा सकता था. इस प्रकार यह समुद्र की तलहटी पर केवल पीछे की ओर बढ़ सकता था. **कोथुर्नोसिस्टिस** का मस्तिष्क दुम के अगले भाग में स्थित था, जिससे निकलने वाली तंत्रिकाएं स्थिर और दुम, दोनों को ही संचालित करती थी.

सममित पूर्वज

कोथुर्नोसिस्टिस अनोखे असमयित रूप की व्याख्या आवश्यक है. डा० जेफरीज के अनुसार इसका विकास किसी सममित प्राणी से हुआ है, परंतु प्रकृति ने इसे 'फ्लैट फिश' की तरह दाईं ओर व्यवस्थित कर दिया.

जीवित कॉर्डेटों जैसा सममित रूप माइट्रेट वर्ग के प्राणियों में देखा जा सकता है. **मिट्रोसिस्टेला** इसका अच्छा उदाहरण है. इसे फ्रांस और चेकोस्लोवाकिया में 4 करोड़ 80 लाख साल पुरानी समुद्री तलहट में पाया गया.

इसका सिर बाहय रूप से मेरूदंडी प्राणियों क्री तरह द्विपक्षीय रूप से सममित है. परंतु भीतरी भाग **कोथुर्नोसिस्टिस** जैसा है. गलफडे बाहरी नहीं हैं, बल्कि भीतर हैं. सिरे के पिछले भाग में गलफड़ों से आए पानी को बाहर करने के लिए दो छिद्र हैं. **मिट्रोसिस्टेला** में पार्श्व-रेखा

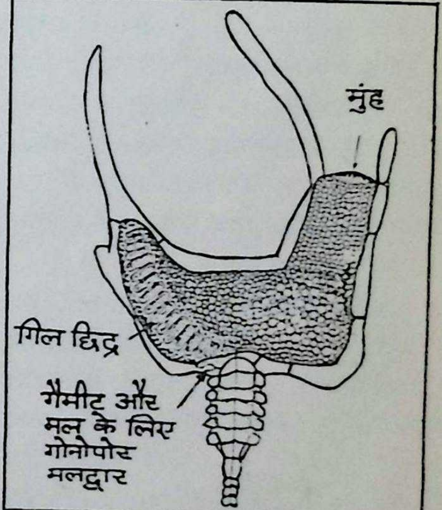

चित्र-3 कोथुर्नोसिस्टिस, पृष्ठीय बाहरी विशेषताएं दिखाते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

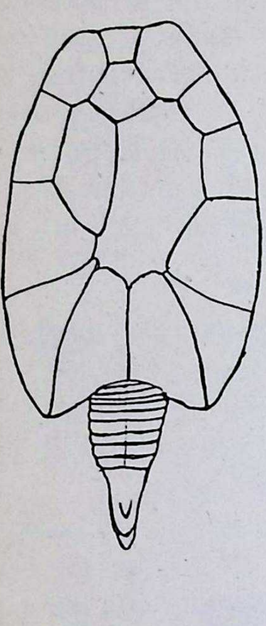

चित्र-4 माइट्रोसिस्टेला पृष्ठीय भाग, प्रथम जबड़ा रहित मछली जो माइट्रेट से विकसित हुई

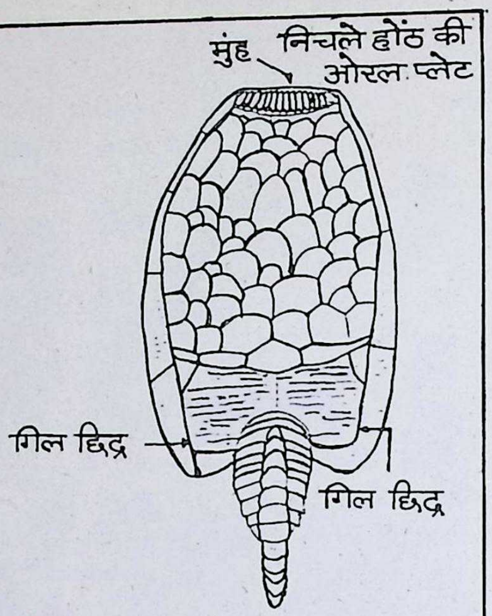

चित्र-5 मिट्रोसिस्टेला तलीय भाग

भी पाई जाती है, जो आगे चलकर मछलियों में बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुई. प्लेट युक्त दुम की पूरी लंबाई में नोटोकॉर्ड है और इसके ऊपर एक दरार में तंत्रिका स्थित है. चार करोड़ 80 लाख साल पुराने प्राणी के रूप में इसका मस्तिष्क अत्यन्त विकसित और मछली जैसा है. **कोथुर्नोसिस्टिस** की तरह इसका मस्तिष्क भी दुम और सिर के जोड़ पर स्थित है. मेरूदंडी प्राणियों के भ्रूण की तरह इसके भी अग्र मस्तिष्क है और, पश्च तथा मध्य मस्तिष्क संयुक्त रुप में पाए जाते हैं.

इसकी तंत्रिकाएं कंकाल में धंसी थीं. इसलिए जीवाश्मों में इनकी सही स्थिति का पता बड़ी आसानी से लग जाता है. जेफरीज ने इसी आधार पर पूरे तंत्रिका तंत्र की रचना बताई है. कंकाल के नीचे दो पारभासी नेत्र पाए गए हैं. सिर के नीचे तंत्रिकाएं इस प्रकार व्यवस्थित हैं कि यह आगे की ओर तैर सकता है. यही वजह है कि जेफरीज इसे मछलियों का पूर्वज मानते हैं.

पिछले 18 सालों में प्राप्त नई जानकारी को जेफरीज ने एक पुस्तक में संजोया है, जिसे ब्रिटिश प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय ने प्रकाशित किया है. इसका शीर्षक है-'द एनसेस्ट्री ऑफ द वर्टीब्रेट्स'. इस पुस्तक में कैल्सीकॉर्डेट तथा मेरूदंडी प्राणियों के बीच के संबंधों तथा कोर्नूट और तारा मछली के नीचे के संबंधों पर प्रकाश डाला गया है. जेफरीज के अनुसार चेकोस्लोवाकिया, फ्रांस और अमेरिका के संग्रहालयों में रखे प्राणि नमूनों के अध्ययन के बिना यह पुस्तक लिखना संभव नहीं होता.

अपने अध्ययन के दौरान जेफरीज एक ही प्रजाति के अधिक से अधिक नमूनों का निरीक्षण करते हैं और उनका चित्र बनाते हैं. उदाहरण के लिए **कोथुर्नोसिस्टिस** और **मिट्रोसिस्टेला** पर अध्ययन के दौरान उन्होंने प्रत्येक के 200 नमूनों का अध्ययन किया.

उन्होंने अध्ययन के लिए नया तरीका अपनाया. इस तरीके के अंतर्गत वे प्राणियों का वर्गीकरण करते और तद्नुसार विकास के इतिहास में बदलाव करते जाते. इस तरीके से प्राकृतिक इतिहास के अध्ययन की शुरूआत जर्मन कीटविज्ञानी विली हीनिग ने की थी. इसके अंतर्गत प्राणियों को मिलते-जुलते लक्षणों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है न कि उनकी प्राचीनता के आधार पर. इसमें जीवाश्मों की आयु का कोई विशेष महत्व नहीं रह जाता. □

रेगिस्तान में छिपे पानी की खोज

□ डेबोरा पग

□ सदियों पहले अफ्रीका का जो हिस्सा अनाज की जरूरतें पूरी करता था, आज वहां रेगिस्तान है. अब वहां न तो अनाज है न खाने वाले लोग. ऐसा क्यों हुआ? यह अबूझ पहेली है.

हाल ही में मिस्र के पश्चिमी रेगिस्तान में विशेषज्ञों को उपग्रह चित्र के माध्यम से पानी के विशाल भण्डार का पता लगा है. अनुमान है पानी की मात्रा इतनी है कि पूरे अफ्रीका के बंजर इलाकों में खेती की जा सकती है. रेगिस्तान में परीक्षण के तौर पर की गई खुदाई (ड्रिलिंग) से संकेत मिला है कि एक अकेले कुएं से दो लाख एकड़ जमीन में 200 साल तक खेती की जा सकती है.

एक मिस्री विशेषज्ञ डॉ0 अलबज के अनुसार ''वहां इतना पानी हो सकता है कि उससे नील नदी की घाटी जैसी 20 किलोमीटर चौड़ी घाटी बन सकती है. यदि इस सूखे क्षेत्र में कभी नील जैसी विशाल नदियां थीं तो वहां काफी मात्रा में वर्षा तथा सतही पानी रहा होगा. इस पानी का काफी हिस्सा तो वाष्पित हो गया होगा और बचा पानी मौजूद दरारों वाली चट्टानों से होकर नीचे जमीन की गहराई के स्रोतों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदियों पहले अफ्रीका का जो हिस्सा अनाज की जरूरतें पूरी करता था, आज वहां रेगिस्तान है. अब वहां न तो अनाज है न खाने वाले लोग. ऐसा क्यों हुआ? यह एक अबूझ पहेली है. मिस्र के पश्चिमी रेगिस्तान में विशेषज्ञों को उपग्रह चित्रों के आधार पर पानी के विशाल भंडार का पता लगा है. एक बार पानी निकल जाए तो बस, रेगिस्तान के बंजर इलाकों को पुनः हरा भरा किया जा सकता है.

संग्रहित हो गया होगा.

''वह पानी अब भी वहां होना चाहिए'' कहते हैं डॉ0 अलबज, जो बोस्टन विश्वविद्यालय स्थित दूर संवेदन केंद्र के मिस्री निदेशक हैं, जिन्होंने मिस्र सरकार की मदद से पश्चिमी रेगिस्तान स्थित जमीन के भीतर गड़ी हुई घाटियों के संगम पर परीक्षात्मक ड्रिलिंग प्रारंभ की है. खोज से उन्हें पूरा विश्वास है कि यह रेगिस्तान काफी बड़ी मात्रा में पानी उपलब्ध करने की क्षमता छुपाए है. उन्होंने यह भी चेतावनी दी है कि ''यह सारा पानी जीवाश्म जल (फॉसिल वाटर) है और चूंकि इसकी अपनी कोई पुनर्जाग्रत करने की क्षमता अभी मालूम नहीं है, उसे अजस्त्र स्रोत न मानते हुए काफी सख्ती से उपयोग किया जाना चाहिए.''

मिस्र के इस रेगिस्तान में पानी की खोज इस मायने में इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि सारा देश इस समय अपनी जलपूर्ति उस नील नदी से कर रहा है, जिसका 86 प्रतिशत जल वह सूखा प्रवण इथियोपिया से प्राप्त करता है.

कुछ वैज्ञानिकों का भी अनुमान है कि मिस्र के इस रेगिस्तान में रेत के नीचे इतना पानी है कि पूरे अफ्रीका के बंजर इलाकों को हरा किया जा सकता है. एक मिस्री विशेषज्ञ डॉ० कमाल हफनी ने जो भू-जल अनुसंधान संस्थान के निदेशक हैं हाल ही में चित्रों पर आधारित ऐसा नक्शा तैयार किया है जिसमें आठ स्रोतों की मौजूदगी का पता चलता है.

''इस समय मिस्र प्रतिवर्ष तीन अरब घनमीटर भूजल का उपयोग करता है. अगर सारे इलाकों का पता चल जाए तो यह आंकड़ा आठ अरब घनमीटर से भी अधिक होगा.''

'नील नदी का पानी अखुट है' इस विश्वास को उस समय धक्का लगा जब एक दशक तक चलने वाली अनावृष्टि ने, जिसने सूडान और इथियोपिया को तबाह कर दिया था, मिस्र के दैत्याकार असवान बांध के जलस्तर को प्रभावित करना शुरू कर दिया था.

बिगड़ती स्थिति को देखते हुए तत्काल वैकल्पिक स्रोतों की खोज शुरू हुई और भू-जल के कई स्रोत खोज निकाले गए. लेकिन ये स्रोत काफी खर्चीले साबित हुए. डॉ० अलबज के अनुसार, ''उपग्रह की इस नई प्रौद्योगिकी के कारण जल खोजने में होने वाले खर्च में अन्य स्रोतों की अपेक्षा 90 प्रतिशत की बचत है. ''बांध बनाने या नदी का पानी नलों द्वारा दूर-दराज के इलाकों तक पहुंचाने की अपेक्षा ड्रिलिंग बहुत कम खर्चीला है.

वैसे परंपरागत वैज्ञानिकों तथा भू-वैज्ञानिक विश्लेषणों को मरुस्थलों का वातावरण रास नहीं आता, वहीं क्षेत्र में वनस्पति आवरण या बादल न होने के कारण दूर संवेदन के लिए वहां का माहौल आदर्श होता है.

पश्चिमी रेगिस्तान से भू-जल प्राप्त करने का इतिहास काफी पुराना है. गहरे कुओं से पानी पर आधारित सिंचाई प्रणाली के प्राचीन कालीन प्रमाण मिलते हैं. वैज्ञानिकों का विश्वास है कि एक जमाने में इन्हीं कुओं की मदद से लगभग दस लाख एकड़ जमीन को उपजाऊ बनाया गया था.

अब ढाई हजार बरस बाद वैज्ञानिकों को एक बार फिर आशा है कि वे इस प्राचीन करतब को दुहराते हुए भू-जल के ऐसे पुनर्जीवित किए जा सकने वाले योग्य स्रोत खोज लेगें जिनके द्वारा रेगिस्तान में कायम रहने योग्य विकास संभव हो सकेगा.

(सप्रेस, पेनोस, पर्यावरण कक्ष एवं गांधी शांति केंद्र के सहयोग से प्रस्तुत) □

कैंसर के विरुद्ध कंप्यूटर का अभियान

□ **राजेन्द्र कुमार राय**

□ वर्षों से चल रहे वैज्ञानिक अनुसंधानों के बाद भी अभी तक कैंसर का कोई मुकम्मल इलाज नहीं खोजा जा सका है. वैज्ञानिकों और चिकित्सकों का कहना है अगर इसकी पहचान समय रहते हो जाए तो हर वर्ष लाखों लोगों को मौत से बचाया जा सकता है.

प्रारंभ से ही कैंसर की पहचान करने के तरीके जोरों से खोजे जा रहे हैं. नित्य नए-नए अनुसंधान कार्य हो रहे हैं. इनमें मनुष्य के गुण -दोषों की नियामक जीन का मानचित्र बनाने के लिए एक वैज्ञानिक अभियान भी शामिल है. इससे माता-पिता से मिले बिगड़े जीन के कारण होने वाले कैंसर का पता चल सकेगा.

इस अभियान में ब्रिटेन की एक कंपनी ने एक नए किस्म का कंप्यूटर बनाकर बड़ा योगदान दिया है. इस कंप्यूटर का नाम है-एक्टिव मेमोरी टैक्नोलोजी (ए एम टी). एकजैविक भाषा को इस कंप्यूटर का आधार बनाया गया है. इस भाषा की खोज के लिए डा० जे० वाटसन और फ्रांसिस क्रिक को 1962 में नोबेल पुरस्कार दिया जा चुका है.

मनुष्य के शरीर में प्रकृति प्रदत्त एक जैविक भाषा की खोज 1953 में कैंब्रिज विश्वविद्यालय के वाटसन व क्रिक ने की थी. इन्होंने पता लगाया कि जीवन की भाषा के चार अक्षर हैं-ए (एडीबीन), जी (गुआनीन), टी (थाइमिन) और सी (साइटोसिन). ये चारों मिलकर एक दोहरी कुंडली (डबल हेलिक्स) में विविध क्रमों में स्थित होते हैं. इस दोहरी कुंडली को डी-आक्सी राइबोन्यूक्लिक एसिड (डी एन ए) स्ट्रैंड कहा जाता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि पूरे मानव शरीर की सभी कोशिकाओं के डी एन ए स्ट्रैंड को खींचकर लंबा कर दिया जाए तो इस रासायनिक फीते को 6 बार पृथ्वी से चन्द्रमा तक लपेटा जा सकता है और फीता भी कैसा जिस पर लिखी हैं मानव की सारी फितरत. आज मानव 'जीनोम' परियोजना के अंतर्गत दुनिया भर के वैज्ञानिक डा० वाटसन के नेतृत्व में इसे पढ़ने का प्रयास कर रहे हैं. मानव जीन की यह सूची सन् 2000 तक पूरा करने का लक्ष्य है. दुनिया भर में अलग-अलग प्रयोगशालाओं में मानव जीन को पहचानने का काम वर्षों से चल रहा है.

इस परियोजना के लिए बनाया गया कंप्यूटर आरंभ में प्रोटीनों में अमीनो एसिड का विश्लेषण करने के लिए ही उपयोग में लाया गया था. फिर एडिनबरा विश्वविद्यालय (स्काटलैंड) की बायो कंप्यूटिंग रिसर्च ने डी एन ए के जीन क्रमों की तुलना करने का कार्यक्रम भी विकसित किया. यह यूनिट 'प्रौसर्च' नाम से प्रोटीन का डेटाबेस सर्च करने वाला प्रोग्राम बना चुकी है. इससे डी एन ए में जीन या वंशाणुक्रमों की तुलना करके सही आनुवंशिक जानकारी प्राप्त करने में मदद मिलेगी. जिससे बहुत सी बीमारियों का पता लगाया जा सकेगा. बीमारी का पता लगाने के लिए उस रोग से जुड़े जीन या वंशाणुक्रम खोजने में कंम्यूटर डेटाबेस वैज्ञानिकों की सहायता करेंगे. इससे रोगों की जांच, रोकथाम और उपचार के नए तरीके खोजे जा सकेंगे.

कैंसर की पहचान के लिए 'अल्ट्रासोनिक टिश्यू करैक्टराइजेशन' (यू टी सी) नामक विधि का विकास भी जोरों पर है. इस विधि में ध्वनि तरंगों की सहायता से कैंसर की पहचान की जाती है.

ध्वनि तरंगें जब बीमार कोशिकाओं के समूह (ऊतकों) से टकरा कर लौटती हैं तो उनमें कुछ परिवर्तन आ जाता है. इन परिवर्तनों से ऊतकों की गहराइयों में चल रही कोशिकीय उथल पुथल का अनुमान लगाया जाता है. इस विधि से प्राप्त नक्शे को 'हिस्टोग्राफ' कहते हैं. किसी भी व्यक्ति के पूरे शरीर का हिस्टोग्राफ तैयार करके यह पता लगाया जा सकता है कि उसके शरीर में कहीं कैंसर की आशंका तो नहीं है. इसके पक्ष में सबसे सुखद बात तो यह है कि सारा काम बगैर काटे-पीटे हो जाता है. यह कार्य ऐसी ध्वनि तरंगें करती हैं जिन्हे हमारे कान नहीं सुन सकते. वास्तव में इस विधि में ध्वनि विज्ञान को बहुत परिष्कृत रूप में उपयोग में लाया जाता है. इसलिए ध्वनि तरंगे काफी सावधानी से भेजी जाती हैं.

बहुत तेज गति से भेजी गई ध्वनि तरंगें वापस नहीं लौटतीं. इसका कारण यह होता है कि भेजी गई ध्वनि तरंगों में से कुछ तरंगे ऊतकों द्वारा सोख ली जाती हैं और कुछ विभिन्न प्रकार के कोणों में फैल जाती हैं. यह सब कुछ बहुत ही संवेदनशील और सूक्ष्म उपकरणों में रिकार्ड हो जाता है. ध्वनि तरंगों को भेजने का काम बहुत ही सावधानी से किया जाता है क्योंकि इन ध्वनि तरंगों को भेजने में जरा सी भी गलती हो जाए तो मौत तक हो सकती है.

हमारा शरीर करोड़ों कोशिकाओं से मिलकर बना है. इनमें प्रत्येक कोशिका का अपना अलग महत्व है और करोड़ों कोशिकाओं में किसी एक के भी कार्य न करने का अर्थ हैं—कैंसर. अतः चिकित्सा वैज्ञानिकों का मानना है कि शरीर में काम न कर रही कोशिकाओं की पहचान करके प्रारंभ में ही कैंसर की पहचान की जा सकती है. ए एम टी कंप्यूटर और एडिनबरा विश्वविद्यालय में सहयोग की शुरूआत इम्पीरियल कैंसर रिसर्च फंड के अध्यक्ष डा० आर० कैटराल की पहल पर हुई थी. डा० कैटराल का विचार है कि प्रयोगशाला में इस संबंध मे चल रहे अनुसंधानों को नई प्रौद्योगिकी से काफी सहायता मिलेगी और इस क्षेत्र में काफी तेज गति से कार्य किया जा सकेगा.

पिछले वर्ष लंदन में इम्पीरियल कैंसर रिसर्च फंड की कैंसर अनुसंधानशाला में 'ए एम टी-डी ए पी' कंप्यूटर के साथ-साथ प्रोटीन की खोज करने वाला प्रोसर्च कंप्यूटर भी लगाया गया है, इससे प्रोटीन में एमिनो एसिडों के क्रमों की तुलना करना काफी सरल हो गया है.

इस नए अनुसंधान से प्रोटीन का डेटाबेस बढ़ता जा रहा है और जीन-एमिनो एसिड प्रोटीन के सही-सहो क्रम पता लगने से कैंसर अनुसंधान को एक नई दिशा मिल रही है. पहले जो काम कई घंटों में होता था, वह अब तीन चार मिनट में पूरा हो जाता है. कोशिका के स्तर पर कहां और किस किस कारण से कैंसर हो सकता है, यह रहस्य शीघ्र ही कंप्यूटर खोजने लगेगा ऐसी आशा है. □

जल स्रोतों का दम घोंट रही-एक घातक खरपतवार

□ शालिनी शर्मा

□ आगामी छः वर्षों में पानी में उगनेवाली घातक खरपतवार 'वाटर हायसिंथ' (जल-रक्तमणि पुष्प) भारत में अपने अस्तित्व के सौ वर्ष पूरे कर लेगी. जहां यह अवसर इस मूक पौधे के लिए खुशी का होगा, वहीं जहां तक देश की जल-प्रणालियों का सम्बन्ध है, यह एक दुःस्वप्न ही होगा. देश के अनेक तालाब, नदियां तथा झीलें इस खरपतवार से पटे हुए हैं. इसके रक्ताभ फूल भले ही देखने में खूबसूरत नजर आते हों, वे जल-मार्गों को अवरूद्ध कर झीलों का दम घोंट रहे हैं. देश की पहले से ही बोझिल जल-प्रणालियों के सामने एक अभूतपूर्व संकट होने वाला है.

ब्राजील में जन्मा यह पौधा यूरोप को छोड़कर सारी दुनिया में पाया जाता है. भारत में 1896 में इसके आगमन के बाद से यह अब देश के दस प्रमुख खरपतवारों की सूची में सबसे ऊपर है. यहां की उष्ण आर्द्रतायुक्त हवा इस पौधे को बेहद रास आई है. सर्वेक्षणों से पता चला है कि वाटर हायसिंथ सबसे ज्यादा

(शेष पृष्ठ 413 पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चट्टान निक्षेपों द्वारा काल का निर्धारण

□ डा० विजय कुमार उपाध्याय

□ आज हम अपने दैनिक कार्य कलाप में समय को मापने के लिए घड़ियों का उपयोग करते हैं. घड़ी की सहायता से ही हम कह सकते हैं कि अमुक घटना अमुक समय पर घटी. परंतु प्रश्न उठता है कि आज जो घड़ी हम रोजाना उपयोग में लाते हैं. क्या उससे पृथ्वी पर घटने वाली हर घटना के समय की जानकारी हमें मिल सकती है.

हम जानते हैं कि हमारी पृथ्वी बहुत ही पुरानी है तथा इस पर कुछ न कुछ प्राकृतिक घटनाएं हर समय घटती रहती हैं. पृथ्वी की उत्पत्ति, चट्टानों का निर्माण तथा जीवन का उदय आदि कुछ ऐसी घटनाएं हैं, जिनके समय की जानकारी की उत्कंठा वैज्ञानिक के मन में सदा से रही है. पृथ्वी की उत्पत्ति से अब तक के समय को भूवैज्ञानिक (जियोलोजिकल) काल कहा जाता है. भूवैज्ञानिक काल की जानकारी रोजाना उपयोग में आने वाली मानव निर्मित घड़ियों से सम्भव नहीं है. इसकी जानकारी के लिए हमें किसी ऐसी समय सूचक प्रणाली की जानकारी प्राप्त करनी होगी जो पृथ्वी पर सदैव उपस्थित रही हो.

उन्नीसवीं शताब्दी में भूवैज्ञानिक समय के माप के लिए अनेक प्रयास किए गए. सभी प्रयास काफी विचारोपरान्त किए गए थे परंतु सब में कुछ न कुछ त्रुटि थी. सभी त्रुटियों के बावजूद उन विचारों ने काल-निर्धारण के संबंध में हमारी जानकारी में काफी वृद्धि की तथा उनसे पृथ्वी के इतिहास को समझने में पर्याप्त सहायता मिली. वैसे ही विचारों की सहायता से संसार की चट्टानों को सापेक्षिक काल के आधार पर कई इकाइयों में बांटा गया. इस आधार पर भूविज्ञानवेत्ता यह कहने में सक्षम हो गए कि कौन सी चट्टान पहले बनी तथा कौन सी बाद में, उनमें उपस्थित जीवाश्मों को देखकर सापेक्ष काल-इकाइयां निर्धारित की गईं तथा उनका नामकरण किया गया. हालांकि उनका सही-सही समय बताना संभव नहीं था. उपर्युक्त काल-इकाइयों की श्रेणी को ही भूवैज्ञानिक काल पैमाना (जिओलोजिकल टाइम स्केल) के नाम से जाना जाता है.

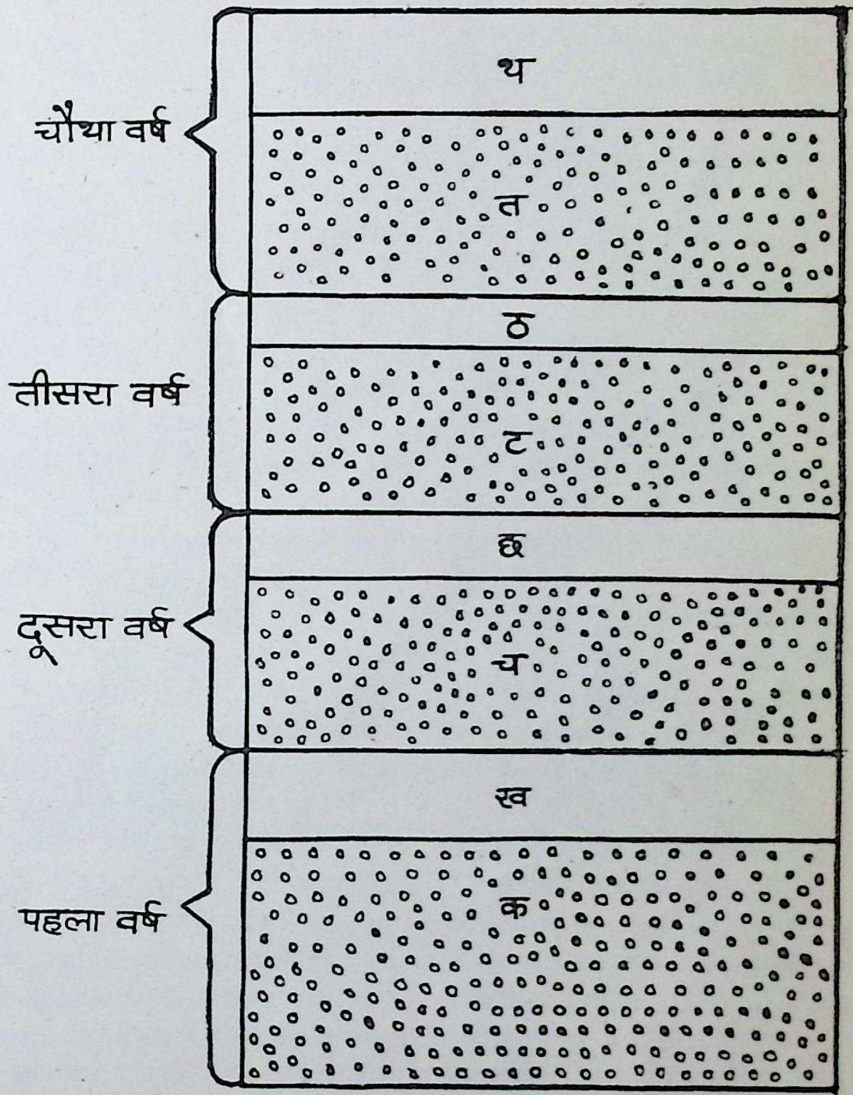

चित्र-वार्व की बनावट. क, च, ट, त: ग्रीष्म परतें; ख, छ ठ, थ; शीत परतें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहां अवसादों का निक्षेप हो रहा है, निपेक्ष की दर काफी परिवर्तनशील हो सकती है. पर्यावरण के अनुसार अवसाद-निक्षेप की दर कहीं-कहीं एक सेंटीमीटर प्रति 1000 वर्ष हो सकती है तो कहीं पर यह हजार गुणा अधिक हो सकती है. इन त्रुटियों को दूर करने के लिए ऐसा सोचा गया कि यदि किसी भूवैज्ञानिक काल में निर्मित चट्टानों की पूरी श्रेणी की मोटाई माप कर एक औसत निक्षेप-दर से भाग दिया जाए तो पूरी श्रेणी का निर्माण काल गणना करके बताया जा सकता है. इस तरह की गणना एक नहीं अनेक बार की गई. अधिकतर गणनाओं में संसार में उपस्थित पूरी अवसादी चट्टानों की मोटाई 30-100 किलोमीटर तक आती थी, तथा इनका औसत निर्माण काल लगभग 10 करोड़ वर्ष आता था. अनेक शोधकर्त्ताओं ने पाया कि संसार के कुछ क्षेत्रों में कुछ समय ऐसा था जिसमें अवसाद-निक्षेप के कोई संकेत नहीं मिलते थे. इस त्रुटि को दूर करने के लिए भूवैज्ञानिकों ने एक ऐसी कालावधि की कल्पना की जिसमें या तो निक्षेप द्वारा चट्टानों का निर्माण नहीं हुआ या फिर पूर्वनिर्मित चट्टानों का अपक्षय होता रहा. चट्टान निर्माण-काल की गणना में इस कल्पना को ध्यान में रखकर आवश्यक सुधार किया गया तो पूर्ण निर्माण काल कई अरब वर्षों में आता था.

अठारहवीं शताब्दी में एक विशेष भूवैज्ञानिक घड़ी का प्रस्ताव रखा गया था. यह प्रस्ताव था समुद्र की लवणता के संबंध में. इसके पीछे यह कल्पना थी कि आज जो भी लवण समुद्र में हैं वह नदियों द्वारा स्थल क्षेत्रों में उपस्थित चट्टानों से घुलकर आया है. इस तरह यदि पूरे समुद्र में उपस्थित लवण की मात्रा की गणना कर प्रतिवर्ष नदियों द्वारा लाए गए लवण की मात्रा से भाग दे दिया जाए तो समुद्रों की आयु की गणना आसानी से की जा सकती है. जिस समय यह विचार व्यक्त किया गया था उस समय समुद्रों के अध्ययन के लिए अभियान संगठित नहीं किए जा सकते थे तथा समुद्रों का आयतन भी नहीं मालूम था. परंतु अब तक किए गए अध्ययनों से समुद्रों का कुल आयतन तथा उनमें उपस्थित कुछ लवणों की मात्रा आज हमें ज्ञात है.

यदि इनमें से किसी एक लवण जैसे सोडियम क्लोराइड को हम आधार मान लें तो समुद्रों की आयु की गणना की जा सकती है. आज हम जानते हैं कि संसार के समुद्रों में कुल सोडियम क्लोराइड की मात्रा लगभग 1.6×10^{16} मीट्रिक टन है, तथा नदियों द्वारा प्रतिवर्ष लगभग 1.6×10^{8} मीट्रिक टन सोडियम क्लोराइड समुद्रों में लाया जाता है. इस प्रकार गणना करने पर समुद्रों की औसत आयु लगभग 10^8 वर्ष ($1.6 \times 10^{16} / 1.6 \times 10^{8}$) आती है. परंतु समुद्री लवणता रूपी भूवैज्ञानिक घड़ी में बाद में चलकर कई त्रुटियां मालूम की गईं. सोडियम क्लोराइड की जितनी मात्रा समुद्रों में आती है, वह पूरी की पूरी नहीं टिक पाती. आज स्थल के अनेक भागों में सेंधा नमक (सोडियम क्लोराइड) के पहाड़ पाए जाते हैं. वैज्ञानिकों की धारणा है कि किसी काल में इन स्थानों पर समुद्र थे जिनसे सोडियम क्लोराइड का निक्षेप हुआ. कालांतर में समुद्र वहां से दूर हट गए तथा नमक के पहाड़ उन स्थानों पर बने रह गए. इस प्रकार समुद्रों में लाया गया बहुत सा लवण आज पहाड़ों के रूप में स्थल भागों में खड़ा है. अतः आज समुद्र में उपस्थित लवण की मात्रा के आधार पर समुद्र की आयु-गणना त्रुटि-पूर्ण है.

कुछ भूवैज्ञानिकों ने पृथ्वी से ताप-विकिरण को भूवैज्ञानिक घड़ी के रूप में उपयोग में लाने का तरीका निकाला, हालांकि पृथ्वी से ताप का पलायन बहुत ही कम है तथा इसे आसानी से अनुभव नहीं किया जाता. परंतु अनेक स्थानों पर इस ताप विकिरण को मापा जा चुका है. माप से यह पाया गया है कि पृथ्वी की सतह के प्रत्येक वर्ग सेंटीमीटर से प्रतिवर्ष 50 कैलोरी ताप ऊर्जा विकिरण द्वारा बाहर निकल रही है. सन् 1862 में लॉर्ड केल्विन ने कल्पना की थी कि आरंभ में पृथ्वी द्रव अवस्था में थी और इसका तापक्रम लगभग 2500° सेल्सियस था. पृथ्वी की गतिशीलता के कारण इससे ताप का विकिरण होता गया पृथ्वी ठंडी होकर द्रव से ठोस में परिणित हुई. इस प्रकार ताप विकिरण के आधार पर केल्विन ने अनुमान लगाया कि पृथ्वी की उत्पत्ति लगभग 10 करोड़ वर्ष पूर्व हुई थी.

एक अन्य भूवैज्ञानिक घड़ी है वार्व. वार्व उस तरह के युग्म पतले अवसादी परतों को कहते हैं. जिनमें मौसम परिवर्तन के कारण रंग, मोटाई तथा अन्य गुणों में विभिन्नताएं पाई जाती हैं. एक वार्व की युग्म परतें एक वर्ष के अवसाद चक्र का प्रतिनिधित्व करती हैं. वार्व प्रायः हिमनदीय अवसादी परतों में अधिक पाए जाते हैं. हिमनद क्षेत्रों में एक वर्ष के कालक्रम में बर्फ के पिघलने तथा जमने के चक्र आते हैं. इस क्षेत्र में ऐसी अनेक द्रोणियां (बेसिन) होती हैं, जहां प्रत्येक वर्ष में अपक्षय से उत्पन्न कण अवसादी चट्टानों के रूप में परत दर परत जमा होते जाते हैं. हिमनद क्षेत्रों में जब गर्म मौसम आता है तो बर्फ के पिघलने से अधिक पानी निकलता है जो अपक्षय जनित कणों को बहाकर किसी द्रोणी में जमा करता है. इस मौसम में ठंडे मौसम की अपेक्षा निक्षेपित अवसाद की परत अधिक मोटी होती है तथा इससे निक्षेपित कण बड़े-बड़े होते हैं. इसी क्षेत्र में जब जाड़े का मौसम आता है तो बर्फ का पिघलना लगभग बंद हो जाता है तथा द्रोणियों में जमा पानी की ऊपरी सतह पर बर्फ की एक परत बन जाती है. इस कारणवश बाहर के कणों का आना तथा जमा होना रुक जाता है. परंतु इस द्रोणी के जल में जो छोटे-छोटे कण निलम्बित या घुले रहते हैं वे द्रोणी की पेंदी में धीरे-धीरे पतली परत के रूप में जमा हो जाते हैं. इसमें कार्बनिक पदार्थ भी मिले रहते हैं. इसी कारण इस परत का रंग गहरा रहता है, इस प्रकार एक वर्ष के चक्र में दो परतें निर्मित होती हैं पहली ग्रीष्म परत जो मोटी तथा हल्के रंग की होती है तथा इसमें उपस्थित कण बड़े-बड़े होते हैं. दूसरी है शीत परत जो पतली तथा गहरे रंग की होती है तथा इसमें उपस्थित कण बहुत सूक्ष्म होते हैं.

अध्ययनों से यह पाया गया है कि वार्व बहुत पतले होते हैं जिनकी मोटाई कुछ मिलीमीटर से कुछ सेंटीमीटर तक होती है. इस प्रकार कई सौ वर्षों के अवसाद निक्षेप का अभिलेख एक

(शेष पृष्ठ 418 पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैंसर की चपेट में फंसता भारत

□ डा॰ अचल गर्ग

इस सदी का सबसे भयानक रोग कैंसर. संसार का कोई भी हिस्सा इस बीमारी से अछूता नहीं है. बच्चे, बूढ़े, स्त्री, पुरुष सभी वर्गों में यह रोग समान रूप से व्याप्त है, और वर्षों के कठोर परिश्रम के बाद भी अभी तक इस रोग का शत प्रतिशत इलाज नहीं खोजा जा सका है.

तो क्या मानव ने कैंसर से हार मान ली है? क्या यह रोग हमेशा ही हम पर हावी रहेगा? मौत का पर्याय कही जाने वाली यह बीमारी आखिर पैदा कैसे होती है? वैज्ञानिक और चिकित्सक वर्षों के अथक परिश्रम के बाद भी इस पर विजय क्यों नहीं पा सके हैं?

ये कुछ सवाल ऐसे हैं जिनका जवाब पाने के लिए आज हर व्यक्ति उत्सुक है. यद्यपि इसे अब असाध्य कदापि नहीं कहा जा सकता शायद कैंसर पर पूरी तरह काबू पाने के लिए हमें अभी वर्षों इंतजार करना पड़े. किंतु दशकों से किए जा रहे श्रम पूर्ण अनुसंधानों के फलस्वरूप वैज्ञानिकों के लिए कैंसर अब कोई हौवा नहीं रह गया है. कैंसर पर सितम्बर 1990 के अंक से आरंभ खोजपूर्ण लेखों की इस लेखमाला के पहले और दूसरे लेखों में आपने पढ़ा कैंसर का संक्षिप्त इतिहास और उसकी उत्पत्ति के कारणों का एक विवेचन. लेखमाला के इस तीसरे लेख में आइए हम पढ़ें कि भारत किस तरह कैंसर की चपेट में फंसता जा रहा है. आगामी अंक में हम इसकी चिकित्सा के भावी स्वरूप पर विचार करेंगे.

□ दुनिया भर में कैंसर से हर वर्ष 43 लाख व्यक्ति मरते हैं और 59 लाख नए रोगी पैदा हो जाते हैं. मरने वालों में 20 लाख व्यक्ति विकसित देशों के तथा 23 लाख विकासशील व गरीब देशों के होते हैं. कैंसर से सबसे ज्यादा लगभग 18 लाख 58 हजार व्यक्ति प्रतिवर्ष एशिया महाद्वीप में और दूसरे नम्बर पर लगभग 14 लाख व्यक्ति योरोप में मरते है. उत्तरी अमेरिका में कैंसर से प्रतिवर्ष मरने वालों की संख्या लगभग 4 लाख 47 हजार, लेटिन अमेरिका में 2 लाख 91 हजार, तथा अफ्रीका में 2 लाख 68 हजार हैं.

भारत में इस समय लगभग 20 लाख व्यक्ति कैंसर से पीड़ित हैं जिनमें प्रतिवर्ष 5 लाख नए रोगी जुड़ जाते हैं. जबकि 1970 के दशक में प्रतिवर्ष कैंसर की चपेट में आने वाले व्यक्तियों की संख्या 3 लाख 70 हजार थी. कैंसर रोगियों के बढ़ने की रफ्तार यदि यही रही तो अगले 12 वर्षों में अर्थात् सन् 2000 तक भारत में कैंसर रोगियों की कुल संख्या अब से ड्योढ़ी होकर तीस लाख तक पहुंच जाएगी

एस्पिरेस्टर सिरिंज : (फोटोचित्र : सतेन्द्र स्रोत : कैंसर शल्य चिकित्सा विभाग, सफदरजंग अस्पताल; नई दिल्ली)

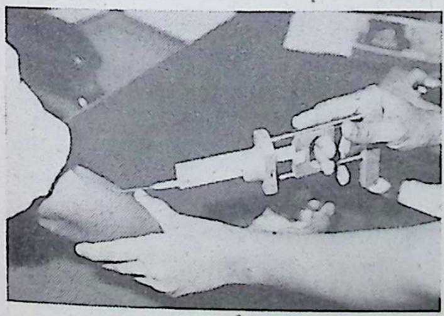

तथा प्रतिवर्ष कैंसर के चुंगल में फंसने वालों की संख्या 5 लाख से बढ़कर 15 लाख तक जा पहुंचेगी और यदि समय रहते इस रोग पर अंकुश न लगाया गया तो आने वाले समय में चीन की तरह भारत में भी कैंसर मौत का पहला सबसे बड़ा कारण बन जाएगा

आइए अब देखें कि दुनिया के विभिन्न देशों में कौन-कौन सा कैंसर प्रमुखता से पाया जाता तथा उन देशों की तुलना में भारत में कैंसर की वर्तमान स्थिति क्या है.

मुंह का कैंसर

मुंह का कैंसर भारत में पुरुषों में सब ज्यादा पाया जाने वाला कैंसर है. इस कैंसर मामले में भारत का विश्व में पहला स्थान है तम्बाकू मुंह के कैंसर का प्रमुख कारण है. हों व मसूड़ों के बीच तम्बाकू रख कर चूसने मसूड़ों का, पान या सुपारी के साथ गिलौ खाने से जीभ का तथा उल्टा चुट्टा पीने तालू का कैंसर हो जाता है. जो व्यक्ति जितनी अधिक देर तक तम्बाकू चूसता या चबाता है, मुंह का कैंसर होने की संभावनाएं उतनी ही अधिक होती हैं.

भारत में भी मुंह के कैंसर के सबसे ज्यादा रोगी उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जिले में पाए जाते हैं. जहां इनकी संख्या प्रति एक लाख आबादी पर 24 है. त्रिवेंद्रम, मद्रास तथा बम्बई में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गभग एक चौथाई कैंसर रोगी केवल मुंह के सर से ग्रसित पाए जाते हैं.

भाषा के आधार पर किए गए सर्वेक्षण से ता चलता है कि भाषा का मुंह के कैंसर से ोई संबंध नहीं है. एक ही भाषा बोलने वाले किन विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों में ह के कैंसर का प्रतिशत भी भिन्न होता है. किन व्यक्ति के शैक्षिक स्तर का मुंह के कैंसर जरूर संबंध हैं. पढ़े लिखे पुरुषों में अनपढ़ों ा कम पढ़े लिखों की तुलना में कैंसर काफ़ी म होता है. मद्रास में अनपढ़ पुरुषों में 37.8 तिशत की तुलना में कालेज या उससे अधिक तर तक शिक्षा प्राप्त पुरुषों में केवल 2.36 तिशत ही मुंह के कैंसर के रोगी पाए जाते हैं. ढ़े लिखे लोगों में अनपढ़ पुरुषों की तुलना में रिंक्स व स्वर यंत्र का कैंसर भी केवल एक ौथाई ही पाया जाता है. देश के अन्य क्षेत्रों में ो लगभग यही स्थिति है. इससे यह बात पूरी रह स्पष्ट हो जाती है कि शिक्षा के प्रचार से ुह के कैंसर पर प्रभावी रूप से अंकुश लगाया ा सकता है. मुंह के कैंसर में सबसे ज्यादा ्यक्ति (50 प्रतिशत) जीभ के कैंसर से पीड़ित ाए जाते हैं.

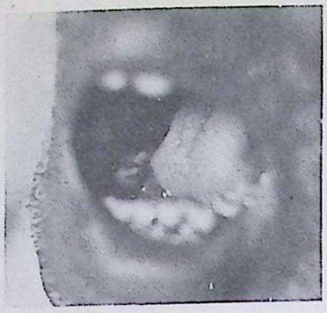

मुंह का कैंसर : (फोटोचित्र : सतेन्द्र, स्रोत : कैंसर शल्य चिकित्सा विभाग, सफदरजंग अस्पताल; नई दिल्ली)

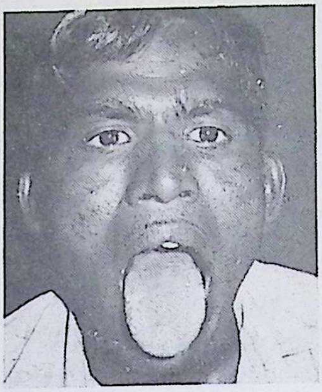

बकल म्यूकोसा : पान के साथ खाए जाने वाले चूने और तंबाकू (जर्दा) के सेवन से व्यक्ति के जीभ में बने सफेद निशान (सौजन्य : द्वारका रिसर्च इंस्टिट्यूट ऑफ ओरल कैंसर एंड डेंटल डिजीजेज, इलाहाबाद)

फेफड़ों का कैंसर

फेफड़े का कैंसर पुरुषों में पाया जाने वाला दूसरा महत्वपूर्ण कैंसर है. पश्चिमी देशों में इसका प्रभाव पूर्वी और विकासशील देशों की तुलना में कही ज्यादा है. विश्व में प्रतिवर्ष लगभग 5 लाख व्यक्ति फेफड़े के कैंसर से मर जाते हैं. इनमें से सबसे ज्यादा मौतें इंग्लैण्ड में तथा सबसे कम नाइजीरिया में होती हैं.

फेफड़े के कैंसर का सीधा संबंध धूम्रपान से है जिसका प्रभाव धूम्रपान शुरू करने के 20 वर्ष बाद कैंसर के रूप में दिखाई देता है और अगले 5 से 30 वर्ष के भीतर इन रोगियों में से कम से कम एक चौथाई मर जाते हैं.

पोलीओमा विषाणु का 60 हजार गुना आवर्धित चित्र

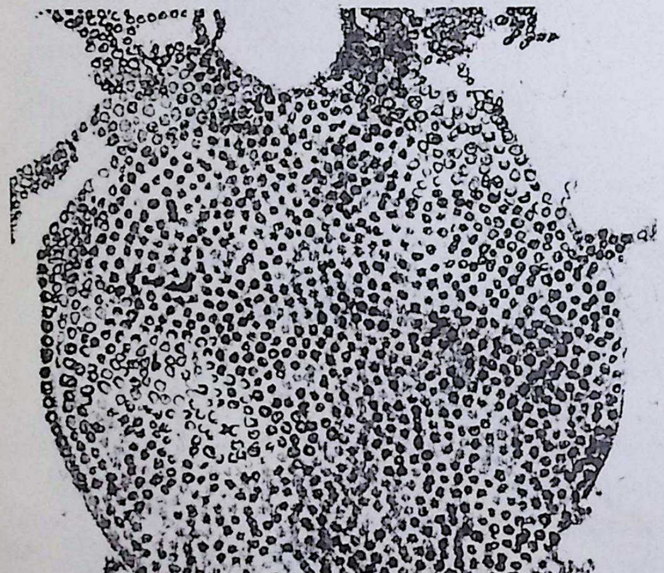

वैसे जहां तक फेफड़े के कैंसर का संबंध है आजकल स्थिति बदल रही है. इन दिनों फेफड़े का कैंसर गरीब व विकासशील देशों में तेजी से बढ़ता जा रहा है जबकि विकसित देशों में इसमें तेजी से कमी हो रही है. संयुक्त राष्ट्र के रोम स्थित खाद्य एवं कृषि संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार औद्योगिक देशों में सिगरेट की खपत में प्रतिवर्ष 1.1 प्रतिशत की कमी हो रही है. इसके विपरीत गरीब देशों में सिगरेट की खपत प्रतिवर्ष 2.1 प्रतिशत की दर से बढ़ती जा रही है. सन् 1972 में इंग्लैंड में लगभग 52 प्रतिशत व्यक्ति धूम्रपान के आदी थे लेकिन 1978 में इनका प्रतिशत घट कर 45 रह गया. इसी प्रकार अमेरिका में भी 1966 से धूम्रपान करने वालों का प्रतिवर्ष 52 से घट कर 1978 में केवल 36 ही रह गया.

इसके विपरीत चीन में 1963 से 1975 के केवल 12 वर्ष के दौरान फेफड़े के कैंसर के रोगियों की संख्या बढ़ कर दुगनी हो गई. भारत में भी फेफड़े के कैंसर के रोगियों की संख्या में तेजी से वृद्धि होती जा रही है, पुरुषों की तुलना में स्त्रियों में फेफड़ों का कैंसर बहुधा कम देखने को मिलता है. इसका कारण संभवतः स्त्रियों में धूम्रपान की आदत की कमी है लेकिन हाल ही में किए गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि पुरुषों की भांति स्त्रियों में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

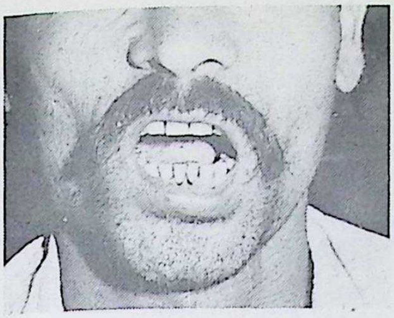

ओरल–सब म्यूकस फाइब्रोसिस से पीड़ित व्यक्ति. पान मसाला और तंबाकू के लगातार सेवन करने पर एक स्थिति ऐसी आती है जब व्यक्ति अपना मुंह पूरा नहीं खोल पाता (सौजन्य : द्वारका रिसर्च इंस्टिट्यूट ऑफ ओरल कैंसर एंड डैंटल डिजीजेज, इलाहाबाद)

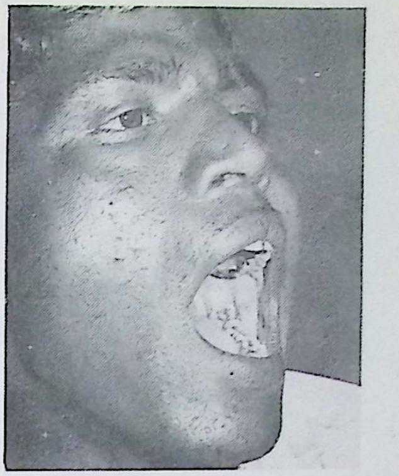

ल्यूकोप्लोकिया : गार्लों को काटने और जर्दा तंबाकू के सेवन से गार्लों की भीतरी सतह पर बने सफेद निशान (सौजन्य : द्वारका रिसर्च इंस्टिट्यूट ऑफ ओरल कैंसर एंड डैंटल डिजीजेज, इलाहाबाद)

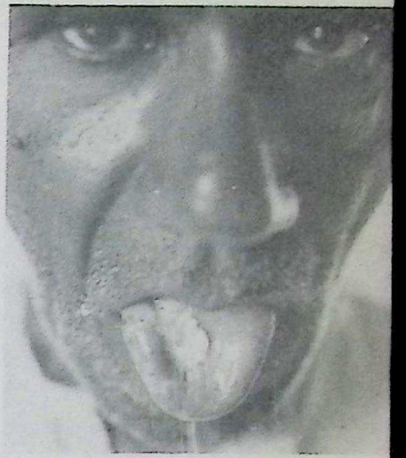

जीभ का कैंसर (फोटोचित्र : सतेन्द्र, स्रोत : कैंसर श
चिकित्सा विभाग, सफदरजंग अस्पताल; नई दिल्ली)

फेफड़े के कैंसर की घटनाएं लगातार बढ़ रही हैं.

मुंह के कैंसर के समान फेफड़े के कैंसर का भी भाषा से कोई उल्लेखनीय संबंध नहीं पाया गया है. हां, धर्म और जाति के आधार पर किए गए सर्वेक्षण से एक तथ्य जरूर सामने आया है. केवल कुछ अपवादों को छोड़कर मुसलमानों में फेफड़े का कैंसर सबसे अधिक, उससे कम हिन्दुओं तथा सबसे कम इसाइयों में होता है.

गले का कैंसर

गले का कैंसर पुरुषों में पाया जाने वाला एक प्रमुख प्रकार का कैंसर है. महिलाओं में गले के कैंसर की घटनाएं यदा कदा ही दिखाई देती हैं. गले के कैंसर के दौरान **हाइपोफैरिंक्स**, ग्रसनी तथा स्वर यंत्र प्रमुख रूप से प्रभावित होते हैं. कैंसर के कुल रोगियों में से औसतन 16 प्रतिशत रोगी गले के कैंसर से पीड़ित पाए जाते हैं वैसे देश में डिब्रूगढ़ में गले के कैंसर का प्रतिशत सबसे अधिक (23) तथा त्रिवेंद्रम में सबसे कम (9.2) है.

हाइपोफैरिंक्स का कैंसर असम राज्य में पाए जाने वाला खास प्रकार का कैंसर है. देश
अन्य भागों में यह कैंसर इस क्षेत्र की तुलना
कहीं कम देखने को मिलता है. सन् 1984
किए गए एक सर्वेक्षण से स्पष्ट होता है
डिब्रूगढ़ में लगभग 16.5 प्रतिशत कैंस
रोगियों में हाइपोफैरिंक्स का कैंसर पाया जात
है. इसके मुकाबले बंगलौर में लगभग 1
प्रतिशत तथा बंबई में 9.3 प्रतिशत कैंसर रो
हाइपोफैरिंक्स के कैंसर से पीड़ित थे. गले
इस भाग के कैंसर के सबसे कम रोगी त्रिवेंद्र
में (4 प्रतिशत) पाए गए.

हाइपोफैरिंक्स की भांति फैरिंक्स का कैंस
भी देश में सबसे ज्यादा डिब्रूगढ़ में पाया जात
है. डिब्रूगढ़ में लगभग 3 प्रतिशत कैंसर रोग
फैरिंक्स के कैंसर से पीड़ित पाए जाते हैं. इस
विपरीत बंबई में यह कैंसर लगभग अनुपस्थि
हैं. देश के अन्य प्रमुख नगरों में भी फैरिंक्स क
कैंसर कोई महत्वपूर्ण कैंसर नहीं माना ज
सकता क्योंकि किसी भी प्रदेश में एक प्रतिश
से ज्यादा कैंसर रोगी इस कैंसर से पीड़ित न
देखे गए हैं. स्वर यंत्र कैंसर के रोगी बंबई
सबसे ज्यादा पाए जाते हैं

आहार नाल का कैंसर

भारत में पाचक अंगों के कैंसर के रोगी भ
काफी संख्या में पाए जाते हैं. इसोफेग
(ग्रसिका), आमाशय, छोटी व बड़ी आंत तथ
मलाशय आदि अंगों के कैंसर आहार नाल
कैंसर कहलाते हैं. भारत में इनमें से इसोफेग
तथा आमाशय के कैंसर की घटनाएं काफ

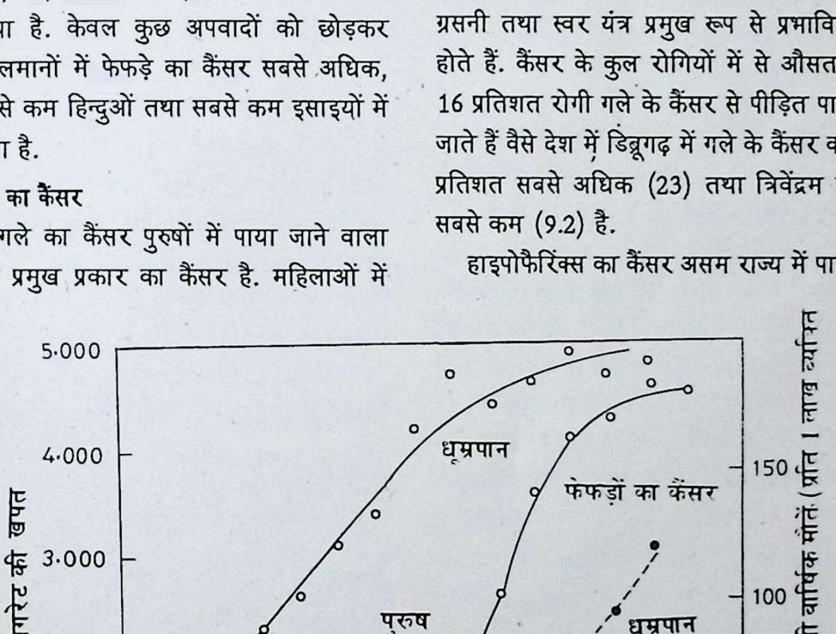

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धिक पायी जाती हैं. सन् 1982-83 के रान कुल कैंसर रोगियों में से औसतन 8 तिशत इसोफेगस तथा 9 प्रतिशत आमाशय कैंसर से पीड़ित थे. मुंह व फेफड़े के कैंसर भांति आहार नाल का कैंसर भी स्त्रियों की पेक्षा पुरुषों में ज्यादा पाया जाता है.

भारत में इसोफेगस का कैंसर सबसे अधिक डिब्रूगढ़ में पाया जाता है जहां 1982-1984 के रान पुरुषों में इसका प्रतिशत 16-18 रहा. वहां 1982 में महिलाओं में इसोफेगस कैंसर का तिशत 12.9 से बढ़कर 1983 में 14.5 तथा 984 में 17.1 प्रतिशत तक जा पहुंचा. सोफेगस कैंसर का प्रभाव त्रिवेन्द्रम में सबसे कम 982-84 के दौरान पुरुषों में 5-6 प्रतिशत तथा हिलाओं में केवल 2 प्रतिशत रहा.

आमाशय का कैंसर मद्रास के पुरुषों में र्वाधिक पाया गया है जबकि बंगलौर का देश दूसरा स्थान है.

भाषाई आधार पर किए गए अध्ययन से ता चला है कि असम में रहने वाले चाहे वे गाली हों या असमी, इसोफेगस का कैंसर नों को समान रूप से सबसे अधिक प्रभावित रता है. इसोफेगस कैंसर से दूसरे स्थान पर भावित होने वाले बंबई में रहने वाले गुजराती . इसोफेगस के कैंसर का सबसे कम प्रभाव विंद्रम के तमिलों पर होता है.

धर्म के आधार पर किए गए सर्वेक्षण से ता चला है कि इसोफेगस कैंसर का सबसे धिक प्रभाव असम के मुसलमानों तथा सबसे म मद्रास के इसाइयों पर पड़ता है. आमाशय ा कैंसर मद्रास में रहने वाले तेलगु भाषी रुषों में सबसे ज्यादा, 17.13 प्रतिशत तथा ण्डीगढ़ में रहने वाले पंजाबी पुरुषों में सबसे म 2.3 प्रतिशत पाया गया है. इसके विपरीत गलौर की उर्दू भाषी महिलाओं में आमाशय ा कैंसर भारत में सबसे अधिक 7.2 प्रतिशत या चंडीगढ़ की पंजाबी महिलाओं में सबसे म 0.4 प्रतिशत होता है.

भारत में छोटी आंत, बड़ी आंत तथा लाशय आदि अंगों के कैंसर के रोगियों की ख्या अपेक्षाकृत काफी कम है. मलाशय का सर मुख्य रूप से रेशाविहीन भोजन का पयोग करने से होता है. पश्चिमी और विकसित देशों में 'फास्ट फूड' कहे जाने वाले भोजन का बेहद प्रचलन है. यही भोजन मुख्य रूप से बड़ी आंत व मलाशय का कैंसर पैदा करने का दोषी है. भारत व अन्य विकासशील देशों में परम्परागत भोजन पर विशेष जोर दिया जाता है. जिसमें रेशे युक्त सब्जियों व फलों का काफी मात्रा में समावेश रहता है. रेशा भोजन को आंतों में जमने से रोकता है. इस प्रकार वहां कैंसर पैदा होने की संभावनाएं भी बहुत घट जाती हैं.

लेकिन पिछले कुछ वर्षों के दौरान पश्चिमी और पूर्वी देशों में भोजन की प्रकृति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह आया है कि पश्चिमी देश अब ज्यादा से ज्यादा रेशे वाले भोजन पर जोर देने लगे हैं. जबकि इसके विपरीत पूर्वी देशों में लोग पश्चिम में प्रचलित 'फास्ट फूड' को तेजी से अपनाते जा रहे हैं. भोजन में परिवर्तन का प्रभाव यह हुआ है कि पश्चिमी देशों में जहां अब आंत और मलाशय के कैंसर में कमी होने लगी है वहीं पूर्वी व विकासशील देशों में अब मलाशय व बड़ी आंत के कैंसर में तेजी से वृद्धि हो रही है.

महिलाओं में पाए जाने वाले प्रमुख कैंसर

महिलाओं में मुख्य रूप से तीन प्रकार के कैंसर सबसे अधिक पाए जाते हैं, ये हैं स्तन कैंसर, गर्भाशयी ग्रीवा का कैंसर तथा अण्डाशय का कैंसर. कुल महिला कैंसर रोगियों में से लगभग आधी (50 प्रतिशत) केवल इन्हीं तीनों प्रकार के कैंसर से पीड़ित होती हैं. इनमें से 18 प्रतिशत स्तन कैंसर से, लगभग 26 प्रतिशत गर्भाशयी ग्रीवा कैंसर से तथा शेष लगभग 5 प्रतिशत अण्डाशय के कैंसर से पीड़ित पाई जाती हैं.

जहां तक पूरे विश्व में तीनों प्रकार के कैंसर का सवाल है स्तन कैंसर सबसे ज्यादा कनाडा में तथा सबसे कम इजराइली महिलाओं में पाया जाता है. गर्भाशयी ग्रीवा का कैंसर कोलम्बिया में सबसे ज्यादा तथा इजराइल में सबसे कम पाया जाता है. इसी प्रकार अण्डाशय का कैंसर डेनमार्क में सर्वाधिक तथा जापान में सबसे कम पाया जाता है.

भारतीय महिलाओं में गर्भाशय का कैंसर सबसे ज्यादा पाया जाता है. स्तन कैंसर इसकी तुलना में कहीं कम पाया जाता है. एक अनुमान के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष लगभग 50 हजार महिलाएं स्तन कैंसर की चपेट में आती हैं जबकि गर्भाशय कैंसर की चपेट में आने वाली महिलाओं की संख्या 90 हजार के आस पास है.

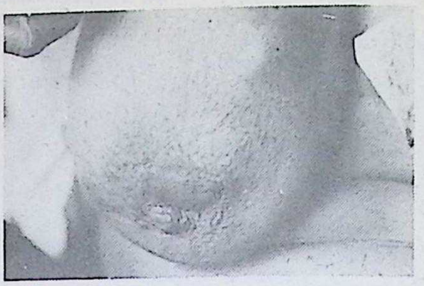

स्तन कैंसर (फोटोचित्र : सतेन्द्र, स्रोत : कैंसर शल्य चिकित्सा विभाग, सफदरजंग अस्पताल; नई दिल्ली)

भारत में प्रत्येक एक लाख महिलाओं में से औसतन 20.1 महिलाएं स्तन कैंसर की चपेट में आ जाती हैं. इसकी तुलना में ब्रिटेन में एक लाख महिलाओं में 48 तथा अमेरिका में 71.4 महिलाएं स्तन कैंसर की रोगी होती हैं.

भारत में स्तन कैंसर सर्वाधिक बंबई में देखा गया है. वहां कैंसर से पीड़ित महिलाओं में से लगभग 22 प्रतिशत स्तन कैंसर की रोगी होती हैं मद्रास व त्रिवेंद्रम का नम्बर दूसरा है. स्तन कैंसर अविवाहित महिलाओं की तुलना में विवाहितों में कहीं ज्यादा पाया जाता है. इस कैंसर से पीड़ित महिलाओं में से 99.79 प्रतिशत महिलाएं विवाहित हैं.

स्तन कैंसर का सबसे ज्यादा प्रभाव पारसी महिलाओं में देखा गया है. पारसी महिलाओं में प्रति एक लाख जनसंख्या में 47.2 महिलाओं में स्तन कैंसर हो जाता है. इसकी तुलना में इसाईयों में 26.2 महिलाएं प्रति लाख, मुसलमानों में 25.7 प्रति लाख तथा हिन्दुओं में 22.8 प्रति लाख महिलाएं स्तन कैंसर से प्रभावित होती हैं.

यह देखा गया है कि जिन महिलाओं की शादी कम उम्र में हो जाती है, जिनके ज्यादा बच्चे होते हैं तथा जो अपने बच्चों को लंबे समय तक स्तनपान करवाती हैं उनमें स्तन कैंसर होने की संभावनाएं बहुत घट जाती हैं. पारसी महिलाओं की शादी औसतन आयु 24 वर्ष है जबकि हिन्दु महिलाओं की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शादी की औसत आयु 16.77 वर्ष है. इसके अलावा हिन्दु औरतों के बच्चों की संख्या भी पारसी औरतों के बच्चों की अपेक्षा कहीं ज्यादा होती है तथा वे बच्चों को औसतन $1\frac{1}{2}$ -2 वर्ष तक स्तनपान भी करवाती हैं.

लेकिन अधिक बच्चे होना, कम उम्र में ही शादी हो जाना और अशिक्षा गर्भाशय कैंसर के प्रमुख कारण हैं. अधिक बच्चे तथा कम उम्र में शादी जहां एक ओर भारतीय महिलाओं की स्तन कैंसर से रक्षा करते हैं वहीं दूसरी तरफ ये ही कारण उनमें गर्भाशय का कैंसर पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं.

गर्भाशयी ग्रीवा (गर्भाशय) का कैंसर भारत में सबसे ज्यादा चण्डीगढ़ की महिलाओं में पाया जाता है. यहां कैंसर के रोगियों में लगभग 39 प्रतिशत महिलाएं गर्भाशय के कैंसर से पीड़ित पाई गई हैं जिनमें से 39.5 प्रतिशत महिलाएं पंजाबी भाषी तथा 47.4 प्रतिशत महिलाएं हिन्दी भाषी हैं. इसके विपरीत बंबई में यह कैंसर भारत में सबसे कम पाया जाता है. वहां कैंसर की रोगियों में से मात्र 18 प्रतिशत में ही गर्भाशय का कैंसर होता है. इन 18 प्रतिशत में बहुमत अंग्रेजी भाषी महिलाओं (27 प्रतिशत) का होता है.

लेकिन अण्डाशय का कैंसर समस्त भारत लगभग एक सा पाया जाता है. अन्य कैंसरों तुलना में यह 5 प्रतिशत महिलाओं में होता इन अध्ययनों से एक महत्वपूर्ण तथ्य सा आया है कि जहां स्तन कैंसर भारत में अ पंजे फैलाता जा रहा है. वहीं गर्भाशय के कैं में धीरे-धीरे कमी आ रही है. इन दोनों विपरीत अण्डाशय के कैंसर में कोई वि कमी या बढ़ोत्तरी नहीं देखी गई है.

(पृष्ठ 406 का शेषांश)

पश्चिम बंगाल में फैला है और उसने 15,000 हेक्टेयर भू-क्षेत्र को खेती के लिए बेकार बना दिया है. बारिश के मौसम में तो यह पौधा धान के खेतों को भी नहीं बख्शाता. बिहार में जल-प्रणालियों के अवरूद्ध हो जाने से मत्स्य उत्पादन भी बुरी तरह प्रभावित हुआ है. हालत तो उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, असम, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में भी अच्छी नहीं है मगर वहां विस्तृत सर्वेक्षण ही नहीं हो पाया है.

वाटर हायसिंथ की उपस्थिति को केवल जमीन पर ही महसूस नहीं किया जा रहा है, उसकी चर्चा इस समय वैज्ञानिकों, पारिस्थितिकी विज्ञानियों तथा योजनाकारों के बीच भी हो रही है. इस महामारी से लड़ने के लिए जहां अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में उपाय और तरीके खोजे जा रहे हैं वहीं एक अंतरराष्ट्रीय पत्रिका 'हायसिंथ कंट्रोल जर्नल' उनके बीच एक नियमित संचार-सेतु का काम कर रहा है.

लेकिन हायसिंथ को इसकी परवाह नहीं है. वह तो तेजी से बढ़ना जानता है. जीव-विज्ञानी जिसे 'आईछोर्निया क्रिसिपिस' कहकर बुलाते हैं वह पौधा दस दिनों में द्विगुणित हो जाता है. उसकी इस त्वरित बाढ़ के कारण पानी में जो ऑक्सीजन की कमी हो जाती है उससे वह मछलियों की वृद्धि के लिए अनुपयुक्त हो जाता है. न केवल मछलियां बल्कि अन्य जल वनस्पतियों तथा जीवों का भी दम घुटने लगता है.

हायसिंथ से खुशी सिर्फ मच्छरों को होती है. वह उनकी संतति बढ़ाने के लिए उपयुक्त वातावरण निर्मित करता है. लगभग स्थिर बहाव वाली यमुना नदी में इसकी इस कदर भरमार है कि उससे नलों तक आने वाले पानी तक में हायसिंथ की ही महक आती है. इस पौधे से परोक्षरूप से स्वास्थ्य को भी हानि पहुंचती है. यह खरपतवार एक प्रकोप की तरह फैल कर ताजा पानी की सारी उपलब्ध प्रणालियों पर कब्जा कर रही है.

कई दशकों से पानी से इसे उखाड़ कर फेंकने के अलावा और कोई तरीका नहीं अपनाया जा रहा है. किंतु यह तरीका कारगर नहीं हो रहा है क्योंकि उसे नष्ट करने के प्रयासों से उसकी बाढ़ की गति हमेशा ज्यादा रहती है. वैज्ञानिकों ने बायोगैस के लिए उसके उपयोग की सिफारिश की, पशुओं को खिलाने, कम्पोस्ट खाद बनाने तथा जल-शुद्धि के जीव-विज्ञानी तरीके में उसे प्रचारित करने तक का सुझाव दिया लेकिन कोई भी उपाय अनुसंधानशालाओं से बाहर नहीं निकल पाया. नतीजा, हायसिंथ पहले ही की तरह मजे से दिन दूना रात चौगुना फल-फूल रहा है.

हम इस महामारी के लिए ब्राजील को दोषी ठहरा सकते हैं लेकिन इसका इलाज भी वहीं से आया है. सन् 1984 में ब्राजील के ही एक काले गुबरैले (बीटल) को उस कीट के रूप में पहचाना गया जो इस पौधे की कोपलों को खाकर जिस तरह उसका क्लोरोफिल उधेड़ देता है उससे यह पौधा नष्ट होने लगता है.

इस गुबरैले को देश के सात राज्यों में छोड़ा गया है और वह काफी प्रभावी साबित हो रहा है. इसके नतीजों को लेकर हैदराबाद स्थित केंद्रीय जैव-नियंत्रण केंद्र काफी उत्साहित है. इस केंद्र की सहायक निदेशक डा० मीरा गु कहती हैं-'तरीका बहुत ही सरल है, आप सिर्फ इतना करना है कि इस खरपतवार प्रदूषित पानी में इस गुबरैले वाले पौधे को छ दीजिए. बाकी काम यह गुबरैला स्वयं कर दे

गुबरैले की दो प्रजातियां अपने इस आ से काफी खुश रहती हैं. जहां इसकी इल्लि डंठलों तथा ऊतकों का भक्षण करती हैं व वयस्क गुबरैलों को पत्तियों की कोई कमी न होती. यदि हायसिंथ तेजी से बढ़ता है गुबरैला भी कोई सुस्ती नहीं बरतता. अ तीन महीने के जीवन-चक्र में एक गुबरैला 7 अंडे देता है. इस तरह अब दौड़ हायसिंथ अ गुबरैलों के बीच चल रही है. विशेषज्ञों का है कि अब हायसिंथ के विरुद्ध यह जंग जी भी जा सकती है, मगर पारिस्थिति विज्ञानियों को चिंता है कि गुबरैला अ चलकर अपनी खाद्य-आदतों में विविधता ला सकता है और हायसिंथ से निपटने के ब वैकल्पिक आहार की खोज भी कर सकता है.

लेकिन केंद्रीय जैव-नियंत्रण केंद्र फिलहाल कोई चिंता नहीं है. वहां के ए वैज्ञानिक का कहना है, 'पहली चुनौती किसी तरह इस खरपतवार से पीछा छुड़ाना है.' अतः जो खरपतवार हमारा राष्ट्रीय पी (?) बनने जा रही थी वही शायद अब अप सौंवी सालगिरह मनाने के पूर्व ही गुबरैलों हाथों खेत रहेगी. (सप्रेस/ऊर्जा एवं पर्याव समूह के सौजन्य से प्रस्तुत)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकेन्द्रित ऊर्जा - एक विकल्प

□ एस० पॉल

भारत तथा तीसरी दुनिया के अन्य देशों में र्जा नियोजन का प्रश्न एक विशेष प्रकार की स्या प्रस्तुत करता है. न केवल शहरी और द्योगिक क्षेत्रों की प्राथमिक आवश्यकताओं हमें पूर्ति करनी होती है, बल्कि उन 80 शत अधिसंख्यक लोगों की आधारभूत रूरतों को भी पूरा करना होता है जो गांवों रहते हैं.

यद्यपि किसी भी देश के सकल राष्ट्रीय पादन (जी एन पी) का अधिकांश शहरी व द्योगिक क्षेत्र द्वारा संपादित होता है तथापि त्र के लोगों की ऊर्जा उपभोग क्षमता उनके वन-स्तर की गुणवत्ता की ओर इंगित करती यदि ग्रामीण जनता को समुचित मात्रा में र्जा उपलब्ध नहीं होती, तो उनका जीवन हीनता एवं कंगाली की तस्वीर बनकर रह एगा. ऊर्जा की एक न्यूनतम राशि की ायता के बिना बेरोजगारी और गरीबी की स्याएं कभी भी हल नहीं की जा सकतीं.

एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका की नियादी समस्याओं को हल करने के लिए मीण ऊर्जा नियोजन पर और अधिक ध्यान की तथा उसके प्रबंध के लिए और अधिक ाधन जुटाने की आवश्यकता है, किन्तु तिक तथा आर्थिक साधन जुटाने की निस्वत अधिक महत्व इस बात का है कि ारे नियोजकों के रवैये में परिवर्तन लाया ए. उन्हें चाहिए की अब आगे वे पश्चिमी ों या खाड़ी के मुल्कों का मुंह न ताकें, ल्क अपनी प्रायोजनाओं का स्वरूप निर्धारण स्थानीय संसाधनों के आधार पर करें जिनमें सरी दुनिया के देशों के लिए असीमित ावनाएं निहित हैं. यदि खुला दिमाग रखें र दी हुई परिस्थितियों में स्थानीय भूमि, जल संपदा एवं मानव संसाधन का इष्टतम उपयोग करें तो इसका अर्थ होगा कि आधी बाजी हमने जीत ली. कदाचित् मात्र यही एक रास्ता है जिसे अपना कर हम स्थानीय ऊर्जा-संकट से उबर सकते हैं. जिसके कारण विकासशील देशों के दो अरब से भी अधिक लोग त्रस्त हैं.

संसार में ऊर्जा खपत के समग्र औसत मान अत्यन्त भ्रान्ति मूलक हो सकते हैं क्योंकि तीसरी दुनिया के अधिसंख्यक लोग अपनी कुल ऊर्जा-खपत के लगभग 80-90 प्रतिशत भाग के लिए गैर व्यापारिक ऊर्जा स्रोतों पर निर्भर रहते हैं.

यद्यपि संपन्न घरों में वरीयता प्राप्त ईंधन—कोयला, खनिज तेल या बिजली—का भले ही थोड़ा बहुत प्रवेश हो सका हो, तथापि वास्तविकता तो यही है कि ग्रामीण इलाकों के अधिसंख्यक घरों में इनका योगदान नगण्य सा ही है. इन परिस्थितियों में हमें ऐसी अर्थ-व्यवस्था का नियोजन करना होगा जो मूलतः परंपरागत ऊर्जा स्रोतों पर आधारित हो. निःसंदेह उन्हें पहले विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सहायता से समुन्नत और परिष्कृत करना होगा.

विशिष्ट दृष्टिकोण

अतः ग्रामीण ऊर्जा प्रबंधन में संसाधन उपयोग के प्रति सर्वथा नवीन एवं निर्भीक रूख अपनाने की जरूरत है. हमें मूल्यों के महत्व निर्धारण के नए मापदण्डों का विकास करना होगा और प्राथमिकताओं के नवीन क्रम निर्धारित करने होंगे, तभी ऊर्जा से वंचित लाखों करोड़ों लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए न्यूनतम ऊर्जा राशि हम मुहैय्या कर पाएंगे. विकास की गतिशीलता एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था के निरंतर बढ़ते हुए मुद्रीकरण के कारण हम ऐसी स्थिति में पहुंच गए हैं जिसमें व्यापारिक और गैर व्यापारिक ईंधन के बीच की ऐतिहासिक विभाजक रेखा करीब-करीब पूरी तरह विलुप्त हो गई है. मांग और आपूर्ति के अटूट नियम गांव के ईंधन, लकड़ी एवं गोबर के उपलों सरीखे, तेजी से खत्म होने जा रहे संसाधनों पर भी लागू होती हैं. अतः इस स्थिति का तकाजा है कि हम एक अर्द्ध-व्यापारिक प्रणाली विकसित करें. इसमें वस्तु-विनिमय प्रणाली को भी शामिल कर सकते हैं जो परंपरागत ऊर्जा स्रोतों पर आधारित हो. चूंकि इस प्रणाली के लिए ऊर्जा नियोजन की केंद्रीकृत ग्रिड व्यवस्था की जरूरत नहीं पड़ती, तीसरी दुनिया की परिस्थितियों में विकेन्द्रित ऊर्जा की नीति बहुत सही साबित होगी.

विकेन्द्रित ऊर्जा नियोजन का नीति कौशल उन मौजूदा साधनों और तकनीकों से नितान्त भिन्न है जो न तो ग्रामीण जरूरतों को पूरा कर पाती हैं और न ही देश की समग्र ऊर्जा की समस्या का हल जुटाने में कोई उल्लेखनीय योगदान दे पाती हैं. उदाहरण के लिए हम ग्रामीण विद्युतिकरण कार्यक्रम को ले सकते हैं. एक लगभग सौ घरों को छोटे गांव की आधारभूत आवश्यकता पूर्ति के लिए न्यूनतम अनुमानित ऊर्जा मात्रा 667.5 किलोवाट घंटा है, किन्तु योजना में इसके लिए 105 किलोवाट घंटा की व्यवस्था रखी गई है और वह भी अनियमित आपूर्ति के रूप में. भारत में इस कार्यक्रम के लिए पांचवी योजना में 6850 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया था और छठी योजना में 22,820 करोड़ रुपए का. किन्तु इस अपार राशि के विनियोग के बावजूद उपलब्धि यह रही है कि 5,75,934 गांवों में से मुश्किल से अभी तक 60 प्रतिशत गांवों का ही विद्युतिकरण हो पाया है.

फिर औद्योगिक क्षेत्र की वरीयता मांगों के कारण गत साढ़े तीन दशकों के नियोजन के दौरान शक्ति लक्ष्यों की प्राप्ति में निरंतर कमी बनी रही है. फलतः ग्रामीण क्षेत्र को तो एक ऐसी प्रणाली पर संतोष करना पड़ेगा जिसकी केंद्रीय ग्रिड व्यवस्था पर निर्भरता न्यूनतम हो.

विकेन्द्रित ऊर्जा

विशिष्ट आवश्यकता की पूर्ति के लिए बनाए गए इक्के दुक्के प्रतिष्ठानों के प्रतिकूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकेन्द्रित ऊर्जा प्रतिष्ठान दो, तीन या अधिक ऊर्जा विकल्पों के संयुक्त पैकेज होते हैं जो परस्पर सह-क्रियात्मक रूप से गुंथे होते हैं और इस प्रकार ये प्रतिष्ठान सुव्यवस्थित रूप से उपभोक्ता की सभी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, चाहे वे घरेलू किस्म की हों या कृषि, पशुपालन, ग्रामीण अथवा लघु उद्योग या अन्य विविध किस्म की हों.

ऊर्जा नियोजन एवं प्रबंधन की इस नीति को यदि सावधानीपूर्वक आयोजित करके कठोरता के साथ कार्यान्वित किया जाए तो संबंधित इलाके को भोजन तथा ऊर्जा के मामले में आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है. प्रथम दृष्टि में विकेन्द्रित ऊर्जा एक ऐसी प्रबंध नीति है जो पूरी तरह दिए हुए क्षेत्र की स्थानीय निधियों पर अवलंबित है. इनमें खास तौर से निम्नलिखित नवीकरण योग्य क्षेत्र शामिल हैं. लकड़ी व अन्य अपशेष, जीवधारियों से प्राप्त अपशेष, फसल अपशेष तथा जैविक अपशेष. इन्हीं ऊर्जा स्रोतों के साथ सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा तथा लघु जल विद्युत प्रणाली सरीखे चिरस्थायी ऊर्जा स्रोतों का प्रवीणता के साथ सम्मिश्रण किया जा सकता है. सौर एवं पवन ऊर्जा युक्तियों को बड़े पैमाने पर इस कारण अपनाया नही जा सकता कि इन पर लागत खर्च अधिक बैठता है तथा इनकी प्रतिकृतियां बनाना भी कठिन होता है. अस्तु, व्यावहारिक स्तर पर तो इस कार्य के लिए हमें जीवधारियों और कृषि के अपशेषों को ही चुनना होगा और उसके साथ जैव-द्रव्य (बायोमास) के इष्टतम उत्पादन पर ध्यान केंद्रित करना होगा, तभी मौजूदा समस्या को हम हल कर पाएंगे. फिर विकेन्द्रित ऊर्जा नियोजन का लागत खर्च लोगों की सामर्थ्य में है. अतः विकासशील देशों के लिए यह अधिक आकर्षक सिद्ध होता है. इसके अतिरिक्त सरल प्रौद्योगिकी के कारण इसका परिचालन स्थानीय लोग आसानी से कर सकते हैं—इसके रख रखाव, अनुरक्षण आदि की व्यवस्था करने में भी वे बिना किसी बाहरी मदद के अपने आप सक्षम हो सकते हैं. यहां पर एक बार फिर हम विकेन्द्रित ऊर्जा के मूलभूत उद्देश्यों को इंगित करना चाहेगें.

क. विकास प्रक्रियाओं को उत्प्रेरित करने के निमित्त स्थानीय तौर पर उपलब्ध होने वाली सस्ती ऊर्जा उपलब्ध कराना.

ख. कृषि के लिए अनुकल्प पूरक ऊर्जा उपलब्ध कराना.

ग. जैव-उत्पादन की बढ़ोत्तरी के निमित पौधों के लिए सस्ते एवं प्रभावी पोषक/उर्वरक संसाधन स्थानीय तौर पर जुटाना.

घ. अनुपजाऊ बंजर भूमि को कृषि-योग्य बनाने के लिए प्रभावशाली एवं सस्ती युक्ति प्रदान करना.

ङ. अनुपजाऊ बंजर भूमि को कृषि-योग्य बनाने के लिए प्रभावशाली एवं सस्ती युक्ति खोज करना.

च. वर्ष भर चलते रहने वाले स्थानीय रोजगार के साधन जुटाना.

छ. ऊर्जा तथा अन्य विकास जनित लाभों के अधिक न्याय संगत वितरण के लिए क्रियाविधि निरूपित करना.

ज. ग्रामीण 'सकल राष्ट्रीय उत्पादन' (जी एन पी) में त्वरित गति से वृद्धि करना ताकि गरीब एवं अल्प रोजगार की समस्याओं का सुव्यवस्थित तरीके से उन्मूलन हो सके—खास कर देहाती क्षेत्रों से.

क्रियात्मक प्राचल

विकेन्द्रित ऊर्जा की क्षमता एवं सफलता विकास संबंधी नियोजन के निम्न आधारभूत प्राचलों (पैरामीटर) पर अवलंबित है:

1. देहाती क्षेत्र की आवश्यकताओं का परिशुद्ध तखमीना लगाना, वर्तमान तथा भविष्य 5-20 वर्ष बाद की झांकी दोनों के लिए.
2. किसी समुदाय की ऊर्जा मांग के पैटर्न के लिए प्राथमिकता सूची (तथा स्थानीय वरीयता) सुनिश्चित करना
3. उन तमाम स्थानीय संसाधनों का विस्तृत निरूपण जो ऊर्जा बजट के लिए सहायक हो सकें, विशेषतः जैव द्रव्य वाले संसाधनों का.
4. स्थानीय आवश्यकताओं/प्राथमिकताओं और वरीयताओं पर आधारित प्रमुख ऊर्जा विकल्प तथा इन विकल्पों का तकनीकी सामाजिक-आर्थिक रूप से सुसंगत संयोजन.
5. स्थानीय व्यक्तियों (केडर) को संसज्जि[त] करना तथा उनका प्रशिक्षण ताकि क्षेत्र-पर्यवेक्षक की हैसियत से काम क[र] सकें, इससे परियोजना व्यय में कमी क[ी] जा सकेगी, साथ ही दक्षता में वृद्धि भ[ी] सुनिश्चित हो सकेगी, और स्वयं उन्हीं के घर-परिवार को फायदा पहुंचेगा.

समग्र विश्लेषण से हम पाते हैं कि इ[स] विकेन्द्रित ऊर्जा नियोजन द्वारा क्षेत्र विशेष के लिए अधिक मात्रा में ऊर्जा-स्वायत्ता उपलब्ध हो सकेगी और इसके अतिरिक्त यह एक ऐसी इष्टतम संसाधन-प्रबंध युक्ति भी सावित होगी जो अध्यवसायपूर्ण तरीके से उन सभी भौतिक संसाधनों का भरपूर उपयोग करेगी जिनका अभी तक अधूरा ही उपयोग किया जाता रहा है खासतौर से जैविक द्रव्यों का, और यह युक्ति बंजर-भूमि को उपजाऊ बनाएगी तथा अन्य चिरकाल से बेकार जा रही मानवीय परिसम्पत्ति का नवीकरण करेगी. अस्तु विकेन्द्रित ऊर्जा नीति जनता की ऊर्जा युक्ति है, जनता के लिए है और जनता ही द्वारा संचालित है. बल्कि यह समझ लीजिए कि अपेक्षाकृत गरीब राष्ट्रों के लिए यही एक चरम उद्धारक नीति है.

समग्र योजना-विकल्प

विकेन्द्रित ऊर्जा के अपेक्षाकृत नवीन विकल्पों की विभागीय छानबीन निम्नलिखित के अंतर्गत की जा सकती है: घरेलू क्षेत्र, कृषि एवं पशुपालन क्षेत्र, यांत्रिक ऊर्जा क्षेत्र, पेट्रोल प्रतिस्थापन युक्तियां तथा शक्ति उत्पादन क्षेत्र.

घरेलू क्षेत्र के लिए नीतियां

1. **मवेशी का गोबर :** आज भी गोबर के उपले खाना पकाने के लिए इस्तेमाल किए जा रहे हैं. यह एक अपव्ययी व अनुचित क्रिया है. इसकी ऊष्मीय दक्षता मात्र 11 प्रतिशत है. बायोगैस संपाचक (डायजेस्टर) में उपले का अतिरिक्त इस क्रिया में हमें कीमती स्लरी भी मिलती है जो प्राप्त होने वाली गैस से दो गुनी अधिक मूल्यवान होती है. गोबर के मुकाबले विष्ठामल से तीन गुनी अधिक गैस प्राप्त होती है. गोबर, जल हायसिन्थ या शैवाल के संग विष्ठामल को मिला देने पर मीथेन का उत्पादन 55 प्रतिशत से 77-79 प्रतिशत तक जाता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इक्के दुक्के बायोगैस संयंत्रों का विकास मंथर गति से हो रहा है. इनमें से अनेक जीर्ण-शीर्ण हालत में पड़े हैं. इन स्थितियों को देखते हुए हम आग्रहपूर्वक सुझाव देते हैं कि अव-सामुदायिक बायोगैस संयंत्र प्रणाली लागू की जाए. इसके परिणाम स्वरूप समाज के गरीब वर्ग भी लाभांवित होगें तथा साथ ही अधिक दक्षता भी सुनिश्चित होगी क्योंकि इस परियोजना के लागत व्यय में तकनीकी आपरेटर/पर्यवेक्षक की सेवाएं भी शामिल हैं. भारत में सरकार इन संयंत्रों के लिए शत प्रतिशत आर्थिक सहायता भी दे रही है.

2. **जलावनी लकड़ी :** बायोद्रव्य खासतौर से 'जलावनी लकड़ी' संसाधनों के अनुपूरण/समृद्धिकरण की अत्यधिक आवश्यकता है. इस संदर्भ में 'विशेष किस्म के ऊर्जा वृक्षों' की युक्ति की सिफारिश की जा सकती है. जलावनी लकड़ी की समस्या कितनी विकट है, इसका पता इस बात से लगता है कि सर्वेक्षण के दौरान देखा गया कि अलीगढ़ गांव समूह के दो गांवों में विरले ही किसी घर में ईंधन के लिए लकड़ी का उपयोग होता था. बिहार (वैशाली) में हाल ही में आयोजित एक परियोजना में 71 घरों का सर्वेक्षण किया गया. पाया गया कि इनमें से मात्र पांच घरों में जलावनी लकड़ी इस्तेमाल की जा रही थी. इस संदर्भ में उन्नत किस्म के चूल्हे का उपयोग करने पर जलावनी लकड़ी की (तापीय) दक्षता 5 प्रतिशत से 20 प्रतिशत तक या और भी अधिक बढ़ाई जा सकती है. ब्रिकेट या झुलसाए गए बायोमास के रूप में प्राप्त वन्य/जैव अपशेष उत्तम किस्म के ईंधन साबित होते हैं. भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, नई दिल्ली के प्रोफेसर ग्रोवर ने एक सामुदायिक माडल का सुझाव दिया है जिसकी लागत मात्र 30,000 रुपए है.

3. **कृषि अपशेष :** इन पदार्थों को साधारण ईंधन की भांति जलाने के बजाए बेहतर यह होगा कि इन्हें बायोगैस या ब्रिकेट की शक्ल में रूपान्तरित कर लिया जाए. इन अपशेषों का जानवरों को खिला कर उनसे प्राप्त गोबर को बायोगैस संयंत्र में इस्तेमाल करने पर कुल दक्षता 24 प्रतिशत प्राप्त होती है. इसके बजाए यदि कृषि अपशेष का सीधे ही बायोगैस संपाचक (डायजेस्टर) में भरण किया जाए तो उस दिशा में 60 प्रतिशत दक्षता प्राप्त हो सकती है. धान की भूसी तथा अन्य भूसा-पुवाल आदि को ऊपर दिए गए सुझाव के अनुसार ब्रिकेट-ईंधन के रूप में उपयोग करके लाभ उठाया जा सकता है.

रोशनी उत्पन्न करने की युक्ति

बिहार जैसे प्रदेश के लिए जहां विद्युत शक्ति की निरन्तर कमी बनी रहती है, रोशनी की जरूरत पूरी करने की समस्या का एकमात्र कारगर समाधान बायोगैस ही है. इसके लिए या तो गैस-मैंटल के साथ बायोगैस का सीधे ही उपयोग कर सकते हैं या फिर इसकी सहायता से अंतर्दहन (इंटरनल कम्बस्चन) इंजन/डीजल जेन-सेट चला कर रोशनी के लिए बिजली पैदा कर सकते हैं. एक परिवार के लिए रोशनी की जरूरत—एक किलोवाट प्रतिदिन—मात्र एक गाय से पूरी हो सकती है. पटना तथा कुछ अन्य मुफस्सिल इलाकों में सुलभ रोशनी की सफलता उक्त दावे की सत्यता पर्याप्त रूप से प्रमाणित करती है.

कृषि के लिए नीति

विकेन्द्रित ऊर्जा नीति के लिए आवश्यक है कि रासायनिक उर्वरकों तथा अन्य फासिल ईंधन पर कृषि उत्पादन की निर्भरता को न्यूनतम बनाया जाए. नाइट्रोजन स्थिरीकरण तथा सेलुलीय कम्पोस्टिंग तकनीक की मदद से उर्वरक को काफी हद तक घटाया जा सकता है. अखादय् तेल की खली, हरी खाद तथा फलीदार (लेक्युमिनस) फसल पेड़ आदि अधिक नहीं तो 30-50 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की पूर्ति तो कर ही सकते हैं, सुबबूल सरीखे वृक्ष 500 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर का स्थिरीकरण कर सकते हैं. जबकि कैसुराइना तथा ढाइन्चा प्रति हेक्टेयर 100 क़िलोग्राम नाइट्रोजन की पूर्ति कर सकते हैं. सोयाबीन, काउसीज, मूंगफली और तिपतिया चारा (ल्कोवर) सरीखी फसलें प्रति हेक्टेयर 50 किलोग्राम से लेकर 100 किलोग्राम नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर सकती है. कृषि कार्य की मशीनों का संचालन जैसा आगे बताया गया है, विकल्पी ईंधनों द्वारा किया जा सकता है.

पशुपालन के लिए ऊर्जा

हमारी अलीगढ़ सर्वेक्षण रिपोर्ट से यह कटु सत्य उद्‌घाटित हुआ था कि देहाती इलाके में पशु पालन में सर्वाधिक ऊर्जा की खपत होती है. कृषि कलापों में व्यय होने वाली ऊर्जा के मुकाबले पशुपालन में 5 गुनी अधिक ऊर्जा खर्च होती है. ऊर्जा की दृष्टि से पशुपालन की अपेक्षाकृत अदक्षता का कारण पौष्टिक चारे के अलावा पशु भोजन की प्रोटीन आवश्यकता की पूर्ति भी है. इस दृष्टि से चारे के लिए स्पाइलाइना सरीखे शैवाल तथा जलीय घास पात जैसे हाथसिन्थ (खास तौर से सुअरों के लिए) के उपयोग से समस्या के हल में मदद मिल सकती है. पशु चारे में मूंगफली की खली के 30 प्रतिशत का स्पाइरुलाइना द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सकता है. चमत्कारिक वृक्ष सुबबूल की पत्तियां प्रोटीन की उत्तम स्रोत हैं. इनमें लगभग 34 प्रतिशत प्रोटीन है जो पशुओं के चारे के लिए प्रयुक्त हो सकती हैं. पैराकारनाल तथा रोड सरीखी प्रजाति की घास उगा कर बंजर भूमि का नवीकरण किया जा सकता है और इसमें खर्च नगण्य ही बैठेगा.

यांत्रिक ऊर्जा

गांवों में यांत्रिक ऊर्जा के मुख्य स्रोत डीजल और बिजली दोनों ही की कमी है. हमारी नई ऊर्जा नीति तीन विकल्प प्रस्तुत करती है: बायोगैस इंजन, प्रोड्यूसर गैस इंजन या अलकोहल/गैसोहोल इंजन. प्रथम दो विकल्पों के लिए इंजन बाजार में आ चुके हैं जिसके फलस्वरुप डीजल पर 75-80 प्रतिशत तक की बचत की जा सकती है. प्रोड्यूसर गैस का उपयोग करने पर किसान के लिए खर्च में 55.24 प्रतिशत की बचत होगी और राष्ट्र के लिए यह बचत 84.26 प्रतिशत होगी. ज्योति गैसिफायर इंजन प्रणाली में, एक किलोग्राम लकड़ी की खपत पर 2.5 एम एम 3 प्रोड्यूसर गैस उत्पन्न होती है, अर्थात एक किलोवाट शैफ्ट पॉवर प्रो० एच० बी० माथुर, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, दिल्ली तथा अन्यों ने परिवहन मशीनरी तथा इसी प्रकार की अन्य मशीनरी में गैसोहोल के इस्तेमाल के अन्य प्रमाण भी प्रस्तुत किए हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेट्रोलियम प्रतिस्थापन की नीति

अधिकांश विकासशील देशों के प्रतिष्ठान खनिज तेल आयात के बोझ तले कराह रहे हैं. यद्यपि समय तनिक अधिक लगेगा तथापि बायोमास से हमें तेल को प्रतिस्थापित करने वाले ढेर सारे ईंधन प्राप्त हो सकते हैं. विशेष ऊर्जा फसलें जैसे टैथियोका, चुकन्दर स्वीट सोरयम, शकरकन्द आदि के लिए प्रारंभिक लागत ऊर्जा अधिक नहीं बैठती किन्तु इनसे हमें पावर अलकोहल प्राप्त हो सकता है. हाइड्रोकार्बन युक्त पौधों से जैसे ब्लैक क्वीन्स, कोयेबा से डीजल के सस्ते एवजी ईंधन प्राप्त हो सकते हैं जिनके परिशोधन की जरूरत नहीं पड़ती. अनेक वनस्पति तेल जैसे सूर्यमुखी का तेल आदि खनिज तेल को प्रतिस्थापित करने की क्षमता रखते हैं. प्रसंगतः इनमें से अधिकांश ऊर्जा फसलें अर्द्ध-बंजर भूमि पर उगाई जा सकती हैं.

शक्ति उत्पादन के लिए युक्ति : वृक्षाभ-ऊष्मीय (डेन्ड्रोथर्मल) शक्ति अर्थात शक्ति उत्पादन के लिए काष्ठ-बायोमास के उपयोग की सूचना फिलिपाइन्स तथा अन्य स्थानों से प्राप्त हुई है.

3 मेगावाट के लकड़ी के ईंधन द्वारा परिचालित एक प्रतिनिधिक वाष्प पावर संयंत्र के लिए 1000 हेक्टेयर वृक्षारोपण क्षेत्र की आवश्यकता पड़ेगी. प्रत्येक ऊर्जा वृक्षारोपण क्षेत्र को 10 खण्डों में (प्रत्येक खण्ड 100 हेक्टेयर) बांटा गया है. प्रत्येक रोपण खण्ड की देख रेख 10–15 परिवारों के समूह द्वारा की जाती है. कुछ दिनों पूर्व डी ई अर्ल ने दिखलाया था कि 60 प्रतिशत भार पर कार्यरत 150 मेगावाट के ऐसे पावर संयंत्र के लिए ऊर्जा रोपण का 38,650 हेक्टेयर क्षेत्र पर्याप्त होगा, जबकि अधिक तेजी से बढ़ने वाली प्रजाति के वृक्ष जैसे रेड आल्डर (आल्नस रूब्रा) को उगाएं तो उस दशा में 100 मेगावाट के संयंत्र के लिए 11,000 हेक्टेयर का वृक्षारोपण क्षेत्र पर्याप्त होगा. तथापि उन्नत प्रतिप्राप्ति विधि तथा उन्नत वनवर्धन तकनीक को एक साथ प्रयुक्त करके संयंत्र की आवश्यकता पूरी करने वाली वृक्षारोपण भूमि के क्षेत्रफल को काफी हद तक कम किया जा सकता है.

बड़ौदा की ज्योति फर्म ने बायोमास गैसीकरण द्वारा पावर उत्पादन के लागत खर्च का आर्थिक तखमीना प्रस्तुत किया है. केंद्रित ऊर्जा प्रणाली की तुलना में विकेन्द्रित ऊर्जा व्यवस्था को अपनाने पर 10.5 प्रतिशत से लेकर 23.4 प्रतिशत तक की बचत की जा सकती है और डीजल प्रणाली की तुलना में 100 किलोवाट संयंत्र पर बचत 26.67 प्रतिशत से लेकर 37.04 प्रतिशत तक हो सकती है. इस पावर संयंत्र से एक वर्ष में 25,000 बैरल खनिज तेल की बचत की जा सकती है. वाष्प जनित पावर बायोमास गैसीफायर से तुलना करें तव बचत अधिकतम होगी 78.87 प्रतिशत तक.

अतः, महंगी से महंगी बायोमास ऊर्जा प्रणाली भी केंद्रित ऊर्जा संयंत्र के मुकाबले सस्ती ही पड़ेगी तथा लंबी अवधि के परिचालन के दौरान खर्च और भी कम आएगा. इस स्थल पर हम वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों के भावी विकास की भी कल्पना कर सकते हैं जवकि ईंधन से तथा बायोगैस दोनों की ही संयुक्त प्रणाली को प्रयुक्त करना संभव होगा. पूर्णरूप से विकसित हो जाने पर यह संयुक्त प्रणाली विकासशील देशों में ऊर्जा नियोजन के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी युग का सूत्रपात कर सकेगी. इसके लिए आवश्यक होगा कि इन विशिष्ट मुद्दों को एकीकृत करने के लिए और अधिक मनोयोग से प्रयास किए जाए.

भारत में ज्योति और भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड ने पहले एकीकृत ऊर्जा नियोजन की अभिकल्पना करके उसके कुछ मॉडलों पर काम भी किया है. किंतु, क्षेत्र परीक्षण स्तर तक वे कभी नहीं पहुंच पाए. स्ट्रेथक्लाइड यूनिवर्सिटी ग्रुप के समर्थन में मुरूगप्पा चेट्टयार रिसर्च सेंटर, मद्रास ने इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किया. इस केंद्र की अवधारणा का ही रूप है एकीकृत शैवाल जलाशय प्रणाली जिसमें बायोमास, सौर उर्जा व नीले हरे शैवाल की उर्वरक ऊर्जा समाहित है.

संसार के विभिन्न भागों में ऊर्जा की एकीकृत प्रणालियों के दिकास के लिए किए जाने वाले प्रमुख प्रयास इस प्रकार हैंः

(1) सौर ढक्कन वाले डायजेस्टर से लैस बायोगैस संयंत्र जिसका सुझाव सर्वप्रथम ज्योति कीरित पारेख और रेड्डी ने दिया था. इससे गैस उत्पादन में 100 प्रतिशत वृद्धि होती है. (2) फिलिपाइन्स की एकीकृत प्रणाली जिसमें पवन एवं सौर ऊर्जा को जलकृषि तथा पशुपालन व्यवस्था में समाहित किया गया है. (3) न्यू–आल्केमी इंस्टि्ट्यूट (यू एस ए) माडल. (4) ग्राहम केन ईको हाउस. (5) सहक्रियात्मक प्रणालियां जिनके अंतर्गत ऊर्जा का मुख्य मुददा खाद्य उत्पादन होता है, जबकि उर्वरक तया कच्चे माल आदि का उत्पादन गौण महत्व रखता है. (6) शैवालीय जलाशय और बायोगैस संयंत्र का संयोजन. (7) जल हायसिन्थ तथा मत्स्य जलाशय संयोजन. (8) विष्ठामल, पशु अपशेष तथा अन्य फार्म/जैविक/अपशेषों पर आधारित बायोजेनरेटर फार्म की अवधारणा तथा (9) संपाचन–प्रकाश संश्लेषण एकीकृत युक्ति–ईंधन, चारे तथा उर्वरक उत्पादन के लिए.

इन साहसिक प्रयोगों के प्रशंसनीय उद्देश्यों के बावजूद असंतोष की बात यह है कि इनमें से किसी भी प्रयोग द्वारा यह दावा नही किया जा सकता कि एक निश्चित अवधि के भीतर व्यापारिक ऊर्जा स्रोतों की निर्भरता से पूर्णतः मुक्त हो जाने का अंतिम लक्ष्य हम प्राप्त कर लेंगे.

समग्र ऊर्जा बजट : अलीगढ़ नमूना

सन् 1983 के प्रारंभ में इंडिया हाउस डिवेलपमेंट, नई दिल्ली ने दी हुई परिस्थितियों में फासिल ईंधन को पूर्णतः प्रतिस्थापित करने की संभावना पर काम करना शुरू किया. इसके लिए उसने उत्तर प्रदेश में अलीगढ़ जिले के 5 गांवों के एक समूह को चुना, यद्यपि ये गांव जिला मुख्यालय के निकट प्रदेश के एक राजपथ के करीब पड़ते थे, तयापि 932 घरों का यह समूह परिवर्तन की बयार से अछूता रह गया था. इस बस्ती में कुछ थोड़े से ही नलकूपों को विद्युत शक्ति दी गई थी. फिर कृषि उत्पादन के निमित्त इस ऊर्जा स्रोत की उपलब्धता पर भरोसा भी नहीं किया जा सकता था.

घरेलू कार्यों के लिए जिन 147 घरों का सर्वेक्षण किया गया उनमें से केवल तीन घरों में खाना पकाने के लिए किरासिन तेल का इस्तेमाल हो रहा था. चूंकि लकड़ी मुश्किल से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलती थी अतः खाना पकाने के मुख्य साधन थे गोबर के उपले तथा कृषि अपशेष. और जैसा कि गांवों में आमतौर पर पाया जाता है विरले ही लोग वहां इस स्थिति में थे कि वे आयातित व्यापारिक ईंधन खरीद पाते और फिर अगले कई वर्षों तक घरेलू कामों के लिए बिजली के उपयोग का स्वप्न भी नहीं देख सकते थे.

ऊर्जा के मोर्चे पर अधिक कुछ किया भी नहीं जा सकता था, क्योंकि इसके लिए विकल्प अत्यधिक सीमित थे. ग्रामवासियों की कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण सौर या पवन ऊर्जा की युक्तियों का सुझाव इन्हें देना संभव नहीं था. बायोगैस संयंत्र के बारे में थोड़ी बहुत जानकारी इन्हें अवश्य थी, क्योंकि सर्वेक्षण वाले इलाके के पांच में से एक गांव में एक बायोगैस संयंत्र लग चुका था. इसलिए हमें एक ऐसा माडल विकसित करना पड़ा जो पूरी तरह उस क्षेत्र में उपलब्ध जैविक संसाधनों पर आधारित था. इन संसाधनों में उत्तम किस्म के ईंधन बायोगैस एवं ब्रिकेट के अतिरिक्त फसल अपशेष मवेशी के गोबर तथा विष्ठामल आदि भी शामिल थे. उन्नत किस्म के चूल्हे का उपयोग करने पर जलावनी लकड़ी की खपत में कमी लाई जा सकती है और इस प्रकार स्थानीय ऊर्जा संसाधनों की क्षमता और अधिक बढ़ाई जा सकती है. इक्के दुक्के किसानों की ऐसी भूमि या सामुदायिक भूमि जिसका भरपूर उपयोग खेती के लिए नहीं हो पा रहा है, यदि सामाजिक वानिकी योजना के अंतर्गत लाई जाए तो बायोमास संसाधनों में वृद्धि होगी. अस्तु इस संदर्भ में तेजी से बढ़ने वाले ऊर्जा वृक्षों को उगाने के कार्यक्रम का सुझाव दिया गया.

गैर-पारंपरिक ऊर्जा युक्तियों में अकेली एक युक्ति (या संसाधन) से काम नहीं चलने का. अस्तु इक्के दुक्के बायोगैस संयंत्र की योजना का भी परित्याग कर दिया गया. क्योंकि मानव पशु का अनुपात बहुत ही कम था. उपलब्ध गोबर की 60 प्रतिशत मात्रा को भी इकट्ठा कर लेने पर काम नहीं चलेगा. अतः यह जरूरी हो गया कि बायोगैस संपाचक (डायजेस्टर) में उपलब्ध फसल अपशेष के 50—70 प्रतिशत का भरण किया जाए तथा इसके लिए सामुदायिक विष्ठामल संयंत्र भी स्थापित किए जाएं. अस्तु अलीगढ़ के इस गांव समूह के लिए विकेन्द्रित ऊर्जा की संग्रहित (पैकेज) योजना के निम्न को शामिल किया गया. अव-सामुदायिक बायोगैस संयंत्र प्रणाली, सामाजिक वानिकी तथा जीव वैज्ञानिक (आर्गेनिक) नाइट्रोजन स्थिरीकरण युक्त निम्न—ऊर्जा कृषि प्रणाली.

इस गांव समूह के लिए किए गए सर्वेक्षण के अनुसार अनुमान है कि अव-सामुदायिक बायोगैस संयंत्रों में प्रयुक्त होने वाले आर्गेनिक अपशेषों का सतर्कतापूर्वक संघटन करके तथा ऊपर बताई गई अन्य सावधानियों को बरतने के परिणामस्वरूप कुछ न कुछ अधिशेष अवश्य हासिल कर लिया जा सकता है, बावजूद इसके कि जनसंख्या वृद्धि प्रतिवर्ष 2 प्रतिशत होगी तथा ऊर्जा वृद्धि दर 5 प्रतिशत होगी.

संतुलित ऊर्जा बजट द्वारा ऊर्जा की दृष्टि से आत्मनिर्भरता हासिल करने का लक्ष्य विभिन्न क्षेत्रों में ऊर्जा उत्पादन के अंतिम चरण की दक्षता बढ़ा कर हासिल किया जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप समुदाय की समग्र ऊर्जा मांग में पर्याप्त कमी हो जाती है. अलीगढ़ सर्वेक्षण से स्पष्ट है कि विकेन्द्रित ऊर्जा नीति लागू करने के संदर्भ में ऐसी 'सामाजिक संरचना' विकसित करने की अत्यधिक आवश्यकता है जिसमें कमजोर वर्ग की मदद देने की व्यवस्था हो तथा सामाजिक समृद्धि के निर्माण का कार्य निम्नतम स्तर से आरंभ करके समाज के शीर्ष स्तर तक पहुंचाया जा सके.

इस प्रकार तीसरी दुनिया के देशों से अन्ततः गरीबी और रोजगार की कमी की दुहरी समस्या का उन्मूलन हो सकेगा जो अभी तक विकास के सभी माडलों के लिए एक चुनौती बनी हुई है. इसके लिए यह जरूरी होगा कि ऊर्जा संसाधनों के प्रबंधन के संदर्भ में पहले प्राथमिकताओं के सर्वथा नवीन क्रम निर्धारित किए जाएं और साथ ही प्रबंध व्यवस्था के लिए मनोयोग पूर्वक सामूहिक प्रयास किए जाएं.

यद्यपि यह कार्य काफी श्रम साध्य है, यह मानव सामर्थ्य की पहुंच से बाहर नहीं है. विकेन्द्रित ऊर्जा प्रणाली में जिस सामूहिक प्रयास की अभिकल्पना की गई है उसकी बदौलत जन जन को ऊर्जा का वह अल्पांश उपलब्ध हो सकेगा जो विकासशील देशों के लाखों व्यक्तियों के लिए उज्जवल भविष्य सुनिश्चित करने में समर्थ होगा. □

(पृष्ठ 408 का शेषांश)

ही झील की द्रोणी में मिल सकता है. कई देशों में भूविज्ञानवेत्ताओं ने वार्व के अध्ययन की सहायता से विगत हिमयुग की बर्फ-परतों के द्रवण द्वार क्षेत्रफल में घटने के अभिलेख का पता लगाया है. दुर्भाग्यवश इस अभिलेख में कहीं-कहीं असातत्य (डिस्कंटि न्युटी) मिलता है जिसे अनुमान से ही भरा जा सकता है. इस प्रकार के अध्ययन के आधार पर स्कैंडिनेविया में आज से 15,000 वर्ष पूर्व तक का अभिलेख स्थापित किया जा चुका है. अलबत्ता इसमें कुछ अनुमानित काल भी शामिल है. इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका में आज से 20,000 वर्ष पूर्व तक के हिमनद के इतिहास का पता लगाया जा चुका है.

अनेक पट्टित निक्षेप जो कि वार्षिक घटनाओं के अभिलेख माने गए है. वैसे स्थानों में भी पाए जाते हैं जहां हिमनद नहीं रहे हैं. अनेक झील निर्मित निक्षेप, समुद्र निर्मित शेल तथा नमक की चट्टानों आदि में भी वार्व मिलते हैं. तो स्पष्टतः अवसाद-निक्षेप में मौसमी परिवर्तन के कारण विकसित हुए हैं, वार्व की बनावट चित्र-1 में दिखाई गई है.

वार्व-अध्ययन के आधार पर काल-निर्धारण की विधि स्वीडन के भूवैज्ञानिक डी गीयर के द्वारा सन् 1878 ई० में विकसित की गई. इसकी सहायता से उसने स्वीडन के कुछ क्षेत्रों में 18,000 वर्ष तक के पुराने इतिहास का पता लगाया. इस विधि की शत-प्रतिशत सफलता का पता तब लगता है जब इसकी तुलना इतिहास में अभिलेखित किसी काल से की जाती है. गीयर ने इस कार्य में लगभग शत—प्रतिशत सफलता प्राप्त की. कुछ प्राक केम्ब्रियन काल की चट्टानों में भी वार्व दिखाई पड़ते हैं, परंतु इनका सही-सही निर्माण काल बताना इस कारण संभव नहीं हो पाता क्योंकि भूतल की हलचल के दौरान ये उलट पलट गए हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पच्चीसवीं पुण्य तिथि पर

भारत में परमाणु ऊर्जा के जनक— होमी जहांगीर भाभा

□ पूनम वार्ष्णेय

□ भारत में नाभिकीय ऊर्जा के उत्पादन को बढ़ावा देने का श्रेय जिस एक वैज्ञानिक को सबसे अधिक जाता है वह है स्वर्गीय डा० होमी जहांगीर भाभा. अपने जीवन काल में डा० भाभा परमाणु ऊर्जा आयोग के सचिव, परमाणु ऊर्जा संस्थान के अध्यक्ष, वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् की शासकीय समिति के सदस्य, टाटा इंस्टीट्यूट आफ फण्डामेण्टल रिसर्च के निदेशक तथा भारत सरकार की वैज्ञानिक सलाहकार समिति के अध्यक्ष रहे. इस वर्ष उनकी पच्चीसवीं पुण्य तिथि है.

डा० भाभा का जन्म 30 अक्तूबर सन् 1909 को बंबई के एक समृद्ध पारसी परिवार में हुआ था. इनके पितामह, डा० हुरमुस, मैसूर राज्य में शिक्षा विभाग के निदेशक थे, और पिता जहांगीर एच० भाभा, बंबई के प्रमुख बैरिस्टरों में एक थे. इनकी माता, मेहरबाई फरमजी अपनी लोक कल्याण की भावना के कारण बंबई में सम्मान से देखी जाती थीं.

घर के बौद्धिक समृद्धि के वातावरण ने भाभा के शैशव और बाल्यावस्था को बहुत प्रभावित किया था. पढ़ने-लिखने में रूचि भाभा को अपने पिता के कारण हुई.

बंबई के कैथेड्रल जॉन केनन हाई स्कूल, एलफिंस्टन कालेज और रॉयल इस्टिट्यूट ऑफ सांइस में शिक्षा प्राप्त कर वे 17 वर्ष की अल्प आयु में उच्च अध्ययन हेतु कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, इग्लैण्ड चले गए.

वहां सन् 1930 में मैकेनिकल साइन्सेज की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के बाद भाभा शोधार्थी के रूप में सैद्धान्तिक भौतिक शास्त्र का अध्ययन करने लगे.

कैवेन्डिश प्रयोगशाला में भाभा ने दो वर्ष अनुसंधान कार्य किया. 1931-32 में उन्हें इंजीनियरिंग की सेलोमोन्स छात्रवृत्ति मिली और 1932-33 में गणित में ट्रिनिटी कालेज की राउज बाल की यात्रा-भत्ता छात्रवृत्ति मिली जिसके फलस्वरूप उन्होंने यूरोप की यात्रा की और ज्यूरिख में पाओली, रोम में प्रो० ई० फर्मी तथा यूट्रेरुट में प्रो० एच० ए० क्रैमर्स के साथ अनुसंधान कार्य किया.

सन् 1934 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से उन्हें पी-एच० डी० की उपाधि मिली. सन् 1934 में ही उन्हें आइजक न्यूटन स्टूडेण्टशिप और सन् 1937 में 'सीनियर स्टूडेण्टशिप' नामक छात्रवृत्ति प्रदान की गई. द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ होने तक वे कैम्ब्रिज में ही कार्य करते रहे.

भाभा यूरोप में तेरह वर्ष रहे, अनुसंधान की दृष्टि से ये वर्ष बहुत फलदायी रहे. यूरोप में किए गए उनके महत्वपूर्ण अनुसंधान कार्य निम्न थे:

1. उन्होंने पहली बार इलेक्ट्रान-पोजीट्रान प्रकीर्णन (स्कैटरिंग) का अनुप्रस्थ काट निकाला. इस प्रकीर्णन को 'भाभा-प्रकीर्णन' नाम दिया गया.

2. वैज्ञानिक हाइटलर के साथ भाभा ने अंतरिक्ष किरणवर्षण, (कास्मिक रे शावर्स) का सिद्धान्त दिया.

3. नाभिकीय बल के लिए उन्होंने 'वेक्टर मेसॉन थ्योरी' दी.

4. उन्होंने यह बताया कि ऑईस्टाइन के सापेक्षता के सिद्धान्त का ही परिणाम है कि मेसॉन के वेग का उसकी आयु पर प्रभाव पड़ेगा. यह प्रभाव पाया गया और इससे सापेक्षता के सिद्धान्त की पुष्टि हुई.

सन् 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हो जाने पर भाभा भारत आ गए और फिर वापस इंग्लैण्ड नही गए.

सन् 1940 में वे 'भारतीय विज्ञान संस्थान' (इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस) बंगलौर में रीडर हुए और फिर सन् 1942 में वहीं पर प्रोफेसर हो गए.

भाभा के महत्वपूर्ण अनुसंधानों से प्रभावित होकर सन् 1941 में 31 वर्ष की आयु में रॉयल सोसाइटी ने उन्हें अपना फैलो निर्वाचित किया. सन् 1942 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने भाभा को 'एडम्स पुरस्कार' प्रदान किया और सन् 1948 में 'होपकिन्स पुरस्कार' दिया.

सन् 1945 में भाभा के प्रयासों से बंबई में 'टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फण्डामेंटल रिसर्च' की स्थापना हुई और इसके प्रथम निदेशक, डा० होमी जहांगीर भाभा बनाए गए.

सन् 1947 में स्वतंत्र हो जाने के बाद भारत ने विज्ञान के नए युग में प्रवेश किया.

सन् 1954 में भारत सरकार ने 'परमाणु ऊर्जा विभाग' की स्थापना की. इसके अध्यक्ष, पण्डित जवाहरलाल नेहरू थे, सचिव डा० भाभा को बनाया गया. फिर ऊर्जा विभाग की ओर से बंबई के पास ट्राम्बे में 'परमाणु ऊर्जा प्रतिष्ठान' की स्थापना की गई और भाभा को इसका संचालक बनाया गया. एशिया की यह पहली अणुभट्टी थी.

सन् 1952 में स्टॉकहोम में आयोजित अंतरराष्ट्रीय तकनीकी गोष्ठी में भाभा ने 'कॉस्मिक पाट्रिकल्स' की अपनी महत्वपूर्ण खोज से सबको चकित कर दिया.

वह राष्ट्रसंघ की वैज्ञानिक समिति के भी सदस्य थे. सितम्बर सन् 1956 मे 81 राष्ट्रों का

(शेष पृष्ठ 423 पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगा तेरा पानी दूषित

चर्चित पुस्तक : गंगा; लेखक : डा० ब्रह्मदत्त त्रिपाठी और अखिलेश कुमार सिंह; प्रकाशक : नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी; पृष्ठ : 168 + 8; मूल्य : 75 रुपए.

☐ सारे देश के पापों को कथित रूप से धोने वाली गंगा का एक पारिस्थितिक अध्ययन (हिमालय से सागर तक) किया है. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की गंगाजल प्रदूषण शोध परियोजना के प्रधान अन्वेषक डा० ब्रह्मदत्त त्रिपाठी और उनके शोध छात्र अखिलेश कुमार सिंह ने गंगा के किनारे बसे 1500 उद्योगों ने अपना जहरीला पानी उसमें मिला दिया है. गंगा सहित देश भर की नदियों का यही हाल है. सारा वातावरण संक्रामक बनता जा रहा है.

समाज पर आए इस संकट से, विकास संबंधी हमारी आधुनिक विचारधारा देखें कैसे मुकाबला करती है. विकास संबंधी हमारी विचारधारा के साथ मुश्किल यह है कि आज की पर्यावरण चेतना ज्यादातर विकास चेतना का ही अंग बनकर रह गई है. इस चेतना के अनुसार पर्यावरण का अपने आप में या लोगों के लिए कोई महत्व नहीं है. समाज पर आए इन्हीं सब संकटों का एक गहरा एहसास दिलाती है प्रस्तुत पुस्तक 'गंगा'.

पूरी पुस्तक को लेखकों ने निम्न छः अध्यायों में विभक्त किया हैः भौगोलिक विवरण, जैव संगठन, पारिस्थितिक परिवर्तन, पारिस्थितिक परिवर्तनों के प्रभाव, गंगा परियोजना, और वैज्ञानिक विश्लेषण. पुस्तक की भूमिका में लिखा है, कई दृष्टियों से गंगा निस्संदेह एक असाधारण नदी है लेकिन जीवाणुनाश तथा प्रदूषकों की बड़ी मात्रा को तेजी से पचा सकने की असाधारण क्षमताओं के बावजूद उसकी भी अपनी सीमाएं हैं. मानवीय गतिविधियों के कारण उत्पन्न पारिस्थितिक परिवर्तन अब इन सीमाओं को लांघ रहे हैं और इसका प्रभाव मनुष्यों पर पड़ना निश्चित है. क्या हम इस विभीषिका से अपनी रक्षा कर पाएंगे?

'भौगोलिक विवरण' अध्याय में गंगा की सहायक नदियों रामगंगा, गोमती, घाघरा, गंडक, बूढ़ी गंडग, बागमती, कमला, कोसी, महानंदा, यमुना, चंबल, सिंध, बेतवा, केन, टोंस, कर्मनाशा, सोन, पुनपुन आदि के बारे में भी संक्षिप्त परिचय दिया गया है. कृषि सिंचाई, जलविद्युत धारा व वनस्पतियां तथा पशु पक्षी आदि के बारे में भी थोड़ी सामग्री दी गई है.

किसी परितंत्र का जैव घटक उसमें पाई जाने वाली वनस्पतियों, प्राणियों तथा जीवाणुओं से मिलकर बनता है. वनस्पतियां परितंत्र की प्राथमिक उत्पादकता का आधार बनाती है. विभिन्न अनुसंधानकर्ताओं ने समय-समय पर अपने अनुसंधान के सिलसिले में गंगा में पाई जाने वाली जिन वनसपतियों को पहचाना और उसका अध्ययन किया है उनका संक्षिप्त परिचय 'जैव संगठन' नामक अध्ययन में दिया है. सन् 1975-76 में आई आई टी कानपुर के डा० निलय चौधरी तथा श्री काशी प्रसाद ने गंगाजल को आटोक्लेव में 130 डिग्री सेल्सियस पर आधा घंटे तक उबाला. इस स्थिति तक जल को उबालने पर उसमें उपस्थित सभी जीवाणुओं तथा जीवाणु-भोजियों (बैक्टीरियों फेजों) को नष्ट हो जाना चाहिए. लेकिन जांच के बाद पाया गया कि गंगा जल की जीवाणुनाशक क्षमता पूर्ववत् बनी रही. इसका कारण गंगा जल में उपस्थित रासायनिक यौगिक हो सकते हैं. कुछ वैज्ञानिकों का अनुमान है कि गंगा जल में कुछ ऐसे रसायन हैं जो कार्बनिक पदार्थों को थक्का बनाकर उन्हें तलछट के रूप में नीचे तली में पहुंचा देते हैं और जल स्वच्छ हो जाता है.

2525 किलोमीटर लंबी गंगा में फरवरी से लेकर मई-जून तक हरे शैवालों की संख्या तेजी से बढ़ती है. 150 शैवाल प्रजातियां, 98 प्रकार के कवक (फफूंदी) और 72 जातियों की मछलियां गंगा में पाई जाती हैं. 'पारिस्थितिक परिवर्तन' नामक अध्याय में एक जगह लिखा है—गंगा पूरे यात्रा पथ के अधिकतम हिस्से में गंभीर रूप से प्रदूषित हो चुकी है. केवल उद्गम से 250 किलोमीटर की दूरी तक गंगा हिमालय की पर्वत श्रेणियों में बहती है. उसका पानी प्रदूषण से बचा रह सका है. अगर पर्वत शिखरों पर भी कारखानों की स्थापना संभव होती तो यह हिस्सा भी कब का प्रदूषित हो चुका होता. आधुनिक विकास का प्रतीक बनकर आई इस औद्योगिक क्रांति के घातक पहलुओं की ओर बहुत कम लोगों का ध्यान जा पाया है. अभी तक हम कुछ भी नहीं जान पाए हैं कि औद्योगिकरण का हमारे रहन-सहन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है. विकास के इस स्वरूप को इस अध्याय में समझने की एक कोशिश लेखक द्वारा की गई है.

गंगा को गंदा कर रहे कारखानों के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की गई थी. अपने निर्णय में न्यायालय ने कानपुर की 28 चमड़ा-इकाइयों को तुरंत बंद करने के आदेश दिए थे. आज केवल कानपुर में ही 800 से अधिक छोटे-बड़े उद्योग अपना काला पानी दिन-रात गंगा में गिरा रहे हैं. एक लाख से अधिक आबादी वाले 29 बड़े शहरों के 90 करोड़ लीटर जलमल का पाप भी गंगा ही उठा रही है.

गंगा को प्रदूषण रहित करने का कार्य एक ऐसा कार्य है जिसके क्रियान्वयन में स्थानीय निकायों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों, अनेक केंद्रीय तथा प्रादेशिक विशेष संगठनों तथा विषय विशेषज्ञों की सहभागिता आवश्यक है और सबसे अधिक जनसहयोग अपरिहार्य है क्योंकि यह भी एक सच है कि इस समस्या को उपजाने व उकसाने में जाने अनजाने हम सब शरीक हैं. कारखानें से गंदा पानी निकल रहा है. छोटे-बड़े शहरों से जलमल निकल गंगा को प्रदूषित कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं. आज गंगा प्रदूषित हो रही है. प्रदूषित करने वाले कुछ बड़े-बड़े कारखाने हैं तो कुछ सामान्य मजबूर भी. लेकिन आधुनिक ढांचे पर विकसित क्षेत्र अब आधुनिकता के रोगों के शिकार भी बन चले हैं.

पुस्तक की छपाई, कागज की क्वालिटी व साज-सज्जा साधारण है. पुस्तक के अंत में कुछ हिन्दी शब्दों की अंग्रेजी देकर इन्हें सुग्राह्य बना दिया गया है. लेकिन एक बात जो अखरती है वह है पुस्तक का मूल्य. यह अधिक है और लगता है प्रकाशक ने इसे आम पाठकों के लिए नहीं छापा है. फिर गंगा जैसी पुस्तक का आम पाठकों के बीच स्वागत कैसे होगा? □

महान वैज्ञानिकों की जीवन गाथा

चर्चित पुस्तक : विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक; लेखक : राजीव गर्ग; प्रकाशक : फैमिली बुक्स प्रा० लिमिटेड, एफ–2/16, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002; वितरक : पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली–110006; पृष्ठ : 128; मूल्य : 18 रुपए.

□ वैज्ञानिक निरे सूत्रों और जमा, घटा, गुणा, भाग से भरी बोझिल किताबी जिंदगी ही नहीं जीता, उसकी जिंदगी भी एक आम आदमी की जिंदगी की तरह दुःख सुख और अंतर्द्वंदों से भरी होती है. साथ ही वह तर्क और सत्य की परखनली में अपने देश काल को परखकर समाजोपयोगी कार्य भी करता रहता है.

वैज्ञानिक समय समय पर अपने समाज के सामाजिक आंदोलनों के साथ राजनीतिक व आर्थिक समस्याओं के प्रति भी जागरूकता दिखाते रहे हैं. ऐसे ही चालीस वैज्ञानिकों की जीवन गाथा का संकलन पुस्तक महल ने 'विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक' नामक पुस्तक में किया है.

माइकेल फैराडे, गैलीलियों, इवान जेलिस्टा, ओटोवान ग्वेरिके, एनरिको फर्मी, मैक्स प्लांक, लियोनार्दो द विन्सी, हम्फ्रे डेवी, रोंटजन, न्यूटन, जेनर, सत्येन्द्र नाथ बोस, फ्लेमिंग, आर्किमिडीज ओपनहीमर, एडीसन, फ्रैंकलिन, सालिम अली, जगदीश चन्द्र बोस, चार्ल्स डारविन, मैडम क्यूरी, सी० वी० रमन, ओरविल व विलबर राइट पास्कल, आइंस्टीन, फ्रैडरिक कैकुले, मैक्सवेल, मारकोनी, चैडविक, बेयर्ड इयागोरस, बर्नहार्ड नोबोल, खुराना, भाभा, यूक्लिड, रामानुजन, ग्राहम बेल, रुदर फोर्ड, मैंडल और नैपीयर के जीवन चरित्रों से यह पुस्तक अपने पाठकों का परिचय कराती है.

भौतिक विज्ञान के इतिहास में एक युग परिवर्तनकारी घटना क्वांटम सिद्धान्त का प्रतिपादन रहा है. इसके प्रतिपादक मैक्स कार्ल अर्नस्ट लुडविंग प्लांक (जन्म जर्मनी में 23 अप्रैल 1858) के बारे पुस्तक कहती है, "क्वांटम सिद्धान्त इतना जटिल था कि शुरू–शुरू में इसके महत्व को पूरी तरह समझने वाले प्रथम व्यक्ति अल्बर्ट आइंस्टीन थे. इस सिद्धान्त को आधार मान कर उन्होंने फोटो इलेक्ट्रिक इफैक्ट की विवेचना की. एक समय ऐसा भी था जब क्वांटम सिद्धान्त को वैज्ञानिक मानने को ही तैयार नहीं थे. बाद में वैज्ञानिकों ने यह मान लिया कि क्वांटम सिद्धान्त ही एक ऐसा सिद्धान्त है जो भौतिक विज्ञान की हर गुत्थी को सुलझा सकता है.

एक्स किरणों के आविष्कारक विल्हेल्म कानेराड रोंटजन (खोज 1895) के बारे में (जन्म 22 मार्च 1845, मृत्यु 10 फरवरी 1923, जर्मनी) पुस्तक में लिखा है कि प्रोफेसर रोंटजन और उनके दो साथियों की जिन्होंने इन किरणों के विकास में बहुत बड़ा योगदान दिया था, इनके घातक प्रभाव से बड़ी दयनीय मृत्यु हुई. यद्यपि ये किरणें जीवनदायी हैं लेकिन शरीर पर इनके बड़े घातक प्रभाव होते हैं.

एडवर्ड जेनर के बारे में पुस्तक कहती है कि चेचक जैसे भयंकर रोग से मुक्ति दिलाने का श्रेय इन्हें जाता है. जेनर (जन्म 17 मई 1749, मृत्यु 26 जनवरी 1823 इंग्लैण्ड) ने प्रवासी पक्षियों के बारे में अनुसंधान किए. अलैक्जेण्डर फलेमिंग विश्व के पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने सन् 1928 में पेनिसिलिन का आविष्कार करके संक्रामक रोगों से लड़ने और उन पर काबू पाने का रास्ता दिखाया. 1945 के नोबेल पुरस्कार विजेता फ्लेमिंग (जन्म 6 अगस्त 1881 व मृत्यु 11 मार्च 1955) सन् 1928 में रोगों के जीवाणुओं के साथ कुछ प्रयोग कर रहे थे तो आकस्मिक रूप से उन्होंने पेनिसिलिन जैसी जीवनदायी औषधि का आविष्कार कर डाला. इसकी बहुत ही दिलचस्प कहानी दी गई है.

अमेरिका में मिलान, ओहियो में 11 फरवरी 1847 को जन्मे एडीसन के बारे में लिखा है, 'इस अकेले व्यक्ति ने एक हजार से भी अधिक पेटेंट प्राप्त किए. मानव विकास के इतिहास में अब तक कोई भी वैज्ञानिक ऐसा नहीं हुआ, जिसने एडीसन के बराबर आविष्कार किए हों. तडित चालक के आविष्कारक फ्रैंकलिन (जन्म 17 जनवरी 1706, मृत्यु 17 अप्रैल 1790 अमेरिका) ने अपने आविष्कारों का पेटेंट लेने से सदा इंकार किया. वे इनसे धन कमाने की लालसा नहीं रखते थे. उन्होंने अपने आविष्कारों को सदा ही जनहित में उपयोग किया. अमेरिका के स्वंतत्रता संग्राम में उनका बहुत बड़ा योगदान रहा. वे उपनिवेशों के उन पांच राजनीतिज्ञों में से एक थे जिन्होंने 4 जुलाई 1766 को संयुक्त राज्य अमेरिका की नींव डालने वाले घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किए थे.

आधुनिक भौतिक विज्ञान के विकास में फ्रांस के क्यूरी परिवार की दो पीढ़ियों का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है. विश्व में अभी तक कोई ऐसा परिवार नहीं हुआ, जिसकी दो पीढ़ियों में से पांच ने नोबेल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरस्कार प्राप्त किए हो; क्यूरी परिवार में दो मैडम क्यूरी को, एक इनके पति पियरे क्यूरी को और एक इनकी पुत्री आइरीन क्यूरी को और एक आइरीन के पति फ्रैंडरिक जूलियट को मिला है. पोलैंड की राजधानी बारसा में 7 नवंबर 1867 को जन्मी मैडम क्यूरी का बचपन का नाम मेरी स्कलोदोबस्का था. मेरी ने अपने पति पियरे क्यूरी के साथ मिलकर 1898 में रेडियम का आविष्कार किया था. इस संघर्ष की गाथा को बड़ी अच्छी तरह इस पुस्तक में लिखा गया है.

ग्राह्मबेल का जन्म एडिनबरा (स्कॉटलैंड) में 3 मार्च 1847 को हुआ था. उनका पालन–पोषण बोस्टन में हुआ और अपने यंत्रों के नक्शे बनाते-बनाते वे टेलीफोन बनाने में सफल हो गए. रदरफोर्ड को परमाणु के अंदर झांकने वाला वैज्ञानिक माना जाता है. रदरफोड ने ही (जन्म 30 अगस्त 1871, मृत्यु 19 अक्तूबर 1937) सर्वप्रथम अपने प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध करके दिखाया कि एल्फा किरणें वास्तव में एक प्रकार के कण होते हैं जो हीलियम नाभिक के समतुल्य होते हैं. यह पुस्तक बहुत सरल भाषा में ऐसे चालीस वैज्ञानिकों के जीवन व उनके किए कार्यों से परिचित कराती है.

सभ्यता के विकास में हजारों वैज्ञानिकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, उनमें से चालीस का चुनाव बड़ा कठिन कार्य है. लेखक ने इसके लिए कौन सा तरीका अपनाया है यह स्पष्ट नही किया है. क्योंकि कुछ बहुत प्रसिद्ध वैज्ञानिक जैसे कोपर्निकस, लेवोशिए, मेण्डलीफ, जोसेफ हेनरी, रैफिनेक्स, मैक्स थीलर, राबर्ट ए० मिलिकन आदि छूट गए हैं. परंतु यह भी एक सत्य है कि 128 पृष्ठों की पुस्तक में इससे अधिक कुछ दिया भी नहीं जा सकता था.

पुस्तक की छपाई, कागज की क्वालिटी और कवर पृष्ठ आकर्षक है. पर्याप्त मात्रा में चित्र भी दिए गए हैं. पुस्तक काफी मनोरंजक भाषा में वैज्ञानिकों से भेंट कराती है. विद्यार्थियों के अलावा आम पाठकों के लिए भी यह पुस्तक काफी उपयोगी सिद्ध होगी. ☐

मानव प्रकृति के शाश्वत संबंधों की जानकारी

चर्चित पुस्तक : पर्यावरण शिक्षा; लेखक डा० रूप किशोर गर्ग और प्रकाश तातेड़; प्रकाशक : पर्यावरण सामुदायिक केंद्र, उदयपुर–313001 (राजस्थान); पृष्ठ : 36 ; मूल्य : 12 रुपए.

☐ पिछले कुछ वर्षों में हमारे यहां पर्यावरण के प्रति चिंता काफी बढ़ी है. यह चिंता दिनों दिन थोड़ी बहुत मानवीय भी होती जा रही है, और लोगों में अपने आस पास के माहौल को जानने और सोचने की समझ भी बढ़ती जा रही है.

हम जिस वातावरण में रह रहे हैं, वह कैसा है? कितना स्वच्छ है? हमसे उसका क्या रिश्ता होना चाहिए? ऐसे न जाने कितने सवाल उठाए जाने लगे हैं. जैसे जैसे लोगों में इस विषय पर सोच बढ़ता जा रहा है, वैसे वैसे इसका साहित्यिक विस्तार भी होता जा रहा है. छोटी बड़ी पुस्तकों से लेकर अनुसंधान संस्थानों तक में इस विषय पर सामग्री जुटती जा रही है. ऐसी ही एक छोटी पुस्तक उदयपुर के 'पर्यावरण सामुदायिक केंद्र' ने प्रकाशित की है.

पुस्तक किशोरों के लिए लिखी गई है यह बात आरंभ में ही स्पष्ट कर दी गई है. वास्तव में 36 पृष्ठों में लिखा ही क्या जा सकता है? सच तो यह है कि पर्यावरण का मामला आज उस स्थिति में पहुंच गया है कि बात कुछ पृष्ठों की नहीं रह गई है.

पुस्तक को सात अध्यायों : पर्यावरण शिक्षा का महत्व, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, पर्यावरण संरक्षण में वनों की भूमिका तथा पर्यावरण एवं विकास में बांटा गया है.

'पर्यावरण शिक्षा का महत्व' नामक अध्याय में एक जगह लिखा है, पर्यावरणीय शिक्षा द्वारा हम बालक को मानव प्रकृति के शाश्वत संबंधों की जानकारी कराकर उसे वर्तमान वातावरण और इसकी समस्याओं को समझने का अवसर देना चाहते हैं. बालक अपने आस पास के वातावरण को समझे, प्रदूषण के कारणों को खोजे, प्रदूषण निवारण के उपाय, सुझाव और उन पर स्वयं अमल करें, सामाजिक चेतना द्वारा पर्यावरण समस्याओं का समाधान करें यही उससे अपेक्षित है.

यहां कुछ और बात भी महत्वपूर्ण हैं, जैसे पर्यावरण सुधार में हमारी भूमिका क्या हैं, और कितनी हैं? एक ऐसे युग में जिसमें पर्यावरण सुधार चेतना ही विकास चेतना का अंग हो, हमारा क्या दायित्व है यह सवाल कठिन है. लेकिन इसका हल हमें ही खोजना है, क्योंकि यह ज्ञान हमें और कहीं से मिलने वाला नहीं.

जल प्रदूषण नामक अध्याय में कवि रहीम की एक कविता का उल्लेख है:

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे. मोती, मानस चून।।

आगे जल संकट के बारे में लिखा है, भारत के 5,75,936 गांवों में से एक लाख से भी अधिक गांवों में पेय जल उपलब्ध नहीं है. वैसे गांवों और छोटे शहरों की बात तो अब पुरानी हो गई, आज तो राज्यों की राजधानी से लेकर देश की राजधानी तक भी इस संकट से जूझ रही हैं.

जल प्रदूषण के बारे में अपने यहां हाल यह है कि गंगा व जमुना से लेकर देश की सभी नदियां मर रही हैं नदियों के किनारे बसे शहरों और उद्योगों ने आज भी उसे जहरीला बनाने का काम अपने ऊपर ले लिया है. आज नदियों के पानी से मछलियां मर रही हैं, कल हम मरेंगे.

हमारे पुरखे वनों के महत्व से सुपरिचित थे. उन्होने कहा भी 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' अर्थात् पृथ्वी माता है और मनुष्य स्वयं उसका पुत्र है. लेकिन आज हर साल देश के 13 लाख हेक्टेयर में फैले वन नष्ट हो रहे हैं. पिछले कुछ समय में देश के सामने उठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्यावरण समस्याओं में सबसे ज्यादा ध्यान वन विनाश की समस्या पर ही गया है और इस दौरान पर्यावरण संबंधी जितने कायदे—कानून बने हैं, उनमें सबसे ज्यादा आलोचना वन संवर्धन संबंधी नीतियों की ही हुई है. आज वनों को बचाना एक गंभीर समस्या बन कर हमारे सामने खड़ी है. इन्हीं सब बातों पर थोड़ा बहुत प्रकाश डाला गया है, 'पर्यावरण संरक्षण में वनों की भूमिका' नामक अध्याय में.

पर्यावरण और विकास नामक अध्याय में विशेषज्ञों के हवाले से कहा गया है कि पर्यावरण संरक्षण और विकास की प्रक्रिया साथ साथ संभव नहीं है, दोनों के बीच संघर्ष है. यदि पर्यावरण के प्रति मोह उत्पन्न हो गया तो आर्थिक विकास की गति अवरूद्ध हो जाएगी. किन्तु विश्व के अधिकांश लोगों ने यह मान लिया है कि पर्यावरण की सुरक्षा के बिना विवेकपूर्ण, संतुलित तथा उचित आर्थिक विकास असंभव है. अब 'विनाश रहित विकास' की मांग जोर पकड़ती जा रही है. औद्योगीकरण के साथ साथ पर्यावरण शुद्धता के साधनों को अपनाने की अनिवार्यता ही समाधान है. लेकिन क्या समाधान इतना ही आसान है. पूरी पुस्तक में कई ऐसे सवाल हैं, जिनका समाधान खोजना आज हमारे सामने एक गंभीर समस्या है. जो हल सुझाए या दिखाए जाते हैं, वे कुछ समय बाद स्वयं एक नई समस्या बन कर उभर आते हैं.

पुस्तक में प्रदूषण के लगभग सभी आयामों के बारे में थोड़ी बहुत जानकारी दी गई है. पुस्तक का आवरण अच्छा है. भाषा शैली भी अच्छी है. रेखाचित्रों का उपयोग ठीक है. पर्यावरण में रूचि रखने वाले बालकों के अलावा आम पाठक के लिए भी पुस्तक उपयोगी है.

□ **राजेन्द्र कुमार राय**

(पृष्ठ 419 का शेषांश)

एक सम्मेलन, आणविक एजेंसी की स्थापना के लिए न्यूयार्क में हुआ. भाभा इसके अध्यक्ष बनाए गए.

भाभा अपने वैज्ञानिक अनुसंधान में इतना व्यस्त रहते थे कि जब प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने उन्हें केंद्र में आणविक विभाग के मंत्री के रूप में मंत्रिमंडल में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रित किया तो भाभा ने विनम्रता से अस्वीकार कर दिया.

24 जनवरी सन् 1966 को जब अंतरराष्ट्रीय आणविक संस्था की वैज्ञानिक सलाहकार समिति के सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये भाभा वियना जा रहे थे मार्ग में वायुयान के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने के कारण भाभा का असमय ही निधन हो गया. वास्तव में यह विज्ञान जगत के लिए अपूर्णनीय क्षति थी.

भाभा एक महान् वैज्ञानिक ही नहीं बल्कि एक कुशल प्रशासक और कला प्रेमी भी थे. उन्हें संगीत, चित्रकला और नाट्यकला से भी लगाव था. भाभा ने जल-रंगों द्वारा मुगल बाग और पुराना किला का गेट बनाया था. सन् 1949 में उन्होंने सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक चन्द्रशेखर वेंकट रमन का पेंसिल-स्केच बनाया था. उन्हें बगीचा लगाने और फूलों का भी बेहद शौक था.

भारत के डाक एवं तार विभाग ने 4 अगस्त 1966 को डा० होमी जहांगीर भाभा पर पन्द्रह पैसे का एक डाक टिकट निकाला था.

सन् 1966 में ही 'टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फन्डामेंटल रिसर्च' का नाम बदलकर इसके संस्थापक की स्मृति में 'भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र' रख दिया गया.

भाभा जीवनपर्यन्त अविवाहित रहे. विज्ञान की सेवा में ही उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया.

भारत में उन्हें परमाणु ऊर्जा का जनक कहा जाता है. विज्ञान जगत सदैव उनका ऋणी रहेगा. □

एजेंट कृपया ध्यान दें

पत्रिका की बिक्री करने वाले एजेंटों से निवेदन है कि वे कृपया पत्रिका की प्रतियों का आर्डर अग्रिम दें. संबंधित अंक के प्रकाशन से कम से कम एक महीने पहले आर्डर कार्यालय में पहुंच जाना चाहिए. इसके लिए यह आवश्यक है कि आर्डर की गई प्रतियों का मूल्य (कमीशन काट कर) पहले ही कार्यालय में जमा करा दिया गया हो. पत्रिका का अंक प्रकाशित हो जाने के बाद आर्डर में वृद्धि नहीं की जा सकती है. कृपया अपने आर्डर में निकटतम रेलवे स्टेशन का उल्लेख अवश्य करें ताकि पार्सल भेजने में सुविधा हो और आपको प्राप्त करने में विलंब न हो. कृपया ध्यान रहे कि आप उतनी ही प्रतियों का आर्डर दें जितनी आप आसानी से बेच सकते हैं, क्योंकि एक बार आर्डर की गई पत्रिकाओं को वापस लेने की व्यवस्था नहीं है.

—वरिष्ठ सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्युत कैसे उत्पन्न की जाती है ?

☐ किसी भी कार्य को करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है. ऊर्जा के अनेक रूप हैं जैसे–विद्युत, यान्त्रिक, रासायनिक, नाभिकीय आदि, पेट्रोल, गैस, कोयला लकड़ी आदि में रासायनिक ऊर्जा होती है. इन्हें जलाकर यह ऊर्जा प्राप्त की जाती है. यूरेनियम तथा प्लूटोनियम में नाभिकीय ऊर्जा होती है जो इनके विखंडन से प्राप्त की जाती है.

प्रायः सभी मुख्य ऊर्जा रूपान्तरणों में यान्त्रिक ऊर्जा के चरण से गुजरना पड़ता है. यांत्रिक ऊर्जा से हम फिर विद्युत ऊर्जा प्राप्त करते हैं. थर्मल तथा नाभिकीय शक्ति केंद्र में जल को भाप में बदलकर भाप टरबाइनों को घुमाया जाता है जिससे विद्युत पैदा होती है. बहते जल में भी ऊर्जा होती है जिसे गतिज ऊर्जा कहते हैं. इस ऊर्जा से जल टरबाइनों को चलागर विद्युत पैदा की जाती है. यहां जल टरबाइन से विद्युत की उत्पत्ति का विवरण दिया जा रहा है. आइए देखें यह कैसे होती है?

उस मशीन को जो यांत्रिक ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में रूपान्तरित करती है, विद्युत जनित्र या डायनमो कहते हैं. डायनमो विद्युत चुम्बकीय प्रेरणा के सिद्धान्त पर कार्य करता है. इस सिद्धान्त के अनुसार जब भी किसी कुंडली से गुजरने वाले चुम्बकीय फलक्स अर्थात चुम्बकीय बल रेखाओं की संख्या में परिवर्तन किया जाता है तो कुंडली के सिरों के बीच एक विद्युत वाहक बल उत्पन्न हो जाता है. इस विद्युत वाहक बल का मान फलक्स परिवर्तन की दर के बराबर होता है. इन नियमों की खोज सन् 1831 में इंग्लैण्ड के महान प्रयोगकर्त्ता फैराडे ने की थी. ये नियम ही वैद्युत तकनीकी के आधार स्तम्भ हैं.

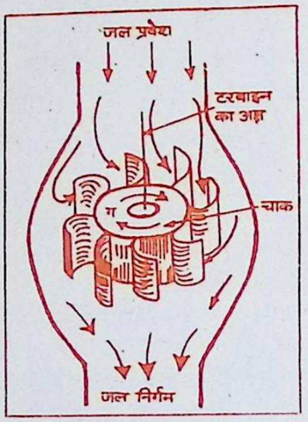

चित्र–2. जल टरबाइन

चित्र–1 में कुंडली को दो चुम्बकीय ध्रुवों के बीच घूर्णन करते दिखाया गया है. कुंडली का तल जब बल रेखाओं के समान्तर होता है तो कुंडली से गुजरने वाली बल रेखाओं की संख्या शून्य होती है और जब यह तल इन बल रेखाओं के लम्बरूप होता है तो कुंडली से गुजरने वाले बल रेखाओं की संख्या अधिकतम होती है. इसके विपरीत प्रथम स्थिति में फलक्स परिवर्तन की दर अधिकतम तथा द्वितीय स्थिति में शून्य होती है. कुंडली से गुजरने वाला फलक्स, कुंडली में फेरों की संख्या, उनके क्षेत्रफल तथा चुम्बकीय प्रेरणा के समानुपाती होता है. जबकि फलक्स परिवर्तन की दर इनके साथ साथ कुंडली के घूर्णन वेग के भी समानुपाती होती है. किसी क्षण दर का परिवर्तन कुंडली के तल पर अभिलम्ब तथा

चित्र–1. चुंबकीय क्षेत्र में कुंडली के घूर्णन से विद्युत वाहक बल का उत्पन्न होना

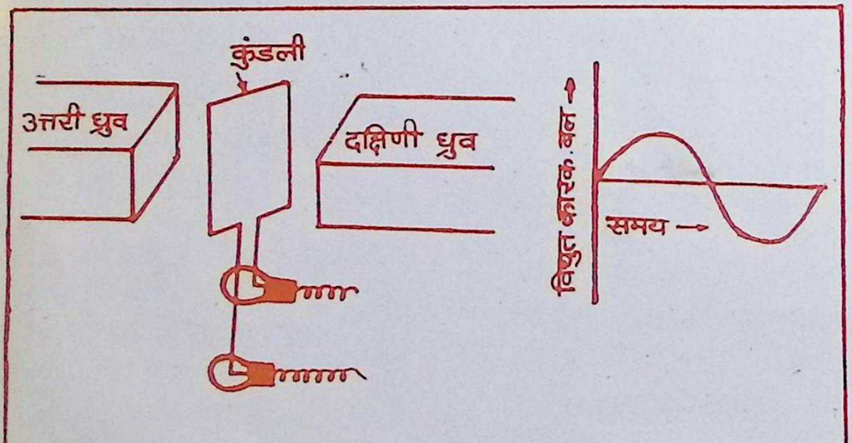

सारणी–1. संसार के प्रमुख जल–विद्युत केंद्रों की विद्युत शक्ति

नाम	देश	क्षमता (मेगावाट में)	चालू वर्ष
इटैपु	ब्राजील, उरूग्वे	12600	निर्माणाधीन
ग्रैंड कौली	अमेरिका	10080	1942
गुरी	वेनेजुएला	10060	1968
टुकुरूई	ब्राजील	6480	निर्माणाधीन
सयानो	सोवियत संघ	6400	1980

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

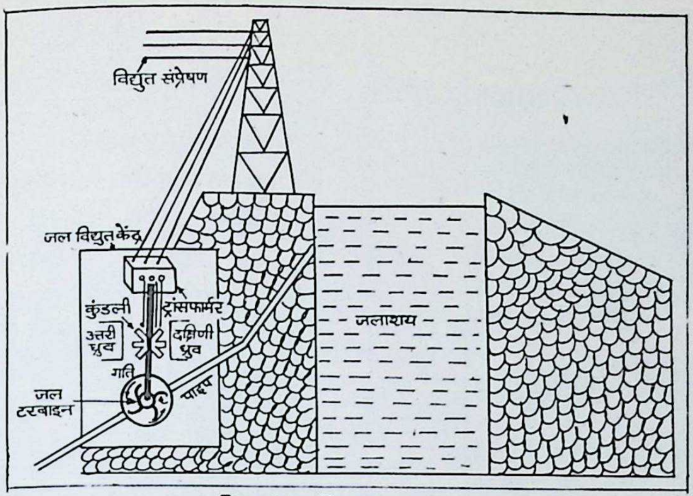

चित्र–3 जल विद्युत बल का उत्पादन

चुम्बकीय क्षेत्र के बीच के कोण की ज्या के मानुपाती होता है. इस प्रकार उत्पन्न विद्युत वाहक बल समय के साथ ज्या वक्र बनाता है.

कुंडली को जल टरबाइन की सहायता से घुमाया जाता है. जल टरबाइन जल की गतिज ऊर्जा से चलती है. चित्र–2 में जल टरबाइन दिखाई गई है. पूरी टरबाइन गति की अवस्था जल प्रवाह के सम्पर्क में होती है. इसके पंखों का आकार इस प्रकार बनाया जाता है कि जल धारा इसके पृष्ठों पर लम्बवत् टकराए. जब जल धारा तीव्र होती है तो टरबाइन की गति 100 चक्र प्रति सेकंड तक हो जाती है. यह कोई सरल कार्य नहीं है क्योंकि टरबाइन विशालकाय एवं बहुत भारी होती है. इसकी ऊंचाई कई मीटर तथा भार कुछ सौ टन तक हो सकता है. टरबाइन का अक्ष कुंडली के अक्ष से जोड़ा जाता है. अतः कुंडली की घूर्णन गति टरबाइन की घूर्णन गति के बराबर होती है. टरबाइन एक बंद प्रकोष्ठ में घूर्णन करती है तथा 300 मेगावाट तक विद्युत पैदा कर सकती है. इसकी क्षमता 95 प्रतिशत तक हो सकती है.

जल विद्युत केंद्र के लिए बांध बनाकर जल का भंडारण किया जाता है. किसी भी विद्युत केंद्र की विद्युत उत्पादन क्षमता इस बात पर निर्भर करती है कि जलाशय में जल की ऊंचाई तथा उसमें जल भंडारण की दर कितनी है. अतः जल विद्युत केंद्र केवल उन्हीं नदियों पर बनाए जाते हैं जिनमें जल प्रवाह की दर अधिक हो तथा इनके बनाने का स्थान वही उपयुक्त होता है जहां नदियां घाटियों में प्रवेश करती हैं. ऐसे स्थानों पर ही ऊंचे–ऊंचे बांध बनाए जा सकते हैं. जलाशय में जल की ऊंचाई इसलिए बढ़ानी पड़ती है कि जल की स्थितिज ऊर्जा बढ़े. जल की स्थितिज ऊर्जा, द्रव्यमान × गुरुत्वीय त्वरण × जल की ऊंचाई के बराबर होती है. यहां द्रव्यमान से तात्पर्य उस जल से है जो प्रति सेकंड कृत्रिम जलाशय से बाहर आता है. जलाशय से बाहर आने पर जल में गतिज ऊर्जा होती है जो उसे पूर्व में संचित स्थितिज ऊर्जा से प्राप्त होती है.

कोई जल विद्युत केंद्र कितनी विद्युत पैदा कर सकता है; यहां हम इसका विवेचन करेंगे. मान लीजिए जलाशय में जल की ऊंचाई h तथा गुरुत्वीय त्वरण g है तब जलाशय से बाहर निकलने पर (h ऊंचाई से गिरने पर) जल का वेग $2gh$ होगा. यदि $h = 180$ मीटर और $g = 10$ मीटर/सेकंड लिया जाए तो जल का वेग 60 मीटर/सेकंड होगा. अब मान लीजिए जल धारा किसी ऐसे पाइप से बाहर निकल रही है जिसका अनुप्रस्थ काट का क्षेत्रफल 1 वर्गमीटर है. तब प्रति सेकंड बाहर निकलने वाले जल की मात्रा M, वेग × क्षेत्रफल × घनत्व के सूत्र से $60 \times 1 \times 10^3$ अर्थात 6×10^4 किलोग्राम होगी. इस जल की ऊर्जा होगी $6 \times 10^4 \times 10 \times 180$ अर्थात लगभग 100 मेगा जूल. चूंकि यह ऊर्जा एक सेकंड में प्राप्त होती है अतः जल विद्युत केंद्र की शक्ति 100 मेगावाट होगी.

सारणी–1 में संसार के कुछ प्रमुख जल विद्युत केंद्रों की विद्युत शक्ति दी गई है. इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि जलाशय में जल भंडारण की दर व जल की ऊंचाई कितनी होगी. चित्र–3 में दिखाया गया है कि किस प्रकार जल को पाइप द्वारा ऊंचाई से लाकर विद्युत केंद्र में टरबाइन तक पहुंचाया जाता है. टरबाइन के साथ चुम्बकीय क्षेत्र में कुंडली के घूमने से विद्युत पैदा होती है जो तीन जीवित तारों की व्यवस्था द्वारा सुदूर संप्रेषित कर दी जाती है. इस व्यवस्था में चुम्बकीय क्षेत्र में एक साथ तीन कुंडलियां घूर्णन करती हैं. प्रत्येक कुंडली में तारों के दो–दो सिरों में से एक–एक सिरा लेकर जोड़ दिया जाता है बाकी तीन सिरों से तीन तारों को बढ़ाकर इच्छानुसार ले जाया जाता है. इन्हें ही जीवित तार कहते हैं. इन्हीं के साथ एक ही जगह जुड़े तीन सिरों के जोड़ से तार जोड़कर आगे बढ़ाया जाता है. इसे उदासीन तार कहते हैं.

चूंकि चुम्बकीय क्षेत्र में तीन कुंडलियों को घूर्णन कराने के बजाए एक घूर्णन गति करते चुम्बक द्वारा कुंडलियों में विद्युत वाहक बल उत्पन्न करना अधिक सुविधाजनक होता है, अतः व्यावहारिक रूप में चुम्बक का ही घूर्णन कराकर विद्युत उत्पन्न की जाती है.

□ श्याम लाल धीमान

विद्युत परिपथ में फ्यूज क्यों उड़ जाता है?

□ हमारे घरों में विद्युत परिपथ धारा की एक निश्चित सीमा के लिए ही बना होता है अर्थात परिपथ के तार अधिक विद्युत धारा के प्रवाह के लिए कार्य नहीं कर सकते हैं. यदि उनमें सीमा से अधिक धारा प्रवाहित होगी तो उनके जलने का खतरा उत्पन्न हो जाता है. विद्युत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिपथ के तार जितने पतले होंगे उतना ही उनके जलने का खतरा अधिक होगा. फ्यूज तार इसी खतरे को रोकने की सुरक्षा युक्ति होती है. यदि धारा का मान एक सीमा से अधिक बढ़ जाए तो यह परिपथ को खंडित कर देती है और धारा प्रवाह रुक जाता है. इससे परिपथ के तारों के जलने का खतरा टल जाता है. परिपथ का खंडन फ्यूज तार के जल जाने से होते है. इसे ही फ्यूज का उड़ना कहते हैं क्योंकि फ्यूज तार की कीमत मामूली होती है अतः उड़े फ्यूज के स्थान पर दूसरा अच्छा फ्यूज उपयोग में ले लिया जाता है. यहं किसी ऐसी धातु से तैयार किया जाता है जिसका गलनांक कम होता है परंतु परिपथ में धारा क्यों बढ़ जाती है जिससे यह सब होता है?

घरों में सभी अधिभार (लोड) समांतर क्रम में लगे होते हैं. ये अधिभार बल्ब, हीटर, पंखा, मिक्सी आदि उपस्करों के रूप में होते हैं. घरों में वोल्टता एक कला तार द्वारा ही विपरीत की जाती है. इस वितरण में एक जीवित तार तथा दूसरा उदासीन तार लिया जाता है. इन्हीं दोनों तारों के बीच विभिन्न विद्युत उपस्कर समांतर क्रम में लगाए जाते हैं (देखें चित्र). चित्र में दिखाया गया विद्युत परिपथ 15 एम्पियर विद्युत धारा के लिए बना है. यदि कला वोल्टता 230 वोल्ट है तो घर में अधिक से अधिक 230 × 15 वाट (वाट = वोल्टता × धारा) अर्थात 3450 वाट के उपस्कर एक साथ उपयोग में लाए जा सकते हैं. इस प्रकार परिपथ में 100 वाट का एक बल्ब, 850 वाट का एक कॉफी बनाने की मशीन, 1000 वाट का टोस्टर तथा 1500 वाट का एक हीटर साथ-साथ उपयोग में लाए जा सकते हैं. क्योंकि इनकी कुल वाटता $(100 + 850 + 1000 + 1500) = 3450$ वाट ही होती है परंतु यदि इनके अतिरिक्त परिपथ में 40 वाट का एक बल्ब और उपयोग में लाया जाए तो परिपथ में अधिभार सीमा से अधिक बढ़ जाएगा और परिपथ में 15 एम्पियर से अधिक धारा बहने लगेगी जिससे फ्यूज तार गर्म होकर पिघलेगा और परिपथ खंडित हो जाएगा. आइए इसे परिकलन द्वारा समझ लें:

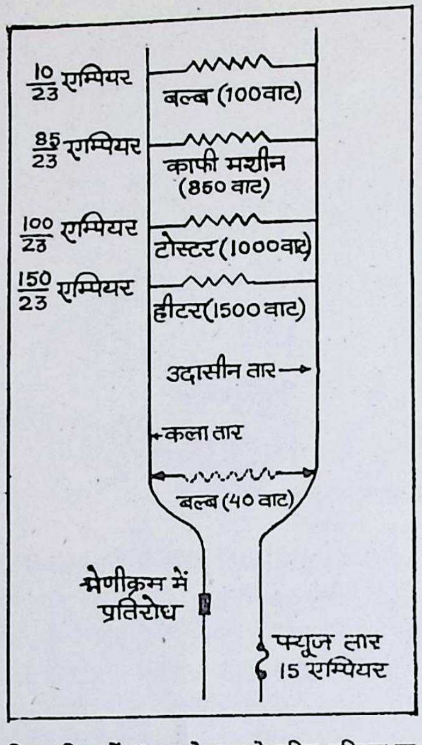

चित्र. परिपथ में 40 वाट के बल्ब से अधिक अधिभार का होना

परिपथ के उपस्करों में धारा निम्न प्रकार होगी:

100 वाट के बल्ब में 10/23 एम्पियर;
850 वाट के कॉफी बनाने की मशीन 85/23 एम्पियर;
1000 वाट के टोस्टर में 100/23 एम्पियर; और
1500 वाट के हीटर में 150/23 एम्पियर.

इस प्रकार, परिपथ में प्रवाहित कुल धारा 10 + 85 + 100 + 150/23 अर्थात 15 एम्पियर होगी. अब यदि 40 वाट का बल्ब परिपथ में और जोड़ दिया जाए तो उसमें प्रवाहित धारा 4/23 एम्पियर होगी. इस प्रकार, परिपथ में कुल 15 4/23 एम्पियर की धारा प्रवाहित होगी. फ्यूज तार के अभाव में पूरा परिपथ जल सकता है. क्योंकि वह केवल 15 एम्पियर की धारा के लिए ही बना है. इससे अधिक धारा के लिए नहीं. प्रायः घरों में फ्यूज तार के स्थान पर हम तांबे का तार लगा देते हैं. चूंकि यह अधिक धारा का वहन कर लेता है. अतः परिपथ में कभी भी सीमा से अधिक धारा बह सकती है और इसलिए दुर्घटना से आग भी लग सकती है. सूत्र : 'ऊष्मा = $(\text{धारा})^2$ × प्रतिरोध × समय' से स्पष्ट है कि धारा के थोड़ा भी अधिक होने से ऊष्मा उसके वर्ग के (धारा) अनुपात में अधिक उत्पन्न होती है.

यहां प्रसंगवश यह भी विचार कर लिया जाए कि परिपथ में अधिक वाट का अधिभार लगा देने से वोल्टता कम क्यों हो जाती है? ऐसा परिपथ में उपस्थित (श्रेणीक्रम में) प्रतिरोध के कारण होता है. यह प्रतिरोध परिपथ के तारों तथा मीटर के कारण होता है. यदि यह प्रतिरोध 5 ओह्म भी है (जो कि अधिक नहीं है) तो उपरोक्त उदाहरण के अनुसार परिपथ के श्रेणीक्रम में उपस्थित इस प्रतिरोध के सिरों के बीच 15 × 5 = 75 वोल्ट ही विभवांतर पैदा हो जाएगा जिसके फलस्वरूप वोल्टता 23 वोल्ट से गिरकर 230−75 = 155 वोल्ट ही रह जाएगी. परिपथ में जितनी अधिक धारा बहेगी और जितना अधिक परिपथ के श्रेणीक्रम में प्रतिरोध उपस्थित होगा, उतनी ही अधिक परिपथ की वोल्टता गिरेगी.

□ **श्याम लाल धीमान**

विद्युत का संप्रेषण

□ विद्युत केंद्रों में विद्युत उत्पादन के बाद उसके संप्रेषण में कठिनाइयां पेश आती हैं. जब विद्युत को सुदूर संप्रेषित किया जाता है तो यह आवश्यक हो जाता है कि संवाहक तारों में ऊर्जा का ह्रास कम से कम हो. एक निश्चित मान की विद्युत शक्ति को सूत्र : 'शक्ति = धारा × वोल्टता' के अनुसार दो प्रकार से संप्रेषित किया जा सकता है—धारा के कम मान पर अधिक वोल्टता द्वारा अथवा वोल्टता के कम मान पर अधिक धारा द्वारा. परंतु यदि तारों में विद्युत द्वितीय स्थिति के अनुसार संप्रेषित की जाए तो सूत्र : 'ऊष्मा = धारा का वर्ग × प्रतिरोध' से ऊष्मा अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न होती है. यह ऊष्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवाहक तारों द्वारा व्यर्थ ही वायुमंडल में चली जाती है. अतः विद्युत के संप्रेषण में अब यह आवश्यक हो जाता है कि उसे कम से कम धारा के मान पर संप्रेषित किया जाए. इसके लिए विद्युत को अधिक वोल्टता पर संप्रेषित करना होगा.

यहां एक बात ध्यान रखने की है कि हम इच्छानुसार वोल्टता नहीं बढ़ा सकते. क्योंकि अति उच्च विभवान्तर अथवा वोल्टता पर तारों के बीच प्रतिरोधकता समाप्त हो जाती है और उनके बीच स्फुलिंग होने लगता है. अतः दो तारों के बीच विभवान्तर को भी एक सीमा तक ही बढ़ाया जा सकता है. वैसे तारों के बीच दूरी बढ़ाने से प्रतिरोधकता बढ़ती है.

वायु में एक सेंटीमीटर दूर दो तारों के बीच 30,000 वोल्ट तक का विभवान्तर दिया जा सकता है. परंतु इस वोल्टता पर तारों के बीच विद्युत स्फुलिंग होने का भय रहता है. अतः यदि तारों के बीच की दूरी 50 सेंटीमीटर रहती है, तो किसी भी दशा में उनके बीच वोल्टता 15 लाख वोल्ट से कम होनी चाहिए. व्यवहार में यह वोल्टता उक्त मान से बहुत कम होती है. ऐसा सुरक्षा को दृष्टिगत रखकर किया जाता है. यदि ऐसा न किया जाए तो तारों के ढीले होने और कोई यान्त्रिक खराबी आने से दो लाइन तारों के बीच की दूरी कम हो जाती है जो लघु परिपथन (शार्ट सर्किट) अथवा विद्युत स्फुलिंग उत्पन्न कर सकती है. इसके कारण तार जल सकते हैं और अपार जन–धन की हानि भी हो सकती है. यही कारण है कि उच्च वोल्टता को बड़ी लाइन (सुपर ग्रिड) और अपेक्षाकृत कम वोल्टता को छोटी लाइन (ग्रिड) द्वारा संप्रेषित किया जाता है. ध्यान रहे कि बड़ी लाइन में तारों को अधिक ऊंचाई तथा अधिक दूरी पर तथा छोटी लाइन में कम ऊंचाई और कम दूरी पर रखा जाता है.

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यदि हमें अधिक विद्युत शक्ति संप्रेषित करनी हो तो वोल्टता की सीमा के अंदर धारा अधिक हो जाती है जो अवश्यम्भावी है. सुपर ग्रिड में 4 लाख वोल्ट पर यह धारा 2500 एम्पियर तक हो जाती है. इससे तार की प्रति किलोमीटर लंबाई में 2 लाख वाट ऊर्जा का ह्रास होता है. यदि विद्युत शक्ति का संप्रेषण 100 किलोमीटर तक किया जाए तो ऊर्जा का यह ह्रास उत्पादित ऊर्जा का 2 प्रतिशत तक हो जाता है. आइए अब हम यह देखें कि विद्युत–संप्रेषण होता किस प्रकार है.

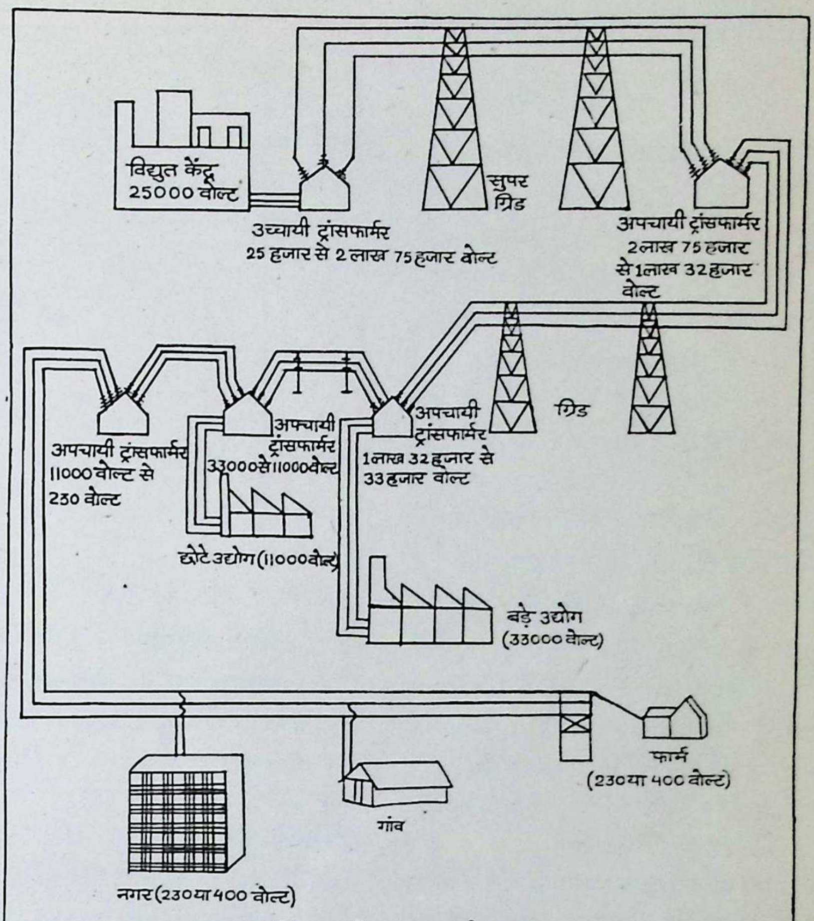

चित्र – विद्युत का संप्रेषण

चित्र में दिखाया गया है कि कोई विद्युत केंद्र 25,000 वोल्ट पर विद्युत उत्पादित करता है. संप्रेषण के लिए इस वोल्टता को उच्चायी ट्रांसफार्मर द्वारा बढ़ाकर 2 लाख 75 हजार वोल्ट (अथवा 4 लाख वोल्ट) तक कर दिया जाता है. तब यह विद्युत बड़ी लाइन द्वारा संप्रेषित कर दी जाती है. फिर अपचायी ट्रांसफार्मर द्वारा इस विद्युत को 2 लाख 75 हजार वोल्ट (अथवा 4 लाख वोल्ट) से एक लाख 32 हजार वोल्ट तक लाया जाता है. अब एक दूसरे अपचायी ट्रांसफार्मर द्वारा इस वोल्टता को भी 33 हजार वोल्ट तक गिरा दिया जाता है. इस वोल्टता पर यह बड़े उद्योगों में उपभोग के लिए संप्रेषित कर दी जाती है. इसी वोल्टता पर यह विद्युत खम्भों द्वारा आगे ले जाई जाती है. तीसरे अपचायी ट्रांसफार्मर द्वारा इस वोल्टता को 11 हजार वोल्ट तक कम कर दिया जाता है. अब यह विद्युत छोटे उद्योगों में प्रयुक्त की जा सकती है. इसे 11 हजार की वोल्टता पर विद्युत को चौथे अपचायी ट्रांसफार्मर को संप्रेषित कर दिया जाता है. जहां यह 230 वोल्ट तक कम कर दी जाती है. वोल्टता को ट्रांसफार्मर द्वारा गिराने का यह अंतिम चरण होता है. इस वोल्टता पर विद्युत को उपभोग के लिए नगरों, गांवों और कृषि फार्मों को संप्रेषित कर दिया जाता है.

☐ श्याम लाल धीमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो जीवित तारों के बीच वोल्टता 400 वोल्ट क्यों होती है?

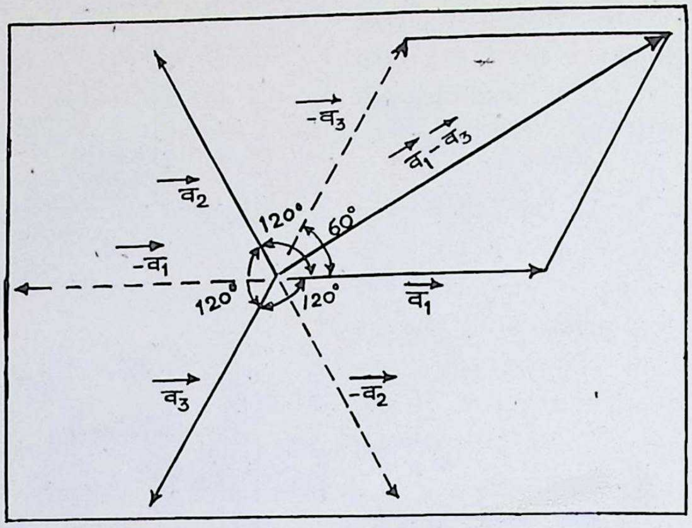

चित्र–2. दो जीवित तारों के बीच वोल्टता ज्ञात करना

☐ सरल धारा परिपथ में लगे दो सैलों अथवा बैटरियों का कुल विद्युत वाहक बल उनके योग (साधारण) या अंतर के बराबर होता है अर्थात हम उनके विद्युत वाहक बलों को सीधे जोड़ अथवा घटा देते हैं. परंतु प्रत्यावर्ती धारा परिपथ के लिए यह बात लागू नहीं होती. हम जानते हैं कि विद्युत सम्प्रेषण में उदासीन तार था किसी भी कला तार के बीच वोल्टता 230 वोल्ट होती है. इसे कला वोल्टता कहते हैं. किन्हीं दो कला तारों (जीवित तार) के बीच की वोल्टता को हम लाइन वोल्टता कहते हैं. यह वोल्टता 400 वोल्ट होती है (चित्र–1). साधारण अनुभव से यह वोल्टता (230 + 230) अर्थात 460 वोल्ट होनी चाहिए. आखिर यह वोल्टता घट क्यों जाती है? आइए इसका पता लगाएं.

वास्तव में यह वोल्टता घटती नहीं है बल्कि यह होती ही है 400 वोल्ट. इसका अर्थ यह हुआ कि हम निश्चय ही प्रत्यावर्ती विद्युत वाहक बलों को सीधे नहीं जोड़ सकते, इन्हें सदिश योग द्वारा जोड़ा जाता है. चित्र–2 में तीनों कला वोल्टता को $\vec{\text{व}}_1$, $\vec{\text{व}}_2$ तथा $\vec{\text{व}}_3$ सदिशों द्वारा व्यक्त किया गया है. इनमें प्रत्येक दो कला वोल्टताओं को निरूपित करने वाले सदिशों के बीच 120° का कलान्तर होता है. सभी सदिशों में प्रत्येक का परिमाण 230 वोल्ट होता है अर्थात $\text{व}_1 = \text{व}_2 = \text{व}_3 = 230$ वोल्ट. यहां व_1, व_2 तथा व_3 क्रमशः $\vec{\text{व}}_1$, $\vec{\text{व}}_2$ तथा $\vec{\text{व}}_3$, सदिशों के परिमाण हैं. चित्र में कला तार–1 (वोल्टता $\vec{\text{व}}_1$) तथा कला तार–3 (वोल्टता $\vec{\text{व}}_3$) के बीच वोल्टता ज्ञात करने की विधि का निरूपण किया गया है. यह वोल्टता सदिश $\vec{\text{व}}_1$, $\vec{\text{व}}_2$ से दिखाई गई है. चूंकि प्रत्यावर्ती धारा परिपथ में किसी बन्दु पर किसी समय वोल्टता संदर्भ बिन्दु या तार की वोल्टता के सापेक्ष होती है अतः हम कह सकते हैं कि वोल्टता $\vec{\text{व}}_1-\vec{\text{व}}_3$, कला तार–3 के सापेक्ष कला तार–1 वोल्टता है. ध्यान रहे चूंकि यहां $\vec{\text{व}}_1$ वोल्टता का परिकलन $\vec{\text{व}}_3$ के सापेक्ष हो रहा है अतः $\vec{\text{व}}_3$ को $\vec{\text{व}}_1$ में से घटाया गया है.

अब चूंकि सदिश $\vec{\text{व}}_1$ और $\vec{\text{व}}_3$ के बीच कोण 120° है और $\vec{\text{व}}_3$ तथा $-\vec{\text{व}}_3$ के बीच कोण 180 हैं, अतः सदिश $\vec{\text{व}}_1$ और $-\vec{\text{व}}_3$ के बीच कोण 60° प्राप्त होता है अब हम सदिशों के समान्तर चतुर्भुज नियम से सदिश $\vec{\text{व}}_1$, $-\vec{\text{व}}_3$ के परिमाण की गणना कर सकते हैं. इसे हम $|\vec{\text{व}}_1-\vec{\text{व}}_3|$ से प्रकट करते है. इस प्रकार :

$$|\vec{\text{व}}_1-\vec{\text{व}}_3| = [\text{व}^2_1 + \text{व}^2_3 + 2\,\text{व}_1\,\text{व}_3 \text{ को ज्या } 60°]^{\frac{1}{2}}$$

$$= [(230)^2 + (230)^2 + 2 \times 230 \times 230 \times \tfrac{1}{2}]^{\frac{1}{2}}$$

$$= 230\sqrt{3}$$

$$\simeq 400 \text{ वोल्ट}$$

यहां स्पष्ट है कि चाहें $\vec{\text{व}}_1$ वोल्टता $\vec{\text{व}}_3$ के सापेक्ष हो अथवा $\vec{\text{व}}_3$ वोल्टता $\vec{\text{व}}_1$ के परिणामी वोल्टता का परिमाण सदैव 400 वोल्ट ही प्राप्त होता है अर्थात $|\vec{\text{व}}_1-\vec{\text{व}}_3| = \vec{\text{व}}_3-\vec{\text{व}}_1$.

उपरोक्त की भान्ति हम $|\vec{\text{व}}_2-\vec{\text{व}}_3$ और $|\vec{\text{व}}_2-\vec{\text{व}}_1$ की गणना कर सकते हैं. इनका मान भी 400 वोल्ट के बराबर ही होगा अतः

चित्र–1. विभिन्न कला तारों के बीच वोल्टता प्रदर्श

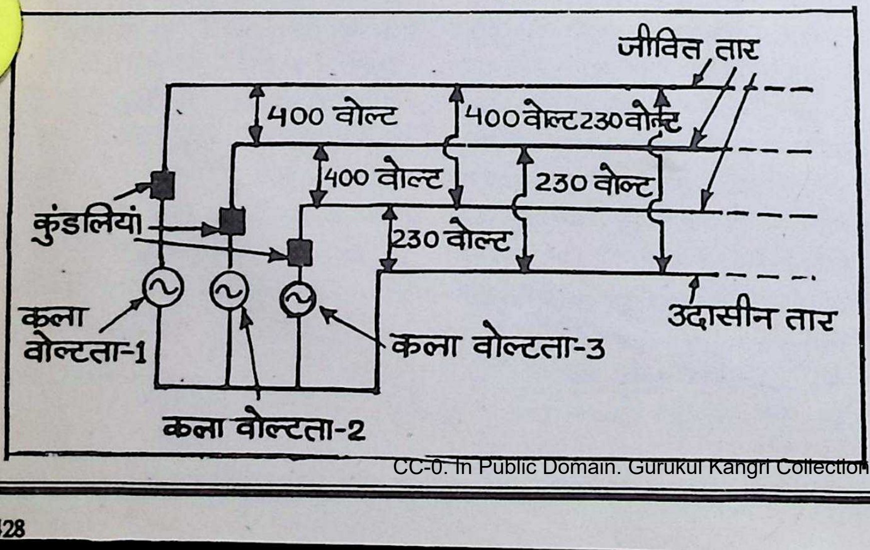

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्कर्ष निकलता है कि किन्हीं भी दो जीवित तारों के बीच वोल्टता सदैव 400 वोल्ट होती है और यह कदापि 460 वोल्ट के बराबर नहीं हो सकती जैसा कि हम साधारण अनुभव से सोचते हैं.

अब आप यह सोचने लगें कि तीनों कला तारों को जोड़कर हम और अधिक वोल्टता प्राप्त कर सकते हैं यहां सापेक्षता की बात लागू नही हो सकती. अतः दो से अधिक कला तारों के बीच वोल्टता उनके सदिश योग के बराबर होगी. इस प्रकार तीन कला तारों की वोल्टता सदिश $\vec{v}_1$ $\vec{v}_2$ तथा $\vec{v}_3$ के योग से प्राप्त होगी. चूंकि सदिश $\vec{v}_1$ $\vec{v}_2$ तथा $\vec{v}_3$ परिमाण और दिशा में किसी समत्रिबाहु त्रिभुज की क्रमागत भुजाओं से निरूपित किए जा सकते हैं. अतः उनका सदिश योग शून्य होगा. यही कारण है कि प्रत्यावर्ती धारा का सम्प्रेषण केवल तीन तारों द्वारा भी संभव होता है. इसमें उदासीन तार (संदर्भ तार) की आवश्यकता नहीं होती.

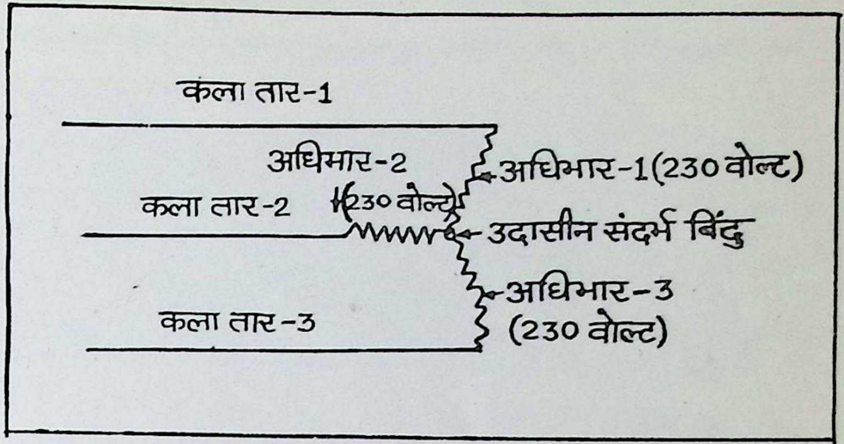

चित्र–3. अधिभार बराबर होने पर उदासीन संदर्भ बिंदु प्राप्त होता है

चूंकि यदि तीनों तारों पर अधिभार बराबर–बराबर हैं तो अधिभारों (लोड) के दूसरे सिरों को एक साथ जोड़कर उदासीन जोड़ विन्दु प्राप्त किया जा सकता है. यही संदर्भ तार (उदासीन) का कार्य करता है. इस व्यवस्था में एक तार से धारा आकर (अधिभार में) बाकी दो तारों से वापस चली जाती है. यही बात तीनों तारों पर समान रूप से लागू होती है (चित्र–3).

□ श्याम लाल धीमान

बिक्री एजेंटों की नियुक्ति
'आविष्कार' और 'ग्राम शिल्प' के लिए

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'आविष्कार' तथा त्रैमासिक पत्रिका 'ग्राम शिल्प' की बिक्री के लिए हर जिले में बिक्री एजेंट नियुक्त करने के लिए पत्र-पत्रिकाएं बेचने वाले एजेंटों से आवेदन पत्र आमंत्रित हैं.

एजेंटों के लिए आकर्षक कमीशन उपलब्ध है. विस्तृत जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

प्रबंध निदेशक

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन

(भारत सरकार का उपक्रम)

20–22, जमरूदपुर सामुदायिक केन्द्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली–110048

ग्राम : 'अनुसंधान विकास' फोन : 6432580

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए

□ श्याम लाल धीमान

वस्तुपरक बहु विकल्पी प्रश्नों की इस कड़ी में भौतिक विज्ञान से संबंधित ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षाओं के स्तर के प्रश्न प्रस्तुत किए गए हैं. सही उत्तर का चुनाव करके उत्तर तालिका से मिलान कीजिए. मूल्यांकन: 26—30 सही—सर्वोत्तम; 20—25 सही—उत्तम; 15—19 सही—अच्छा; 10—14 सही—सामान्य.

1. 1500 डिग्री सेल्सियस से अधिक ताप मापने के लिए अधिक उपयुक्त है:
   (क) ताप युग्म (थर्मोकपली)
   (ख) प्लेटिनम प्रतिरोध तापमापी
   (ग) साधारण तापमापी
   (घ) उत्तापमापी (पायरोमीटर).

2. प्रति इकाई पदार्थ में ताप की समान दशाओं में निम्न में कौन अधिक ऊष्मा रख सकता है:
   (क) एलुमिनियम
   (ख) तांबा
   (ग) लोहा
   (घ) पारा.

3. एक अर्ग कार्य कितने कैलोरी ऊष्मा के तुल्य होता है:
   (क) 2.39×10^{-8} कैलोरी
   (ख) 4.2 कैलोरी
   (ग) 0.239 कैलोरी
   (घ) 10^{-7} कैलोरी.

4. 1 डिग्री केल्विन का ताप मापा जा सकता है:
   (क) प्लेटिनस प्रतिरोध तापमापी से
   (ख) हीलियम वाष्प दाब तापमापी से
   (ग) स्थिर आयतन गैस तापमापी से
   (घ) तापयुग्म से.

5. वाट निम्न में से किसके बराबर होता है:
   (क) धारा × प्रतिरोध
   (ख) प्रतिरोध/धारा
   (ग) धारा × वोल्टता
   (घ) वोल्टता/धारा.

6. प्रतिरोध और संधारित्र युक्त किसी प्रत्यावर्ती धारा परिपथ में धारा कुल वोल्टता से कला में:
   (क) 90 डिग्री आगे होती है
   (ख) आगे होती है
   (ग) पीछे होती है
   (घ) एक ही कला में होती है.

7. श्रेणीक्रम LCR परिपथ की अनुनाद की स्थिति में:
   (क) धारा न्यूनतम होती है
   (ख) वोल्टता अधिकतम होती है
   (ग) धारा अधिकतम होती है
   (घ) धारा और वोल्टता बराबर होती है.

8. एक प्रत्यावर्ती विद्युत वाहक बल जिसकी आवृत्ति 50 है, एक सेकंड में परिवर्तित होगा:
   (क) 50 बार
   (ख) 100 बार
   (ग) 25 बार
   (घ) 75 बार.

9. धारा और वोल्टता एक ही कला में होते हैं:
   (क) प्रतिरोधक परिपथ में
   (ख) संधारित्र युक्त परिपथ में
   (ग) प्रेरकत्व युक्त परिपथ में
   (घ) किसी भी अनुनाद रहित LCR परिपथ में.

10. निम्न में कौन सदिश राशि है:
    (क) धारा
    (ख) विद्युत विभव
    (ग) आवेश घनत्व
    (घ) धारा घनत्व.

11. गोलीय आवेश युक्त खोखले चालक के अंदर विद्युत क्षेत्र:
    (क) शून्य होता है
    (ख) केंद्र से वाहर की ओर बढ़ता जाता है
    (ग) स्थिर रहता है
    (घ) अनंत होता है.

12. दो प्लेटों जिनके बीच की दूरी 5 टीमीटर है, आवेशयुक्त है. यदि उनके बीच 5000 वोल्ट का विभवांतर है तो एक प्लेट से दूसरी प्लेट तक जाने में इलेक्ट्रान की ऊर्जा होगी:
    (क) 1000 ev
    (ख) 25000 ev
    (ग) 250 ev
    (घ) 5000 ev.

13. यदि दो दो हेनरी के तीन प्रेरकत्व समांतर क्रम में लगे हैं तो उनका तुल्य प्रेरकत्व होगा:
    (क) 6 हेनरी
    (ख) 3/2 हेनरी
    (ग) 1 हेनरी
    (घ) 2/3 हेनरी.

14. M द्रव्यमान का एक आवेशयुक्त करना V विभवांतर के अंतर्गत गतिमान है, उसका वेग होगा:
    (क) $2ev^{\frac{1}{2}} m^{\frac{1}{2}}$
    (ख) $\dfrac{2^{\frac{1}{2}} e^{\frac{1}{2}} v^{\frac{1}{2}}}{m^{\frac{1}{2}}}$
    (ग) $2^{\frac{1}{2}} e^{\frac{1}{2}} v^{\frac{1}{2}} m^{\frac{1}{2}}$
    (घ) $\dfrac{2M}{eV}$

15. एक संधारित्र जिसकी प्लेटों के बीच दूरी d और प्लेटों का क्षेत्रफल A है, यदि इनके बीच K परावैद्युतांक का पदार्थ रखा है तो उसकी धारिता होगी:
    (क) $\dfrac{KEoA}{d}$
    (ख) $\dfrac{RA}{Eod}$
    (ग) $\dfrac{EoA}{Rd}$
    (घ) $\dfrac{Eod}{RA}$

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

16. दो समतल दर्पण एक दूसरे से 30 डिग्री के कोण पर झुके हैं. इनसे किसी वस्तु के प्रतिबिंब होंगेः
(क) 12
(ख) 11
(ग) 6
(घ) 5.

17. जल में अघुलनशील कोई द्रव जल में डालने पर कब दिखाई नहीं देगाः
(क) जब वह जल में डूब जाए
(ख) जब वह जल पर तैरता रहे
(ग) जब वे जल में ठीक–ठीक तैरता रहे
(घ) जब उसका अपवर्तनांक जल के अपवर्तनांक के बराबर हो.

18. लाल डाक टिकट नीले प्रकाश में दिखाई पड़ता हैः
(क) हरा
(ख) नीला
(ग) पीला
(घ) काला.

19. नीले रंग का पूरक रंग होगाः
(क) लाल
(ख) हरा
(ग) नारंगी
(घ) पीला.

20. जल में हवा का बुलबुला चमकता हैः
(क) अपवर्तन के कारण
(ख) विवर्तन के कारण
(ग) व्यतिकरण के कारण
(घ) पूर्ण आंतरिक परावर्तन के कारण.

21. दूर दृष्टि दोष वाले व्यक्ति के चश्में में प्रयुक्त होता हैः
(क) उत्तल लैंस
(ख) अवतल लैंस
(ग) उत्तलावतल लैंस
(घ) उपरोक्त में कोई लैंस नहीं.

22. एक्स–रे ट्यूब में कैथोड और एंटी कैथोड के बीच विभवांतर होता है (कठोरतम एक्स–किरणों के लिए):
(क) 10^6 वोल्ट
(ख) 10^5 वोल्ट
(ग) 10^4 वोल्ट
(घ) 100 वोल्ट.

23. इलेक्ट्रोन की उसकी कक्षा में आवृत्ति होती हैः
(क) $2\pi r/v$
(ख) $v/2\pi r$
(ग) v/r
(घ) $2\pi v$.

24. प्रकाश वैद्युत प्रभाव में अधिक ऊर्जा के फोटोन उत्पन्न करते हैं:
(क) अधिक तीव्रता की धारा
(ख) अधिक गतिज ऊर्जा के इलेक्ट्रोन
(ग) कम तीव्रता की धारा
(घ) अधिक ऊर्जा और अधिक तीव्रता की धारा.

25. तीन कलाओं वाली विद्युत आपूर्ति में कला वाले दो जीवित तारों के बीच विभवांतर 400 वोल्ट तथा एक जीवित तार तथा उदासीन तार के बीच विभवांतर 230 वोल्ट होता है. तीनों जीवित तारों को मिलाने पर विभवांतर होता हैः
(क) शून्य
(ख) 630 वोल्ट
(ग) 690 वोल्ट
(घ) 400 वोल्ट.

26. उन परमाणुओं को जिनकी नाभिक में प्रोटोनो की संख्या समान परंतु न्यूट्रानों की संख्या असमान होती है, कहते हैं:
(क) रेडियो सक्रिय
(ख) समभारी
(ग) समस्थानिक
(घ) न्यूट्रिनो.

27. दृश्य प्रकाश की तरंग लंबाई का क्रम होता हैः
(क) 10^{-8} सेंटीमीटर
(ख) 10^{-6} सेंटीमीटर
(ग) 10^{-4} सेंटीमीटर
(घ) 10^{-14} सेंटीमीटर.

28. निम्न में से कौन विद्युत चुंबकीय प्रकृति नहीं रखती हैः
(क) गामा किरणें
(ख) एक्स किरणें
(ग) बीटा किरणें
(घ) अवरक्त किरणें.

29. निम्न में से कौन चुंबकीय अथवा विद्युत क्षेत्र में विक्षेपित नहीं होतीं:
(क) कैथोड किरणें
(ख) एक्स किरणें
(ग) एल्का किरणें
(घ) धनात्मक किरणें.

30. परमाणु में नाभिकीय बल होते हैं:
(क) गुरूत्वीय बल से कम शक्तिशाली
(ख) कूलम्ब बल से कम शक्तिशाली
(ग) कूलम्ब बल से अधिक परंतु गुरूत्वीय बल से कम शक्तिशाली
(घ) सर्वाधिक शक्तिशाली.

उत्तर

1. (घ); 2. (क); 3. (क); 4. (ख); 5. (ग); 6. (ख); 7. (ग); 8. (ख); 9. (क); 10. (घ); 11. (क); 12. (घ); 13. (घ); 14. (ग); 15. (क); 16. (ख); 17. (घ); 18. (घ); 19. (ग); 20. (घ); 21. (क); 22. (क); 23. (ख); 24. (ख); 25. (क); 26. (ग); 27. (ग); 28. (ग); 29. (ख); 30. (घ).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखकों से निवेदन

1. 'आविष्कार' में प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले लेख कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप किए या साफ-साफ लिखे होने चाहिएं. लेख की दो प्रतियां भेजी जानी चाहिएं. साथ में लेखक का पूरा नाम, पता व व्यवसाय का उल्लेख अवश्य होना चाहिए.

2. लेख मौलिक, अप्रकाशित और अप्रसारित होना चाहिए. लेख भेजते समय इस आशय का आश्वासन लेखक के अपने पत्र में होना लेख की स्वीकृति के लिए आवश्यक है.

3. लेख का विषय विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में किसी आविष्कार/विकास/अनुसंधान या खोज कार्य के सार्वजनिक रुचि के किसी भी पहलू से संबंधित हो सकता है.

4. लेख में प्रस्तुत विषय का प्रतिपादन ऐसा होना चाहिए कि उच्चतर माध्यमिक स्तर तक शिक्षित वर्ग उसे आसानी से समझ सके. साधारणतया लेख 2500 शब्दों से अधिक बड़ा नहीं होना चाहिए.

5. लेख सरल, आम बोलचाल की भाषा में लिखा होना चाहिए. लेख में प्रस्तुत अंग्रेजी के वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दों के पर्याय वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित शब्दावलियों के अनुसार होने चाहिएं. साथ में कोष्ठ में अंग्रेजी शब्द अवश्य दिए जाने चाहिएं.

6. लेख में जहां कहीं रासायनिक तत्वों का उल्लेख आता है वहां उनके उन्हीं नामों का उल्लेख किया जाना चाहिए जो आज रसायन विज्ञान में अंतरराष्ट्रीय हो चुके हैं जैसे तांबे के लिए कॉपर और जस्ते के लिए जिंक, सीसे के लिए लेड और आक्सीजन, नाइट्रोजन व हाइड्रोजन आदि. तांबा व सीसा शब्द कोष्ठक में दिए जा सकते हैं.

7. मापों को संक्षिप्त रूप में न लिखकर पूरे रूप में लिखें. जैसे कि० ग्रा० के लिए किलोग्राम, मि० मी० के लिए मिलीमीटर. इससे समझने में आसानी होगी. सभी माप मीट्रिक प्रणाली में दिए जाएं.

8. लेख में वर्णित विषय को बोधगम्य बनाने की दृष्टि से लेख के साथ आवश्यक चित्र/रेखाचित्र संलग्न होने चाहिएं. रेखाचित्र काली स्याही से साफ-साफ बने होने चाहिएं. रेखाचित्रों की दो प्रतियां—एक मूल तथा दूसरी फोटो प्रतिलिपि—हो तो अच्छा है.

9. लेख वरिष्ठ संपादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 को भेजा जाना चाहिए.

10. 'आविष्कार' में प्रकाशित लेखों पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है.

विज्ञान प्रदर्शनी/मेलों में भाग लेने वाली शिक्षण संस्थाएं/विद्यार्थी कृपया ध्यान दें

राष्ट्रीय, राज्य, जिला और क्षेत्रीय स्तरों पर आयोजित विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की विज्ञान प्रदर्शनियों/मेलों में पुरस्कृत मॉडलों, युक्तियों आदि पर 'आविष्कार' में प्रकाशन के लिए विचारार्थ प्रलेख आमंत्रित हैं.

प्रलेख पुरस्कार प्राप्त विद्यार्थी द्वारा स्वयं लिखा होना चाहिए और संबद्ध शिक्षण संस्था के प्राचार्य/प्रधानाचार्य द्वारा अग्रसारित किया जाना चाहिए. साथ में 'पुरस्कार प्रमाण पत्र' की फोटो प्रति भी भेजी जानी चाहिए.

प्रलेख में पुरस्कृत मॉडल, युक्ति आदि को बनाने की संपूर्ण जानकारी का तरतीबवार विवरण होना चाहिएं और यह भी बताया जाना चाहिए कि उक्त माडल, युक्ति आदि को बनाने का विचार विद्यार्थी के मस्तिष्क में कैसे उपजा और उसे बनाने के लिए विद्यार्थी ने तकनीकी जानकारी कैसे जुटाई.

प्रलेख की दो प्रतियां भेजें जो कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप की गई हों अथवा साफ-साफ लिखी हों. चित्र सफेद ड्राइंग कागज पर साफ-साफ बने होने चाहिएं. चित्रों की भी दो प्रतियां भेजें.

जिस लिफाफे में प्रलेख भेजा जाए उसके बाईं ओर मोटे अक्षरों में 'विज्ञान प्रदर्शनी/मेले में पुरस्कृत मॉडल' लिखें.

जिन प्रलेखों को प्रकाशन के लिए स्वीकार किया जाएगा उनकी सूचना संबद्ध शिक्षण संस्था/विद्यार्थी को उपयुक्त समय पर कार्यालय द्वारा स्वयं भेज दी जाएगी. अस्वीकृत रचनाओं के बारे में किसी प्रकार का पत्र व्यवहार नहीं किया जाएगा.

प्रलेख वरिष्ठ सम्पादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 को भेजा जाना चाहिए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविष्कारक . . .

आपका आविष्कार एक बालक के समान है, जिसे चाहिए सुरक्षा और सहारा

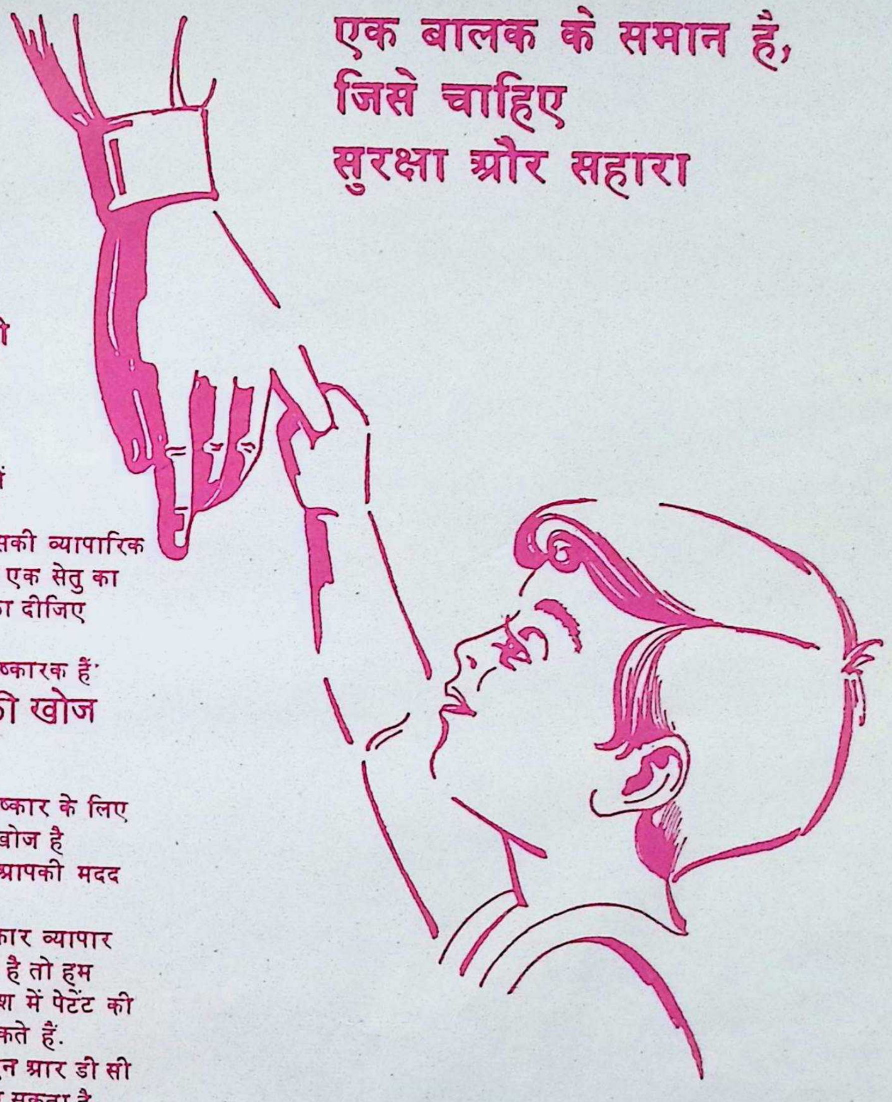

आइए एन आर डी सी के साथ बढ़िए

हमें अपने
विचारों और उद्यमों
उद्यमों व परिणामों
आविष्कार और इसकी व्यापारिक
उपयोगिता के बीच एक सेतु का
काम करने का मौका दीजिए

यदि आप एक आविष्कारक हैं
और अवसर की खोज में हैं,
या फिर अपने आविष्कार के लिए
आपको बाजार की खोज है
तो एन आर डी सी आपकी मदद
कर सकता है.
यदि आपका आविष्कार व्यापार
की संभावना से पूर्ण है तो हम
इसे भारत और विदेश में पेटेंट की
सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं.
आपका आविष्कार एन आर डी सी
का पुरस्कार भी जीत सकता है,
जो साल में दो बार, सराहनीय
आविष्कारों के लिए दिया जाता है.
एन आर डी सी आपके आविष्कार
पर आधारित पायलट संयंत्रों/
प्रोटोटाइपों के विकास के लिए
वित्तीय सहायता भी दे सकता है.
हम आपके आविष्कार के
व्यापारीकरण के लिए उद्यमी की
पहचान कर सकते हैं.

देर न कीजिए आज ही लिखिए !

एन आर डी सी
NRDC

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र
कैलाश कालोनी एक्स्टेंशन
नई दिल्ली-110048
फोन. : 6419945, 6432121, 6432627
टेलीग्राम : अनुसंधान विकास
टेलेक्स–031-71358

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

D(SE)48/90

''भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक के कार्यालय
नई दिल्ली में पंजीकृत, पंजीकरण संख्या : आर०एन० 21740/71''

Punjab Tractors : Scaling new heights in the business world

Punjab Tractors Limited (PTL) is our country's first large-scale venture based on totally Indian engineering and know-how. Commencing production in 1974, PTL and its Swaraj brand have rapidly grown into nationally and internationally known names. PTL is today recognised as a premier, forward-looking, innovative and fast-track engineering enterprise of the country. With gross assets of Rs. 230 million, turnover of the Swaraj enterprise in 1988 was Rs. 2,000 million.

PTL is a multi-company, multi-division enterprise manufacturing a wide range of engineering products to serve agriculture, transport, industry and the consumer

SWARAJ

TOWARDS LEADERSHIP

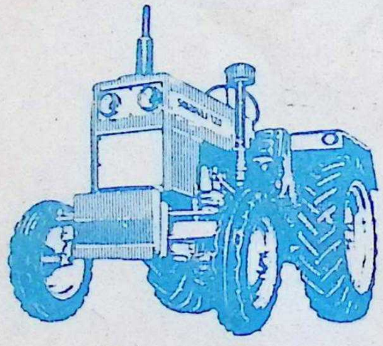
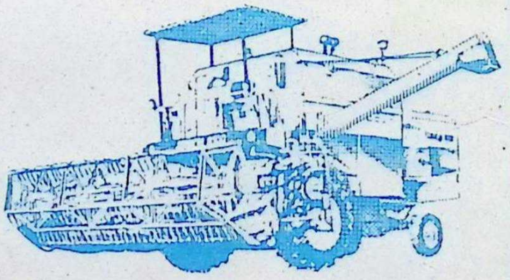
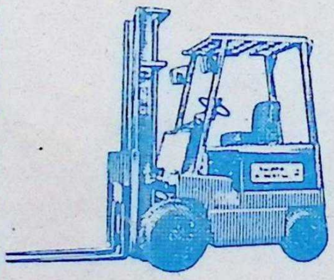
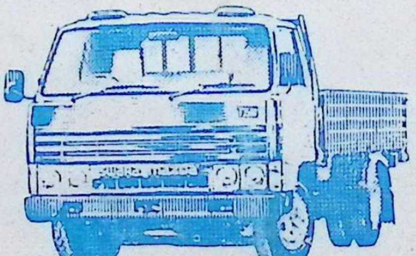
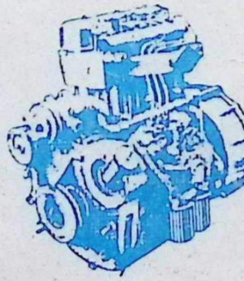

Ideas Inc/PTL/Corp/89/001

Regd. Office **Punjab Tractors Limited,** S.A.S. Nagar - 160 055 (Near Chandigarh).

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, नई दिल्ली के लिए श्री डी०एन० भटनागर द्वारा सम्पादित और प्रकाशित तथा तारा आर्ट प्रेस, बी-4, हंस भवन, बहादरशाह ज़फर मार्ग, नई दिल्ली-110002 में मुद्रित.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ISSN 0970-6607

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविष्कार

जनभाषा में रुचिकर विज्ञान की सशक्त अभिव्यक्ति

दिसम्बर 1990

3 रुपए

ऐसे लड़ेंगे विषाणुओं से हम

स्त्रियों पर एड्स की गहराती छाया

मैजलनः शुक्र की टोह में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी प्रतिक्रियाएं

'आविष्कार' का यह अंक आपको कैसा लगा? किस लेख विशेष ने आपको प्रभावित किया? किस अंक में आपको क्या अखरा? 'आविष्कार' से आपको क्या अपेक्षाएं हैं—ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके बारे में यदि आपके सुझाव मिलते रहें तो 'आविष्कार' को आपकी आशा-अपेक्षाओं के अनुरूप ढालते रहने में हमें मदद मिलेगी. आपकी रचनात्मक टिप्पणियों और विचारों का स्वागत है.

—वरिष्ठ सम्पादक

☐ **'आविष्कार' : उपयोगी पत्रिका :** 'आविष्कार' कुछ समय से मिल रहा है. सितम्बर 1990 का अंक देखकर बहुत सन्तोष हुआ और प्रसन्नता भी कि अब विज्ञान की नई-नई उपलब्धियां/खोजें सामान्य पाठक को हिन्दी में मिल रही हैं. वास्तव में वह विज्ञान निरर्थक है जो साधारण मनुष्य का हित नहीं करता. 'आविष्कार' के लेखों की गुणवत्ता उत्तरोत्तर बढ़ रही है, यदि आप यह जानकारी भी प्राप्त कर सकें कि कितने और किस वर्ग के लोग इस पत्रिका का लाभ उठाते हैं, तो आपको पत्रिका में आवश्यक सामग्री में वृद्धि या कमी करने में सरलता होगी. मेरी समझ में यह पत्रिका प्रत्येक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्रों तथा विज्ञान अध्यापकों द्वारा तो अवश्य पढ़ी जानी चाहिए.

प्रस्तुत अंक में लगभग सभी लेख प्रामाणिक सामग्री के कारण अधिक उपयोगी हो गए हैं. डा० ओम प्रभात अग्रवाल का लेख 'आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर आयुर्वेद' बहुत सी नई जानकारी समेटे हुए है और रोचक भी है. आपके युवा पाठकों के अपने निजी आविष्कार भी अत्यन्त उत्साहवर्धक हैं. मैं आपको पत्रिका की उत्तरोत्तर उन्नति के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएं भेजती हूं. **[कमला रत्नम् 'ईशान' एफ-1/7, हौज खास, नई दिल्ली—110016].**

☐ 'आविष्कार' के सितम्बर 1990 अंक में कैंसर के कारण व समाधान पर अच्छी जानकारी मिली. घर के सदस्यों ने पसन्द किया. इसके अलावा 'हम सुझाएं आप बनाएं' के अन्तर्गत छोटे-छोटे सर्किटों के बारे में जो जानकारी है वह भी सराहनीय है. इस तरह के सर्किट बाजार में अधिक मूल्य होने के कारण खरीद नहीं पाते. उन्हें घर में बनाना हो तो 'आविष्कार' पढ़ें. पत्रिका के पृष्ठ बढ़वाइए ताकि अधिक जानकारी मिल सके. **[रामप्रताप बुडानिया द्वारा श्री काशीराम, दौलतपुरा, श्री गंगानगर—335038].**

☐ मैं ''आविष्कार'' का नियमित पाठक हूं. यह पत्रिका विज्ञान की सर्वोत्तम एवं सशक्त पत्रिका है. मुझे 'आविष्कार मंच' और 'हम सुझाएं आप बनाएं' बहुत ही रोचक लगते हैं. कृपया 'एफ एम रेडियो रिसीवर' बनाने की विधि भी छापें. इस पत्रिका में कोई न कोई इनामी प्रतियोगिता अवश्य होनी चाहिए. मैं आशा करता हूं कि यह पत्रिका दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति करेगी. **[उदय मिश्र, सी—121, कीर्ति नगर, नई दिल्ली—110015].**

☐ नवम्बर 1990 के 'आविष्कार' में आपने 'बिना चोक के फ्यूज ट्यूब लाइट जलाएं' और 'फ्यूज ट्यूब लाइट को पुनः जलाएं' दो युक्तियां बतलाईं जो लाभप्रद रहीं. मैने एक का सर्किट बना लिया है जो अभी तक ठीक कार्य कर रहा है. कृपया 'प्रश्न मंच' स्तंभ भी शुरु करें. **[मुकेश कुमार यादव, फ्लैट-25, बार्ड-22 सिरोधन, बुलन्दशहर—203205].**

☐ एक लम्बे इंतजार के बाद सितम्बर 1990 का अंक मिला जो स्वयं में सागर समाए हुए था. वस्तुतः पत्रिका का हर अंक संग्रहणीय व विज्ञान की अनूठी देन से परिपूर्ण होता है.

'आविष्कार मंच' के जरिए 'मच्छरनाशी इलेक्ट्रोनिक हॉट प्लेट' बनाने का तरीका बताया गया जो काफी सरल एवं उपयोगी है तथा इसे कोई भी बना सकता है. मैने घर के फालतू सामान की सहायता से इसे बना लिया है जबकि इसका बाजार में मूल्य 60-100 रुपए तक है. **[मो० रईसुर सुपुत्र श्री ए० रहमान, पुरानी रांची चौक, रांची—834001].**

☐ यद्यपि मैं कॉमर्स का छात्र हूं फिर भी यह पत्रिका जब तक नहीं मिल जाती इसके आने का इंतजार बड़ी बेसब्री से रहता है. नवम्बर 1990 का अंक प्राप्त हुआ. 'कैंसर की चपेट में फंसता भारत' लेख बहुत अच्छा लगा. इस लेख को पढ़कर ऐसा अनुभव होता है कि मनुष्य यह तथ्य जानते हुए भी कि तम्बाकू से मुंह में कैंसर की संभावनाएं बढ़ जाती हैं, अपने स्वास्थ्य के प्रति सचेत नहीं है. कृपया 'पत्र मित्रता स्तम्भ' शुरु करें. **[राम सागर विश्वकर्मा, एल आई जी 1326, आवास विकास कालोनी, योजना संख्या-3 पनकी रोड, कल्यानपुर, कानपुर—208018].**

☐ सितम्बर 1990 का अंक मिला. पढ़कर प्रसन्नता हुई कि आप इतनी छोटी सी पत्रिका में इतना ज्ञान का सागर भर देते हैं कि किसी अन्य विज्ञान की पत्रिका को छूने का मन भी नहीं करता है. इस अंक में प्रकाशित 'इलेक्ट्रोनिक फेन रेगुलेटर' बनाने में सफलता नहीं मिली है. कोई पाठक सहायता करे. **[रजनीश कुमार आमेटा, सुपुत्र श्री कैलाश चन्द्र आमेटा, 31 शास्त्री नगर, उदयपुर—313001].**

☐ **'आविष्कार' से आविष्कार करने की भावना जागती है :** मैने 'आविष्कार' को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'विज्ञान का अध्यापक माना है क्योंकि जब मैं इसे पढ़ता हूं. मेरे मन में भी आविष्कार करने की भावना जाग उठती है. 'फ्यूज ट्यूब लाइट' जलाई है, और ''मिनी ट्रांसमीटर, छोटा ट्रांजिस्टर, नींबू से बिजली, सड़ी-गली पत्तियों से बिजली, पेड़ पौधों से बिजली, नाचती हुई रोशनी, बैटरी ऐलिमिनेटर, स्पर्श ध्वनित्र, बिना बिजली चलने वाला रेडियो, इलेक्ट्रोनिक संगीत युक्ति'' आदि युक्तियां बनाई हैं. ये सब बहुत अच्छी तरह काम कर रही हैं. मेरे घर वाले, आस-पास के लोग एवं मेरे मित्र भी मुझ से बहुत खुश हैं. मैं 'आविष्कार' हर माह पढ़ता हूं और मेरे आस-पास के लोग, घर वाले एवं मेरे मित्र भी मेरे यहां से 'आविष्कार' ले जाकर पढ़ते हैं.

मुझे सितम्बर, 1990 के अंक में 'लेसर किरणों से कैंसर का इलाज', 'कैंसर कब तक बना रहेगा मृत्यु का पर्याय', 'ऊर्जा संरक्षण के कुछ महत्वपूर्ण पहलू' तथा 'चिकित्सा जगत में नए आविष्कार' अति ज्ञान वर्धक लगे. मैं अपने अनुभव के आधार पर लिख रहा हूं कि यदि विज्ञान के विद्यार्थी नियमित रुप से हर माह 'आविष्कार' पढ़ते रहें तो विज्ञान की परीक्षा में अच्छे अंकों से सफल हो सकते हैं. आपने 'खेल-खेल में विज्ञान' प्रकाशित करके छोटे-छोटे बच्चों को भी विज्ञान से परिचित कराया है. मुझे यह अत्यधिक पसन्द है.

इस पत्रिका में 'इनामी प्रतियोगिता' एवं 'प्रश्न मंच' की कमी बहुत खलती है. एक और कमी है गणित की सामग्री का अभाव. [**राकेश कुमार गुप्ता और साथ ही सर्वश्री कन्हैयालाल गुप्ता, महेश चन्द्र गुप्ता, श्री राम शिरोमणि गुप्ता, राजेश कुमार गुप्ता, श्री पट्टू प्रसाद गुप्ता, चन्द्रभान गुप्ता, सत्यभान गुप्ता, जय प्रकाश गुप्ता, उमा शंकर गुप्ता, बरहूपुर पट्टी, प्रताप गढ़ (उ० प्र०)**].

☐ **इक्कीसवीं सदी में प्लास्टिक** : अक्तूबर 1990 में छपा यह लेख बहुत रोचक लगा. इससे प्लास्टिक उत्पादन एवं खपत के बारे में जानकारी मिली. इस बार 'हम सुझाएं आप बनाएं' एवं 'खेल-खेल में विज्ञान' स्तंभों का न होना बहुत खला. किंतु इसकी कमी 'व्योमविहार' ने पूरी कर दी. कृपया कॉल बेल बनाने का कोई आसान सा तरीका बताएं. [**राकेश यादव, बांक, मुंगेर (बिहार)**].

☐ **कैंसर कब तक बना रहेगा मृत्यु का पर्याय** : सितम्बर 1990 की पत्रिका में 'कैंसरः कब तक बना रहेगा मृत्यु का पर्याय', 'चिकित्सा जगत में नए आविष्कार' तथा 'आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर आयुर्वेद' लेख बहुत अच्छे लगे. लेखकों को बधाई.

'अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए' के अंतर्गत 30 के बजाए 50 बहु विकल्पी प्रश्न दिया करें. [**ओमप्रकाश प्रजापति, प्रजापति छात्रावास, ग्वालियर–474002 (म० प्र०)**].

☐ **कुछ सुझाव** : मैं 'आविष्कार' का तीन साल पुराना पाठक हूं. 'हम सुझाएं आप बनाएं' स्तम्भ के लिए मैं कुछ सुझाव दे रहा हूं. मुझे विश्वास है ये उपयोगी होंगेः

1. इस स्तंभ में जो भी युक्ति प्रकाशित करें वह मौलिक हो अर्थात् बाजार में उपलब्ध न हो क्योंकि अक्सर होता यह है कि किसी युक्ति विशेष को बनाने में जितना खर्चा आता है उससे कम पैसों में बनी बनाई मिल जाती है.
2. यदि संभव हो युक्ति का विस्तारपूर्वक कार्य सिद्धान्त भी दें क्योंकि किसी युक्ति को यंत्रवत् बना लेने मात्र से पाठकों का वैज्ञानिक ज्ञान विकसित नहीं होगा.
3. एक उप स्तंभ शुरु किया जाए जिसमें विभिन्न प्रकार के डायोडों, ट्रांजिस्टरों, एकीकृत परिपथों आदि के बारे में विस्तार से समझाया जाए यथा नामकरण, उपयोग तथा विभिन्न ट्रांजिस्टरों एवं डायोडों आदि की समतुल्यता.
4. प्रत्येक अंक में किसी 'वैज्ञानिक उपकरण' की कार्य विधि बताएं. [**जितेन्द्र कुमार बंसल, ब्राह्मण बैराड़ा वाया सिकन्दरा–303326**].

—आपके सभी सुझाव बहुत अच्छे, सामयिक और व्यवहार में लाए जाने योग्य हैं. इन्हें यथासंभव अमल में लाने का प्रयास किया जाएगा.

—वरिष्ठ संपादक

☐ **खेल-खेल में विज्ञान** : सितम्बर 1990 अंक पढ़ कर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हुआ. बच्चों का स्तम्भ 'खेल-खेल में विज्ञान' ने पत्रिका में चार चांद लगा दिए हैं. अब पत्रिका बच्चों में भी बहुत लोकप्रिय हो रही है, पत्रिका का अब मुझे ही नहीं मेरे परिवार के छोटे भाई-बहनों को भी इन्तजार रहता है. वे इन तमाशों में बड़ी दिलचस्पी लेते हैं.

कृपया कोई आगामी अंक 'इलेक्ट्रोनिक्स विशेषांक' के रुप में निकालें. पाठक उसका अभूतपूर्व स्वागत करेंगे.

इस अंक में प्रकाशित 'आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर आयुर्वेद' बेहद उपयोगी और ज्ञानवर्धक लगा. समाज के 'कमजोर वर्गों के लिए परियोजनाएं' लेख देकर आपने उनको विकास की एक किरण दिखाई है. 'रुम कूलर के लिए आर्द्रता नियंत्रक', और 'कैंसर होता है बिजली के तारों से', 'लेसर किरणों से कैंसर का इलाज' विशेष उल्लेखनीय रहे. [**सुभाषचन्द्र पाण्डेय, पाण्डेय लेन (रवीन्द्र नगर), पो० खरिका, लखनऊ–226002 (उ० प्र०)**].

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एन.आर.डी.सी
NRDC

आविष्कार

दिसम्बर 1990 वर्ष 20 अंक 12

प्रबंध निदेशक
एन० के० शर्मा
प्रमुख (आई० पी० पी० एवं ई०)
एम० पी० भटनागर

वरिष्ठ सम्पादक
डी० एन० भटनागर
सम्पादन सहायक
राघवेन्द्र कुमार शर्मा
आर० के० अन्थवाल

उत्पादन अधिकारी
चन्द्र मोहन
मुद्रण कार्य सहायक
राधे श्याम अरोड़ा
अरुण कुमार अरोड़ा

व्यवसायिक चित्रकार
के० के० थपलियाल
वरिष्ठ चित्रकार
नबनीता भौमिक

विज्ञापन प्रतिनिधि
रमा रानी त्रिपाठी

■'आविष्कार' नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (एन आर डी सी) द्वारा प्रकाशित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की लोकप्रिय मासिक पत्रिका है.

■लेखकों के कथनों व मतों के लिए कारपोरेशन उत्तरदायी नहीं है.

■'आविष्कार' में प्रकाशित सामग्री का किसी भी रुप में उपयोग करने से पूर्व सम्पादक की अनुमति लेना जरुरी है.

एक प्रति : 3 रुपए
वार्षिक मूल्य : 30 रुपए

फोन : 6432580, 6419929, 6419945, 6419947
टेलेक्स : 031-71358
टेलीग्राम : 'अनुसंधान विकास'

इस अंक में

457 स्त्रियों पर एड्स की गहराती छाया
—डा० विजय कुमार श्रीवास्तव

463 ऐसे लड़ेंगे विषाणुओं से हम
—डा० जगदीप सक्सेना

469 कैंसर : असाध्यता का सिमटता दायरा
—डा० अचल गर्ग

474 जैवीय पदार्थों से काल-निर्धारण
—डा० विजय कुमार उपाध्याय

476 मैजलन : शुक्र की टोह में
—प्रमोद पाण्डे

433 आपकी प्रतिक्रियाएं

437 अपनी बात

440 व्योमविहार

443 आविष्कार मंच : बाक्स कैमरे से अधिक चित्र कैसे खींचे. प्रिज्म के बिना इन्द्रधनुष बनाना.

445 समाचारिकी : क्या मानव अंग उगाने की क्षमता पुनः हासिल कर सकेगा. मधुमेह के रोगियों के लिए मीठी डबलरोटी बनाने की उन्नत विधि. प्रकाश संश्लेषक कृत्रिम अणु. बधिरों के लिए उपयोगी कुछ नई युक्तियां. आंखों से भी कर सकते हैं टाइप. विकलांगों के लिए विशेष कंप्यूटर. दुकानों के लिए कांच के आकर्षक पैनल.

447 संक्षिप्तियां

448 विज्ञान के विविध आयाम : अंग प्रतिरोपण पर मिला है 1990 का चिकित्सा-विज्ञान नोबेल. विश्व एड्स दिवस 1990: स्त्रियां और एड्स. जल्द ढाएगा कहर रग-रग में रेंगता एड्स का जहर. दुनिया के देशों में दस्तक दे रही तीसरी महामारी-एड्स. कैंसर की जीन-चिकित्सा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर. गुप्ता कृत लाभदायक पुस्तकें

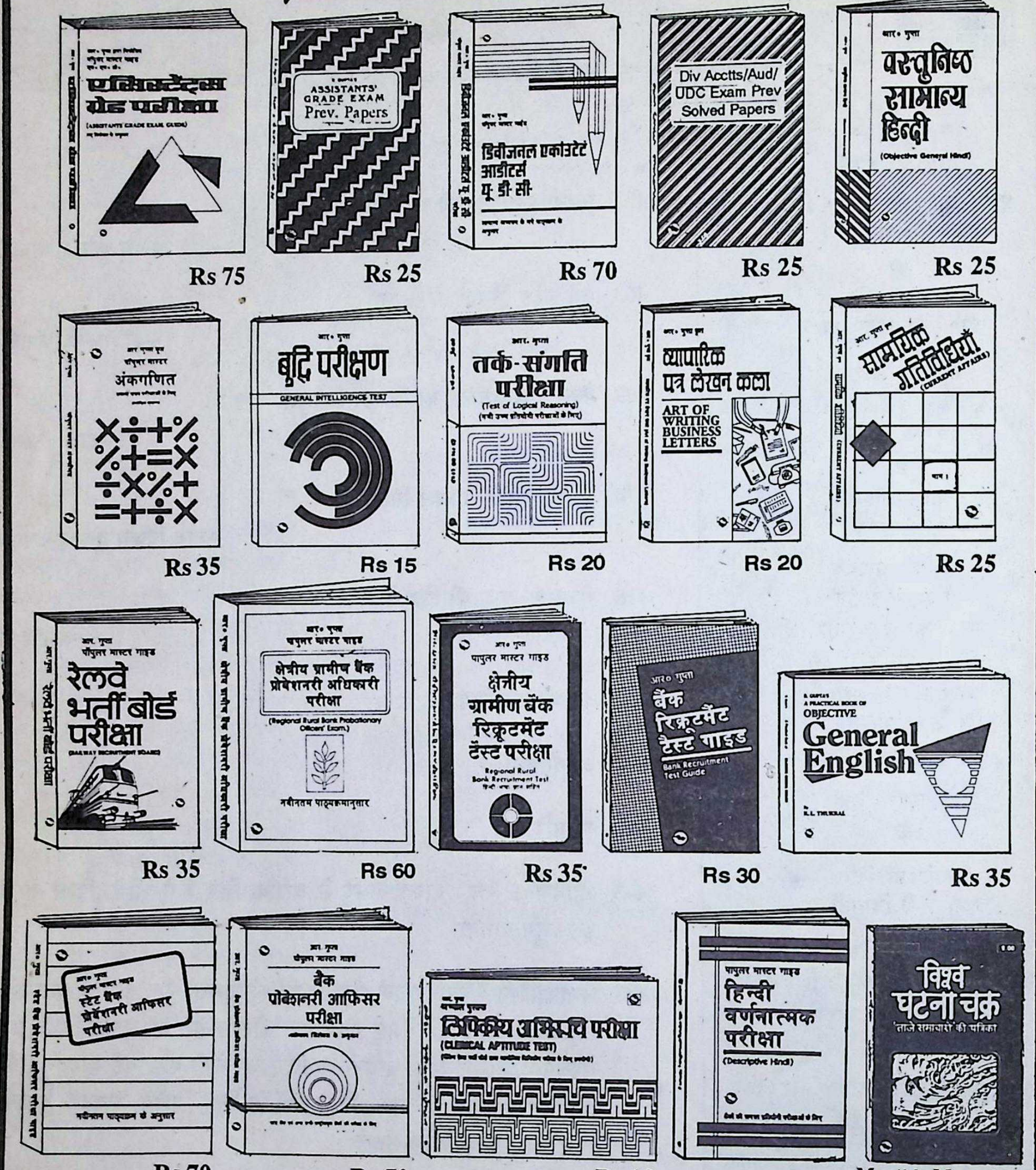

वी पी पी द्वारा पुस्तकें मंगाने के लिए 15 रु. का अग्रिम मनीआर्डर भेजें :

रमेश पब्लिशिंग हाउस

4457, नई सड़क, दिल्ली-6

'विश्व घटना चक्र' की नमूना प्रति मंगाने के लिए कृपया 3 रु. का मनीआर्डर भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

विश्व एड्स दिवस

☐ पहली दिसम्बर को विश्व एड्स दिवस था और विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्त्रियों पर एड्स के दुष्प्रभाव पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए इसका विषय 'स्त्रियां और एड्स' रखा.

यद्यपि इस समय एड्स का सबसे अधिक प्रकोप अमेरिका और अफ्रीका में बताया जा रहा है भारतीय चिकित्सक एड्स के भारत में फूट पड़ने की संभावना से आतंकित हैं और उनकी यह आशंका निराधार भी नहीं लगती. हमारे चार बड़े शहरों दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता और मद्रास से पहले ही एड्स के रोगियों की रिपोर्ट मिल रही हैं, मणीपुर तथा नगालैंड में भी इसके रोगी पाए गए हैं और स्थिति को विस्फोटक कहा जा रहा है. आंध्र प्रदेश में मंदिर का शहर तिरुपति भी इसके दंश से प्रभावित है. एड्स फैलाने वाले ह्यूमन इम्यूनो डेफिशिएंसी वायरस से संक्रमित रोगियों की संख्या को वास्तविक एड्स रोगियों की संख्या के साथ जोड़ कर गिना जाए तो इस समय दुनिया में लगभग 80 लाख से एक करोड़ लोग इस रोग की चपेट में हैं. इनमें लगभग 30 लाख स्त्रियां हैं और सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह संख्या हर वर्ष कई लाखों में बढ़ रही है.

चिकित्सकों के अनुसार जहां हमारे देश में इस रोग का फैलाव बड़े शहरों में विषमलिंगी यौनाचार के कारण हो रहा है, मणीपुर और नगालैंड में यह मुख्यतः नशीली दवाओं के व्यापक सेवन के कारण फैल रहा है. किन्तु इन जगहों और देश के अन्य अधिकांश क्षेत्रों में इसके फैलाव का एक और प्रमुख कारण एड्स विषाणु संक्रमित रक्त बढ़ाया जाना (रक्तदान या ब्लड ट्रांस्फ्यूजन) है.

पिछले वर्ष भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण से पता चला है कि देश में पंजीकृत कुल 610 रक्त बैंकों में से केवल 58 में उन परीक्षणों की व्यवस्था है जिनके आधार पर रक्ताधान से पूर्व रक्त एड्स विषाणु, पीलिया, मलेरिया और यौन रोगों के विषाणु से मुक्त माना जा सकता है. चिकित्सकों के अनुसार अधिकांश रक्त बैंकों में एड्स विषाणु परीक्षण सुविधाएं या तो हैं ही नहीं या फिर संदेहस्पद हैं. ऐसा तब हैं जब भारत में रक्त बैंक साल भर में 10 करोड़ रुपए का टर्नओवर करते हैं, जो शायद दुनिया में सबसे अधिक है.

इस प्रकार एड्स के संक्रमण के प्रमुख स्रोतों का काफी हद तक सही सही पता चल जाने के बाद हमारे समाज का यह पहला दायित्व है कि इन कारणों को तुरंत दूर करने के लिए कारगर कदम तेजी से उठाए जाएं तभी हम देश में इस महामारी के तांडव को समय रहते रोकने में सफल हो पाएंगे. यदि एक बार यह रोग इस देश में जोर पकड़ गया तो इसकी भयानक लीला क्या कहर ढाएगी इसका अंदाजा तक लगाना अभी मुश्किल है. एक ऐसे देश में जहां अभी तक प्राथमिक चिकित्सा सुविधाएं भी आबादी के अधिकांश को मुहैया नहीं हैं एड्स की भयावहता से इलाज द्वारा कितनों को बचा पाना संभव हो पाएगा? शायद इसका इलाज हमें अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति में खोजना होगा, सामाजिक बदलाव लाना होगा, संयम बरतना होगा और उन्मुक्त यौनाचार को बढ़ावा देने वाली प्रवृत्तियों को काबू में करना होगा. दुनिया के अन्य देशों में भी यह सोच पनप रहा है. हमें भी सोचना होगा.

इसी सोच की प्रक्रिया को बढ़ावा देने के लिए 'आविष्कार' में मानव मात्र को आक्रांत करने वाले इस रोग पर चार लेखों की एक लेखमाला 1985 में प्रकाशित की गई थी. इस अंक में भी इस रोग के विभिन्न पहलुओं को उजागर करते कई लेख शामिल किए गए हैं. इनमें आपको भरपूर जानकारी मिलेगी.

अनुसंधान, विकास और पेटेंट

☐ मनुष्य जबसे इस धरती पर जन्मा है तभी से उसने प्रकृति के रहस्यों पर से पर्दा उठाने के सभी सम्भव प्रयास किए हैं. नई चीजें खोजने, बनाने और पहले बनाई गई वस्तुओं में सुधार करने की प्रक्रिया के फलस्वरुप ही मनुष्य समाज सभ्यता और समृद्धि के आधुनिक दौर में प्रवेश कर सका है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भी आविष्कार के आधार पर सार्थक उद्योग लगाने का कोई भी कार्य पेटेंट की प्रक्रिया से गुजरे बगैर सम्भव नहीं. वास्तव में कोई आविष्कार कर लेना उस समग्र प्रक्रिया का केवल अंशमात्र है जो व्यावसायिक स्तर पर सफलता प्राप्त कर लेने के लिए आवश्यक होती है. पेटेंट प्रणाली आविष्कारक को शोषण से सुरक्षा देते हुए आविष्कार की जानकारी उजागर करना संभव करती है. मोटे स्तर पर पेटेंट आविष्कारक को सरकार द्वारा दी जाने वाली एक अधिकार स्वीकृति है जिसके अनुसार पेटेंटी (जिसे पेटेंट दिया जाता है) को अपने आविष्कार को सीमित अवधि के लिए बेचने, उसका उपयोग करने तथा अन्य लोगों द्वारा ऐसा करने के लिए उन्हें प्राधिकृत करने का एक अनन्य विशेषाधिकार दिया जाता है.

हम जानते हैं कि किसी भी देश को भौतिक सुख समृद्धि की राह पर तेजी से आगे बढ़ाने के लिए नए आविष्कारों, नवाचारों और वैज्ञानिक अनुसंधानों से पोषित एक मजबूत प्रौद्योगिक आधार निर्मित करना आवश्यक है. आविष्कार और नवाचार ही प्रौद्योगिकियों को विकसित और परिष्कृत करते हैं. इसलिए यह जरुरी है कि पेटेंट प्रणाली के प्रति देश के आविष्कारकों, वैज्ञानिकों और इंजीनियरों में जागरुकता पैदा की जाए. नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन इस दिशा में अपने प्रयत्न लगातार जारी रखे हुए है.

अपने इन्ही प्रयत्नों के तहत कारपोरेशन ने 'पेटेंट प्रणाली की उपयोगिता' पर 5 से 7 नवम्बर 1990 के दौरान एक कार्यशाला का आयोजन किया जिसमें देश के विभिन्न तकनीकी संस्थानों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया.

कार्यशाला में विकासशील देशों के संदर्भ में नीति निर्धारण के एक आवश्यक तथ्य के रुप में पेटेंट प्रणाली का महत्व बखूबी उभर कर आया. देश की अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक सूचना की उपयोगिता आज असंदिग्ध है. इस संदर्भ में यह ध्यान देने योग्य बात है कि पिछले कुछ वर्षों में दुनिया भर में 40 लाख से भी अधिक प्रकाशन वितरित किए गए. इनमें से 10 लाख से अधिक केवल पेटेंट से संबंधित थे. यही नहीं सूचना का यह भंडार 20,000 पेटेंट प्रलेख प्रति सप्ताह की दर से बढ़ रहा है.

उल्लेखनीय है कि पेटेंट प्रणाली में अपने दृष्टिकोण से फेरबदल करके विकसित देश अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में अपने स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं. उरुग्वे में हो रही 'जनरल एग्रीमेंट आफ ट्रेड एंड टेरिफ' की अन्तरराष्ट्रीय बातचीत के संदर्भ में कुछ समय पूर्व पेटेंट कानूनों पर राष्ट्रीय कार्य दल द्वारा आयोजित राष्ट्रीय कार्यशाला में इस बात पर आम सहमति जाहिर की गई थी कि भारतीय पेटेंट अधिनियम 1970 भारतीय हितों की पूरी तरह रक्षा करने में सक्षम है और इसमें किसी संशोधन की जरुरत नहीं है. यह आशंका भी व्यक्त की गई थी कि उरुग्वे वार्ता में विकसित देश जनरल एग्रीमेंट आन ट्रेड एंड टेरिफ का उपयोग पेटेंट और बौद्धिक सम्पति पर अपना अधिकार बढ़ाने के लिए करना चाहते हैं. भारत ने पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि वह पेटेंट पर ऐसे किसी अनुबंध पर हस्ताक्षर करने के लिए तैयार नहीं है जो पश्चिमी कम्पनियों को देश में मुक्त व्यापार करने की छूट दे दे क्योंकि ऐसा कोई भी कदम देश के प्रौद्योगिक और आर्थिक आत्म निर्भरता के लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक होगा और अन्ततः हमारी राजनैतिक स्वाधीनता को कमजोर करेगा.

इन अंतरराष्ट्रीय दबावों को देखते हुए यह और भी आवश्यक हो गया है कि हमारे देश में अनुसंधान और विकास पर और अधिक ध्यान दिया जाए, आविष्कारशीलता को बढ़ावा मिले और नवाचारक प्रक्रिया में तेजी आए. तभी हमारे अपने पेटेंटों की संख्या बढ़ सकती है. अभी हमारे उद्योग और वैज्ञानिक अपने आविष्कारों को पेटेंट कराने के प्रति उतने उत्साहित नहीं हैं जितने कि होने चाहिएं.

अभी औसतन प्रति वर्ष आविष्कारों—पेटेंटों के लगभग 3000 आवेदन भारतीय अधिकारियों को प्राप्त होते हैं. इनमें से 2000 से अधिक अन्तरराष्ट्रीय कंपनियों और विदेशियों के होते हैं, अन्य 700-750 भारतीय नागरिकों के और केवल 250-300 सरकारी और निजी अनुसंधान संस्थानों के होते हैं. स्पष्ट है कि इन आंकड़ों से इन अनुसंधानशालाओं की अनुसंधानशीलता का पता नहीं चलता. सत्य तो यह है कि देश का द्रुत गति से औद्योगिक विकास सम्भव करने के लिए हमें देश में पेटेंट लेने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना चाहिए.

भारतीय आविष्कारकों को अपने आविष्कारों को पेटेंट कराने के लिए नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन के पेटेंट सहायता कार्यक्रम का अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिए.

डीएन भटनागर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखकों से निवेदन

1. 'आविष्कार' में प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले लेख कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप किए या साफ-साफ लिखे होने चाहिएं. लेख की दो प्रतियां भेजी जानी चाहिएं. साथ में लेखक का पूरा नाम, पता व व्यवसाय का उल्लेख अवश्य होना चाहिए.

2. लेख मौलिक, अप्रकाशित और अप्रसारित होना चाहिए. लेख भेजते समय इस आशय का आश्वासन लेखक के अपने पत्र में होना लेख की स्वीकृति के लिए आवश्यक है.

3. लेख का विषय विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में किसी आविष्कार/विकास/अनुसंधान या खोज कार्य के सार्वजनिक रुचि के किसी भी पहलू से संबंधित हो सकता है.

4. लेख में प्रस्तुत विषय का प्रतिपादन ऐसा होना चाहिए कि उच्चतर माध्यमिक स्तर तक शिक्षित वर्ग उसे आसानी से समझ सके. साधारणतया लेख 2500 शब्दों से अधिक बड़ा नहीं होना चाहिए.

5. लेख सरल, आम बोलचाल की भाषा में लिखा होना चाहिए. लेख में प्रस्तुत अंग्रेजी के वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दों के पर्याय वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित शब्दावलियों के अनुसार होने चाहिएं. साथ में कोष्ठ में अंग्रेजी शब्द अवश्य दिए जाने चाहिएं.

6. लेख में जहां कहीं रासायनिक तत्वों का उल्लेख आता है वहां उनके उन्हीं नामों का उल्लेख किया जाना चाहिए जो आज रसायन विज्ञान में अंतरराष्ट्रीय हो चुके हैं जैसे तांबे के लिए कॉपर और जस्ते के लिए जिंक, सीसे के लिए लेड और आक्सीजन, नाइट्रोजन व हाइड्रोजन आदि. तांबा व सीसा शब्द कोष्ठक में दिए जा सकते हैं.

7. मापों को संक्षिप्त रूप में न लिखकर पूरे रूप में लिखें. जैसे कि० ग्रा० के लिए किलोग्राम, मि० मी० के लिए मिलीमीटर. इससे समझने में आसानी होगी. सभी माप मीट्रिक प्रणाली में दिए जाएं.

8. लेख में वर्णित विषय को बोधगम्य बनाने की दृष्टि से लेख के साथ आवश्यक चित्र/रेखाचित्र संलग्न होने चाहिएं. रेखाचित्र काली स्याही से साफ-साफ बने होने चाहिएं. रेखाचित्रों की दो प्रतियां—एक मूल तथा दूसरी फोटो प्रतिलिपि—हो तो अच्छा है.

9. लेख वरिष्ठ संपादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 को भेजा जाना चाहिए.

10. 'आविष्कार' में प्रकाशित लेखों पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है.

विज्ञान प्रदर्शनी/मेलों में भाग लेने वाली शिक्षण संस्थाएं/विद्यार्थी कृपया ध्यान दें

राष्ट्रीय, राज्य, जिला और क्षेत्रीय स्तरों पर आयोजित विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की विज्ञान प्रदर्शनियों/मेलों में पुरस्कृत मॉडलों, युक्तियों आदि पर 'आविष्कार' में प्रकाशन के लिए विचारार्थ प्रलेख आमंत्रित हैं.

प्रलेख पुरस्कार प्राप्त विद्यार्थी द्वारा स्वयं लिखा होना चाहिए और संबद्ध शिक्षण संस्था के प्राचार्य/प्रधानाचार्य द्वारा अग्रसारित किया जाना चाहिए. साथ में 'पुरस्कार प्रमाण पत्र' की फोटो प्रति भी भेजी जानी चाहिए.

प्रलेख में पुरस्कृत मॉडल, युक्ति आदि को बनाने की संपूर्ण जानकारी का तरतीबवार विवरण होना चाहिए और यह भी बताया जाना चाहिए कि उक्त माडल, युक्ति आदि को बनाने का विचार विद्यार्थी के मस्तिष्क में कैसे उपजा और उसे बनाने के लिए विद्यार्थी ने तकनीकी जानकारी कैसे जुटाई.

प्रलेख की दो प्रतियां भेजें जो कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप की गई हों अथवा साफ-साफ लिखी हों. चित्र सफेद ड्राइंग कागज पर साफ-साफ बने होने चाहिएं. चित्रों की भी दो प्रतियां भेजें.

जिस लिफाफे में प्रलेख भेजा जाए उसके बाईं ओर मोटे अक्षरों में 'विज्ञान प्रदर्शनी/मेले में पुरस्कृत मॉडल' लिखें.

जिन प्रलेखों को प्रकाशन के लिए स्वीकार किया जाएगा उनकी सूचना संबद्ध शिक्षण संस्था/विद्यार्थी को उपयुक्त समय पर कार्यालय द्वारा स्वयं भेज दी जाएगी. अस्वीकृत रचनाओं के बारे में किसी प्रकार का पत्र व्यवहार नहीं किया जाएगा.

प्रलेख वरिष्ठ सम्पादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 को भेजा जाना चाहिए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नक्षत्र तथा शुक्र

□ बोकिया

आविष्कार के इस स्तंभ में हम आपका परिचय नए तारामंडलों से कराते हैं. आप केवल निर्देशों का पालन करते जाएं, आपके सामने खुलता जाएगा तारों, ग्रहों और नक्षत्रों का अनोखा संसार. आपकी प्रतिक्रियाओं का स्वागत है.

□ बुध, शुक्र, शनि, मंगल एवम् गुरु पांच ग्रह इस मास के संध्याकाश की शोभा बढ़ा रहे हैं. इनमें से केवल मंगल मानचित्र की परिधि के अंदर है.

बुध व शुक्र संध्याकाश में सूर्यास्त के आधा घंटा बाद पश्चिमी क्षितिज में देखे जा सकते हैं. बुध को खोजने का सर्वोतम समय प्रथम सप्ताह के अंत का है जब ग्रह की सूर्य से कोणीय दूरी अधिकतम, लगभग 21 अंश होगी. पूरे मास बुध ग्रह धनु राशि के तारों के समक्ष रहेगा तथा अठारह दिसंबर के बाद यह संध्याकाश में ओझल हो जाएगा, महीने के अंत में 29 दिसंबर को यह पुनः प्रकट होगा, परन्तु इस बार उषाकाश में.

शुक्र आरंभ में वृश्चिक राशि तथा बाद में धनुराशि के तारों के समक्ष गतिमान है. दिन प्रतिदिन इसकी संध्याकाश में ऊंचाई बढ़ती जा रही है जिससे इसे देखना सरल हो जाएगा और ग्रह पूरे मास संध्याकाश में दिखाई देगा.

बुध और शुक्र की ही तरह संध्याकाश में स्थित शनि ग्रह भी मानचित्र के उपयोग के समय उसकी परिधि के बाहर है. शनि धनु राशि में मकर की सीमा के समीप स्थित है.

हमारे मानचित्र की परिधि के अंदर है लाल रंग का ग्रह मंगल या मार्स जो वृष राशि के तारों के सामने वक्र गति कर रहा है. सामान्यतः ग्रह तारों के सापेक्ष पश्चिम से पूर्व की ओर गति करते प्रतीत होते हैं. परंतु कभी-कभी ऐसा लगता है मानों उनकी गति की दिशा बदल गई हो. इस अवस्था में आने पर ग्रह कुछ समय के लिए पूर्व से पश्चिम की ओर उल्टी अथवा वक्र गति कर पुनः सामान्य मार्ग पर चल देता है. इस दौरान उसके आभासी पथ में वक्र गति वाला भाग एक छल्ले (या 'लूप') सी आकृति बनाता है. वक्र गति ग्रह की वास्तविक गति नहीं बल्कि संदर्श (या पर्सपैक्टिव) का प्रभाव है जो सूर्य के गिर्द घूमते एक ग्रह को ऐसे स्थान (पृथ्वी) से देखने के कारण उत्पन्न होता है जो स्वयं सूर्य के परितः गति करता हो. उनकी सापेक्ष गतियां और स्थितियां वक्रगति का प्रभाव उत्पन्न करती हैं. मास मध्य के लिए मंगल की स्थिति मानचित्र में प्रदर्शित की गई है, कृतिका तारा-समूह के थोड़ा पूर्व में वृष में.

गुरु (या बृहस्पति) ग्रह भी संध्याकाश में है वह कर्क राशि में है जो मानचित्र के उपयोग के समय (मास मध्य में संध्या सवा आठ बजे) उसकी परिधि के बाहर है. गुरु को रात्रि साढ़े दस बजे के बाद सरलता से पूर्वी क्षितिज पर खोज सकते हैं.

पृथ्वी अपनी कक्षा के शीत-सम्पात बिंदु पर दिनांक 22 दिसंबर को गुजरेगी, उस दिन पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध में दिन की अवधि न्यूनतम होती है और उसके बाद क्रमशः बढ़ने लगती है. इसी के परिणामस्वरुप सूर्य की मध्याह्न के समय आकाश में ऊंचाई भी क्रमशः बढ़ती जाती है. दिन की अवधि बढ़ने तथा सूर्य का प्रकाश दिन पर दिन और अधिक सीधा पड़ने से दिवसकाल में सूर्य से मिलने वाली कुल ऊर्जा की मात्रा बढ़ने लगती है. परंतु फिर भी शीत ऋतु के सर्वाधिक ठंडे दिन दिसंबर के अंतिम सप्ताह के स्थान पर प्रायः फरवरी के दूसरे सप्ताह में आते हैं जबकि तब तक दिन की लंबाई और उत्तरी गोलार्ध में पृथ्वी पर प्रतिदिन पड़ रही सूर्य की गर्मी की मात्रा भी दिसंबर की तुलना में अधिक हो चुकी होती है.

सबसे छोटे दिन और सबसे ठंडे दिनों के बीच का यह छः सप्ताह का अंतराल दरअसल पृथ्वी की विशाल ऊष्मा-धारिता के कारण आता है. इसे यों समझा जा सकता है जैसे यदि किसी के पास विपुल सम्पत्ति (ऊष्मा धारिता) हो तथा वह उसे इस तरह से व्यय करना आरंभ करे कि आरंभ में थोड़ा-थोड़ा, फिर इस व्यय को धीरे धीरे बढ़ाते हुए एक दिन बहुत अधिक कर दे तथा उसके बाद क्रमशः कम करता चला जाए. व्यय के इस चक्र में कुल सम्पदा समाप्त होगी या नहीं यह इस बात पर निर्भर करेगा कि सम्पदा है कितनी तथा आपके रोज व्यय करने के बाद कितनी बची रहती है. पर यह आवश्यक नहीं है कि जिस दिन आप सर्वाधिक व्यय करें उसी दिन सारी सम्पदा समाप्त हो जाए. उसके बाद भी वह बची रह सकती है तथा आगे जाकर तब समाप्त हो सकती है जब आप अपना कुल दैनिक व्यय कम कर चुके हों.

सम्पदा का समाप्त होना सर्वाधिक ठंडे दिन का पर्याय है. पृथ्वी सूर्य से नित्य गर्मी प्राप्त

कुछ आंकड़े

व्यास	12,100 किलोमीटर (विषुवत रेखीय)
संहति	पृथ्वी की 82 प्रतिशत
सापेक्षिक घनत्व	5.27
सतह गुरुत्व	90 प्रतिशत (पृथ्वी का)
पलायन वेग	10.3 किलोमीटर प्रति सेकंड
सूर्य से औसत दूरी	108,230,000 किलोमीटर
कक्षाकाल	225 दिन
घूर्णन काल	243 दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

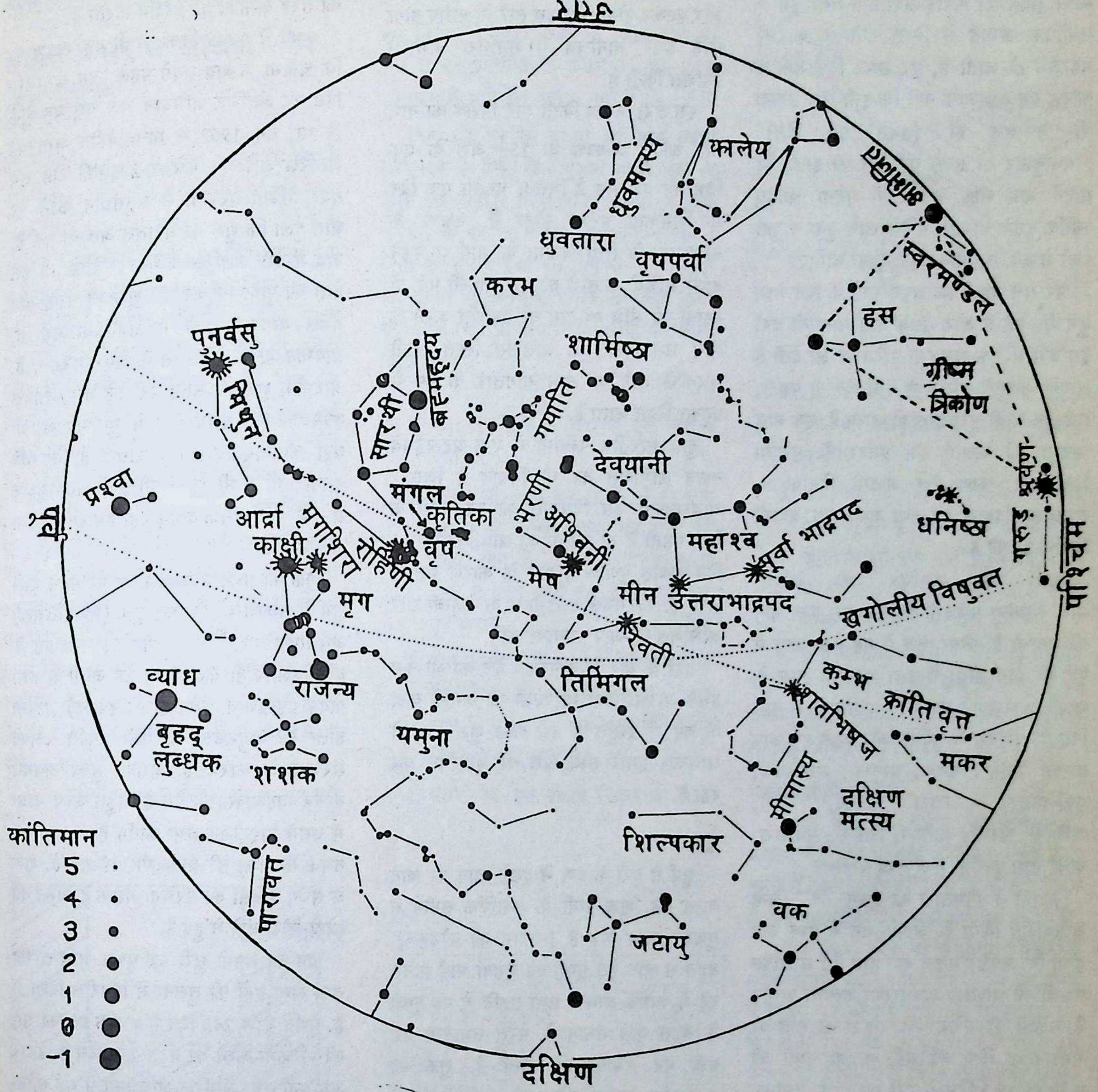

करती है तथा नित्य अंतरिक्ष में इसके एक बड़े अंश को खो देती है. यदि प्राप्ति की मात्रा खो देने की मात्रा से कम है तो यह कुल मिलाकर गर्मी 'व्यय' कर रही है. यह व्यय घटते घटते एक दिन ऐसा आता है जब (वसन्त ॠतु में) यह व्यय शून्य हो जाता है, प्राप्ति तथा खोने की मात्रा समान हो जाती है. पर इसके बाद भी प्राप्ति का बढ़ना जारी रहता है जिससे अब व्यय के स्थान पर लाभ होने लगता है. कुल सम्पदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तापमान) में निरंतर वृद्धि होती रहती है, यद्यपि 22 जून के आसपास दैनिक लाभ की मात्रा (दिन की लंबाई सर्वाधिक तथा सूर्य के सर्वाधिक ऊंचाई में स्थित होने के कारण) महत्तम हो जाती है, पर ऊपर दिए तर्क के कारण यह आवश्यक नहीं कि इसी दिन सम्पदा भी महत्तम हो (सबसे गर्म दिन). नियमानुसार तो सबसे गर्म दिन को इसके डेढ़ महीने बाद मध्य अगस्त में पड़ना चाहिए क्योंकि इसके बाद भी दैनिक लाभ कुछ न कुछ रहने से कुल तापमान बढ़ते रहना चाहिए.

पर सच यह है कि चरम गर्मी के दिन मध्य जून में पड़ते हैं और उसके बाद मानसूनी वर्षा इस क्रम में एक खुशनुमा परिवर्तन ला देती है अन्यथा न जाने अगस्त में गर्मी कितनी पड़ती, जब जून में ही बुरा हाल हो जाता है. इस मास चन्द्रमा की कलाएं इस प्रकार हैं: पूर्णिमा दिनांक 2, कृष्ण पक्ष अष्टमी दिनांक 9, अमावस्या दिनांक 17 तथा शुक्ल पक्ष अष्टमी दिनांक 25 को है.

तारों के मानचित्र को देखिए, ग्रीष्म-त्रिकोण पश्चिमी क्षितिज पर अस्त होने की मुद्रा में है. ग्रीष्म ऋतु में यह संध्याकाश में पूर्व में उदय होता मिलता था. इस मास के मानचित्र में हमने नक्षत्रों के योगतांरों के नाम दिए हैं, पश्चिम से पूर्व के ओर बढ़ने पर आप क्रमशः पाएंगे : श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषज, पूर्वा-भाद्रपद, उत्तरा भाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा तथा पुनर्वसु, कुल तेरह योगतारे.

नक्षत्रों के योगतारों को हमने ''*'' चिन्ह से प्रदर्शित किया है. आपके मन में प्रश्न उठा होगा कि आखिर नक्षत्र क्या होते हैं? सत्ताईस नक्षत्रों की भारतीय अवधारणा अत्यन्त प्राचीन है. नक्षत्रों की परिकल्पना चन्द्रमा की गति को समझने के लिए की गई. चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा 27.3 दिन में पूरी करता है, इसलिए प्रतिदिन हम चन्द्रमा को आकाश में तारों के सापेक्ष भिन्न स्थान में पाते हैं. यदि परिक्रमा काल को पूर्णांक (27 दिन) मान लें तो एक दिन में चन्द्रमा के स्थान में परिवर्तन $360^{0}/27$ यानी $13\frac{1}{3}$ अंश हुआ. यदि चन्द्रमा आज रात्रि में किसी समय तारे रोहिणी के समीप है तो अगले दिन उसी समय वह $13\frac{1}{3}$ अंश पूर्व की और हटकर होगा. वह उस तारे के समीप होगा जिसे हमने मानचित्र में मृगशिरा नाम से प्रदर्शित किया है.

इस तरह नक्षत्र किसी तारे विशेष का नाम नहीं अपितु आकाश के $13\frac{1}{3}$ अंश के एक विभाजन का नाम है जितना चन्द्रमा एक दिन में खिसकता प्रतीत होता है. नक्षत्रों के नामकरण के लिए चन्द्रमा के मार्ग में पड़ने वाली राशियों के तारों की सहायता ली गई. दो नक्षत्रों की संधि या योग को प्रदर्शित करने के लिए उस स्थिति के आसपास स्थित किसी चमकीले तारे का नाम योगतारे के रुप में प्रयुक्त किया जाता है.

कुछ भारतीय पञ्चांगों में एक अट्ठाईसवें नक्षत्र अभिजित का भी विधान है जिसकी आवश्यकता उस विसंगति को दूर करने के लिए पड़ती है जो चन्द्रमा का आवर्तकाल 27.3 दिन अर्थात पूर्णांक न होने के कारण उत्पन्न होती है. स्वरमंडल तारामंडल के तेजस्वी तारे अभिजित को आप पहचानते होंगे.

ग्रहों के बारे में जानकारी देने का जो क्रम हमने आरंभ किया था, उसी की अगली कड़ी के रुप में प्रस्तुत है इस मास शुक्र ग्रह जो आजकल हमारे संध्याकाश को सुशोभित कर रहा है.

शुक्र

सूर्य से दूरी के क्रम में दूसरे स्थान पर आने वाला ग्रह, शुक्र पृथ्वी के सवार्धिक समीप से गुजरने वाला पिंड है (चन्द्रमा को छोड़कर). बहुत से लोग इसे पृथ्वी का जुड़वां भाई मानते रहे थे क्योंकि आकार तथा संहति में यह पृथ्वी के बहुत कुछ समान है. परंतु समानता बस यहीं पर समाप्त हो जाती है. शुक्र का वातावरण इतना प्रतिकूल तथा भयानक है जैसा सौर मंडल के किसी अन्य ग्रह पर नहीं.

चमक में सूर्य तथा चन्द्र के बाद शुक्र का ही स्थान आता है तथा इस चमक के लिए उसके सघन वातावरण के परावर्तक सतह के अलावा सूर्य से निकटता भी उत्तरदाई है. कान्ति के चरमोत्कर्ष में शुक्र का कान्तिमान -4.4 पहुंच जाता है. दूरबीन से देखने पर शुक्र भी चन्द्रमा की तरह कलाओं का प्रदर्शन करता है.

पृथ्वी से इसकी निकटता ही वह कारण था कि चन्द्रमा के बाद सबसे पहले जिस खगोलीय पिंड पर अंतरिक्ष अभियान भेजे गए वह शुक्र ही था. सन् 1962 में मानवविहीन अमेरिकी अंतरिक्ष अभियान मैरिनर-2 इसकी टोह लेने गया. रेडियो दूरबीनों से अनुसंधान करने पर ज्ञात हुआ कि शुक्र का धरातल अत्यन्त गर्म है, बाद में रुसी अंतरिक्ष अभियान 'वेनरा' ने इस बात की पुष्टि भी कर ली. शुक्र की सतह सौर मंडल के सभी ग्रहों में सर्वाधिक गर्म है, तापमान 450^{0} सेल्सियस के लगभग रहता है. आरंभ में शुक्र की सतह पर भेजे गए अंतरिक्ष अभियान इसी प्रचंड गर्मी से भुन गए थे, यों वहां का वायुदाब इतना अधिक है कि यदि इतनी गर्मी न भी हो तो भी पृथ्वी के वायुदाब से नब्बे गुना अधिक दबाव वहां हमारी हड्डियां भी पीस दें.

शुक्र का सघन वायुमंडल ग्रह पर पड़ने वाले सूर्य के प्रकाश का लगभग पूर्ण (99 प्रतिशत) अवशोषण कर लेता है, और यह गर्मी ग्रह के वायुमंडल में ही कैद होकर रह जाती है तथा पादप ग्रह-प्रभाव (ग्रीन हाउस इफैक्ट) उत्पन्न होता है. वायुमंडल की ऐसी प्रकृति उसकी संरचना के कारण है जिसका मुख्य अवयव कार्बन-डाइआक्साइड गैस है, बहुत अल्प मात्रा में उसमें नाइट्रोजन तथा आर्गन हैं. जल वाष्प, नमक के अम्ल की वाष्प भी पाई गई हैं. शुक्र के सघन बादलों की संरचना गंधक के अम्ल की छोटी-छोटी बूंदों से हुई है.

ग्रह का अपनी धुरी पर घूर्णन अत्यन्त मंद तथा अन्य ग्रहों की तुलना में विपरीत दिशा में है. घूर्णन काल 243 दिन है जबकि ग्रह का सूर्य की परिक्रमा करने का काल 225 दिन है. रेडार अध्ययनों तथा अंतरिक्ष अभियानों से यह संकेत मिला है कि ग्रह पर ज्वालामुखी हैं, सतह ऊबड़ खाबड़ है तथा उस पर पत्थर बिखरे पड़े हैं, पर्वतमालाएं भी हैं और ऐसा लगता है कि मिट्टी की संरचना के बारे में तो कुछ विशेष

(शेष पृष्ठ 468 पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाक्स कैमरे से अधिक चित्र कैसे खींचे

□ 'आविष्कार' के अक्तूबर 1989 के अंक में 'आविष्कार मंच' स्तम्भ के अंतर्गत श्री सुरेश चन्द्र मिश्र का एक आलेख– 'बाक्स कैमरे से अधिक चित्र कैसे खींचें' प्रकाशित हुआ था. कई पाठकों से हमें पत्र प्राप्त हुए जिनमें उन्होंने इस विधि से फोटो खींचने में आने वाली परेशानी के विषय में लिखा है. ऐसे ही कुछेक पत्र लेखक को भी प्राप्त हुए हैं. 'मंच' के नियमित पाठकों की सुविधा के लिए यहां पूर्व प्रकाशित आलेख से मुख्य-मुख्य जानकारी और फिर लेखक का स्पष्टीकरण दिया जा रहा है.

आमतौर पर एक साधारण बाक्स कैमरे से एक फिल्म पर 12 फोटो खींचे जाते हैं. यदि कैमरे के अंदर मास्क लगाकर एक फोटो लायक फिल्म को एक के बजाए चार बार में एक्सपोज किया जाए तो 12×4=48 चित्र प्राप्त किए जा सकते हैं. इसके लिए चित्र-1 के अनुसार गत्ते का एक टुकड़ा काट कर कैमरे के अंदर इस प्रकार फिट कर दिया जाता है कि रील के सरकने में बाधा न पड़े.

2.7 सेंटीमीटर×2.7 सेंटीमीटर के कट को

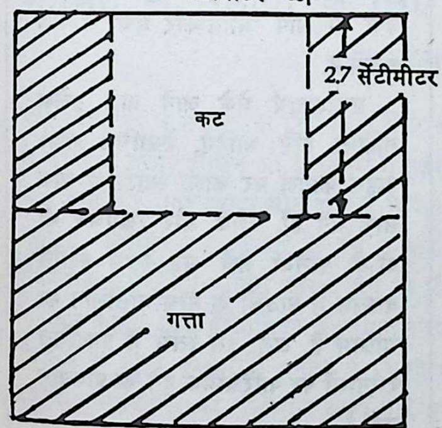

चित्र–1. गत्ते का मास्क

एक किनारे से आरंभ करने के बजाए बीच में, लेंस से बने प्रतिबिंब के अपेक्षाकृत श्रेष्ठ भाग को काम में लाने हेतु बनाया गया है.

चित्र को पूरे के बजाए हर बार आधा खिसकाने के लिए रील घुमाने वाली घुंडी के दांतों का सहारा लिया गया. प्रारंभ में एक नेगेटिव के बराबर फिल्म खिसकाने में कितने दांतों का घुमाव हुआ इसे गिन कर आधे दांतों की संख्या के अनुसार घुमाव हर बार दिया गया. 48 चित्र प्राप्त करने के लिए अब निम्न विधि अपनाएं :

1. रील में लंबाई में तीर का एक निशान बना लें.
2. फिल्म को लोड कर प्रारंभ में ही एक नेगेटिव के बराबर सरका कर दांतों की संख्या गिन लें. प्रारंभ में कैमरा खुला रहने में कोई हानि नहीं है. अब कैमरा बंद कर दें.
3. रील बदल घुंडी का एक दांता रंग लें तथा कैमरे पर पास ही में एक निशान लगा दें. इससे हर बार दांतों की संख्या गिनने में सुविधा होगी.
4. मास्क को इस प्रकार फिल्म के आगे फिट करें कि फिल्म के सरकने में बाधा न पड़े.
5. 24 चित्र पूरे होने पर फिल्म पूरी तरह दूसरे सूल पर लिपट चुकी होगी. अंधेरे कमरे में इसे पुनः पहले सूल पर अच्छी तरह लपेट लें तथा पुनः लोड करते समय तीर की दिशा उलट लें.

चित्र–2. पहली तथा दूसरी लोडिंग में तीर की दिशा

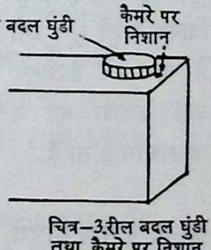

चित्र–3. रील बदल घुंडी तथा कैमरे पर निशान

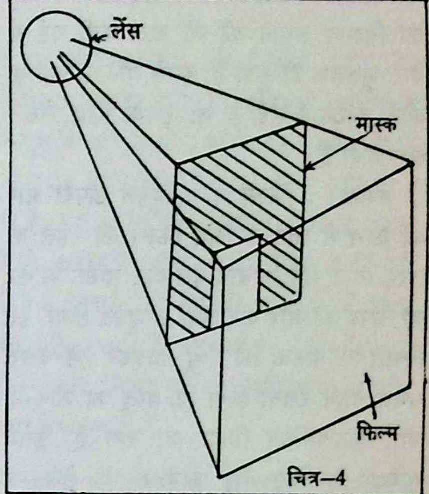

चित्र–4

आशा है उक्त सीधी सर्रा विधि का उपयोग करके बिना किसी विशेष खर्च के लगभग 48 चित्र (किनारे के चित्र पूरे नहीं आएंगें) खींचने में कोई कठिनाई नहीं होगी.

मास्क कैसे फिट करें ?

'बाक्स कैमरे से अधिक चित्र कैसे खींचें' आलेख के संबंध में कुछ पाठकों ने मास्क फिट करने में आने वाली कठिनाई का उल्लेख किया है. ऐसे पाठकों के लिए यहां संशोधन प्रस्तुत है:

मास्क फिट करने का उद्देश्य : कैमरे में मास्क लगाने का उद्देश्य यह है कि एक चित्र में फिल्म का चौथाई भाग ही 'एक्सपोज' हो. फिल्म के मुक्त संचलन को ध्यान में रखते हुए 'मास्क' को फिल्म के निकटतम रखना चाहिए जैसा कि चित्र-1 में दिखाया गया है. मास्क को लैंस तथा फिल्म के बीच कहीं भी, जहां उपयुक्त स्थान मिले लगाया जा सकता है. मास्क के लैंस के ज्यादा समीप होने से बस इस बात की संभावना रहती है कि प्राप्त चित्र के किनारे धुंधले हों.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व प्रकाशित आलेख में फिल्म के निचले हस्से के 'एक्सपोज' हो जाने की दशा में रील को उलटा करने तथा इसके लिए फिल्म में तीर का निशान लगाने की जो बात कही गई थी वैसा भूलवश ही हुआ है. इससे यदि पाठकों को कोई कठिनाई हुई है तो इसके लिए लेखक क्षमाप्रार्थी है.

संशोधन : फिल्म के अप्रयुक्त ऊपरी भाग को काम में लाने के लिए फिल्म को पहले की तरह लपेट लेने के बाद इस बार मास्क के कट को ऊपर की ओर कर लेना उपयुक्त होगा. इस स्थिति में पाठक को 'व्यू फाइंडर' में देखते समय ध्यान रखना होगा कि वस्तु का कौन-सा भाग फिल्मांकित किया जा रहा है. इसमें सुविधा के लिए 'व्यू फाइंडर' के लेंस पर स्टिकर के रुप में छोटा मास्क लगाया जा सकता है (चित्र-2) या फिर किसी स्थान पर

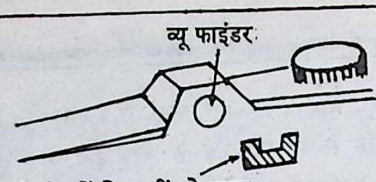

पहले दौर में चित्र खींचते समय इस प्रकार के एक छोटे स्टिकर को व्यू फाइंडर लेंस के पीछे चिपका लें

चित्र–5.

एक तीर का चिह्न बनाया जा सकता है. यह ध्यान देने की बात है कि अंदर मास्क के कट की स्थिति क्या है.

सुरेश चन्द्र मिश्र
अधीक्षक अभियंता आकाशवाणी,
शिलांग–793001.

प्रिज्म के बिना इंद्रधनुष बनाना

यहां एक ऐसी सरल विधि प्रस्तुत है, जिससे बिना प्रिज्म के इंद्रधनुष बनाया जा सकता है. इसके लिए एक चौड़े बर्तन और एक दर्पण की आवश्यकता पड़ती है. बर्तन में पानी भरकर इसमें दर्पण को टेढ़ा रख देते हैं. बर्तन में तेज प्रकाश या सूर्य के प्रकाश को इस तरह डालते हैं कि प्रकाश की किरणें पानी में रखे हुए दर्पण से टकराएं. दर्पण को इस तरह रखा जाता है कि उससे परावर्तित प्रकाश की किरणें किसी श्वेत स्थान पर पड़े.

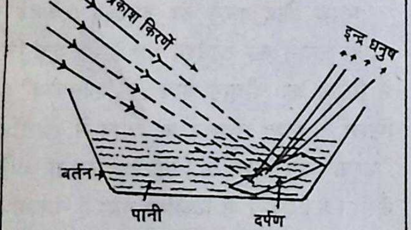

यह क्रिया इस सिद्धान्त पर आधारित है कि प्रकाश दर्पण से परावर्तित होता है और इसके साथ ही आवर्तित भी होता है. स्पष्ट है कि प्रकाश किरणें दो पदार्थों (पहले हवा और फिर पानी) में से गुजरीं, इसलिए वे मुड़ गईं अर्थात् आवर्तित हो गईं, मुड़ी हुई किरणें अपने मूल रंगों में विभक्त हो जाती हैं और हमें इंद्रधनुष दिखलाई पड़ता है. यहां प्रकाश का वर्तन और परावर्तन साथ-साथ होता है.

आनंद कुमार बोपचे,
पुत्र श्री टी० सी० बोपचे,
विजय चौक, मदिया वार्ड बरघाट,
बरघाट (सिवनी) मध्य प्रदेश.

'आविष्कार मंच' में आपका भी स्वागत है

क्या आपके मन में कोई आविष्कार कौंध रहा है? ...या आपको अपने किसी नए विचार को साकार करने अथवा पूर्ण रुप देने में किसी अन्य के दिमागी सहयोग की जरुरत है? कोई प्रौद्योगिक/तकनीकी जानकारी आपने विकसित की है जिसे आप दूसरों को देना चाहते हैं? ...अथवा आप 'आविष्कार' के पाठक वर्ग से ऐसी ही कोई जानकारी चाहते हैं या अपनी तकनीकी उलझन सुलझवाने की अपेक्षा रखते हैं? ...तो आइए 'आविष्कार मंच' में आपका स्वागत है.

इस स्तंभ के माध्यम से हम अपने पाठकों को एक ऐसा मंच प्रदान करते हैं जहां वे अपने द्वारा विकसित नए आविष्कारों, नई युक्तियों, नए विचारों और प्रस्तावों को और अधिक विकसित करने के उद्देश्य से उन्हें पत्रिका के व्यापक आविष्कारक पाठक अमुदाय के समक्ष रख कर उनके विचारों और सुझावों का लाभ उठा सकते हैं. इस मंच के माध्यम से आप अन्य प्रबुद्ध लोगों को अपने आविष्कार से परिचित भी करा सकते हैं.

इस स्तंभ में प्रकाशित रचनाओं में वर्णित आविष्कार/विचार आदि के लिए आपके पास कोई सुधार/सुझाव हो तो उसे भी आप 'आविष्कार मंच' में भेज सकते हैं.

प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले प्रलेख संक्षिप्त होने चाहिएं. रेखाचित्र सफेद ड्राइंग कागज पर काली स्याही से साफ साफ बने हों. प्रलेख और रेखाचित्र की दो-दो प्रतियां भेजें. यह स्तंभ क्योंकि वास्तव में पाठकों के बीच वार्तालाप का माध्यम है, अतः इस स्तंभ में प्रकाशित रचनाओं पर पारिश्रमिक देने का प्रावधान नहीं है.

–वरिष्ठ सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या मानव अंग उगाने की क्षमता पुनः हासिल कर सकेगा

मनुष्य का वैज्ञानिक नाम 'होमो-सैपियन' है जिसका अर्थ है अपने अंगों को अपने ही शरीर में उगा सकने वाला प्राणी. आदि काल में ऐसी क्षमता मनुष्य में मौजूद बताई जाती है. कोलम्बिया के 'प्रेसबायटेरियन मेडिकल सेंटर' के डा० एंड्रयू बेसेट के अनुसार अधिकांश स्तनपोषी जीवों में आज भी अंग अंकुरण की क्षमंता मौजूद है, भले ही अब यह सुषुप्त हो. डा० बेसेट के अनुसार ये प्राणी अंग-अंकुरण के लिए आवश्यक विशिष्ट जैविक विद्युत उत्पादन भूल गए हैं.

मेंढक जैसे जल थल दोनों में रहने वाले अनेक प्राणी अपने दो-तिहाई शरीर के नष्ट हो जाने पर भी मरते नहीं बल्कि बचे-खुचे एक-तिहाई शरीर में से ही, फिर से बाकायदा अंग अंकुरित कर लेते हैं और जीने लगते हैं. इसका एक सर्व सुलभ उदाहरण केंचुआ है.

छिपकली अपनी दुम को अपनी इच्छा से काट कर शरीर से अलग कर देती है और फिर नई दुम उगा लेती है. तारा-मछली यानी 'स्टार फिश', 'समुद्री झींगें' आदि में, इस क्षमता के दर्शन सहज किए जा सकते है. 'हाइड्रा' को तो कूट कर कीमा कर डालिए, टुकड़े इधर-उधर सरका दीजिए लेकिन इस मलीदे को सिर्फ एक साथ मिला का छोड़ दीजिए, हाइड्रा के अंग फिर से स्वयं को सही जगह जोड़ लेंगे और फिर से एक हाइड्रा बन जाएगा.

कुछ बड़े डीलडौल के स्तनपोषी भी यह चमत्कार दिखा सकते हैं. नर बारहसिंगा अपने सींगों को बसंत ॠतु में हर साल गिरा देता है ताकि सुंदर सींगों का नया जोड़ा उगा सके. इन सींगों का अंकुरित होना भी जीवित अंग का अंकुरित होना ही है.

डा० बेसेट के अनुसार मनुष्य शरीर को भी औषधि और उपकरणों के उपयोग से यह कला सिखाई जा सकती है. डा० बेसेट के अनुसार, जो प्रसिद्ध हड्डी विशेषज्ञ हैं, कभी-कभी मनुष्य की टूटी हड्डी जुड़ने से साफ इंकार करने लगती है. औषधि या उपचार असफल हो जाता है. ऐसे मामलों में डा० बेसेट ने विद्युत के सूक्ष्म प्रवाह द्वारा टूटी हड्डी को जोड़ना चाहा और सचमुच ही उन्होंने देखा कि हड्डियां जुड़ने लगी हैं. हड्डियां जोड़ने में विद्युत के इस उपयोग को अब तो अमेरिका के 'फूड एंड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन' ने भी स्वीकृति दे दी है. यह प्रयोग बड़ी स्पष्टता से सिद्ध करता है कि शरीर के कोष, शरीर में से ही निकली जैविक विद्युत को जितनी सहजता से ग्रहण करते हैं, उतनी ही सहजता से, मानव के यंत्रों से निकली विद्युत को भी ग्रहण करते हैं और नया अंग उगाते हैं.

अपने इस प्रयोग से उत्साहित होकर डा० बेसेट ने एक और अनोखा प्रयोग किया. उन्होंने सफेद चूहे का एक पैर काट कर अंग-भंग के उस क्षेत्र में विद्युत कुंडली (कॉयल) लगा दी जिससे सूक्ष्म धारा का विद्युत चुंबकीय क्षेत्र तैयार हो गया. उन्होंने देखा कि चूहे का पैर सचमुच उगना शुरु हो गया और बाकायदा कोहनी तक चूहे का पैर उग आया.

इन प्रयोगों को देख का लगता है कि मनुष्य जीवन की उत्क्रांति में जो दक्षता प्रकृति ने 'होमोसैपियन' से छीन ली थी शायद कल उसे पुनः मिल जाए.

मधुमेह के रोगियों के लिए मीठी डबलरोटी बनाने की उन्नत विधि

मोटे व्यक्तियों व मधुमेह के रोगियों के लिए बनाए जाने वाले बिस्कुटों व मीठी डबलरोटियों में चीनी के बजाए सैक्रीन आदि कृत्रिम मधुकर (स्वीटनर्स) इस्तेमाल किए जाते हैं. यद्यपि ये सुक्रोज से कई गुना ज्यादा मीठे होते हैं लेकिन सभी प्रयोजनों में इनके उपयोग की अनुमति नहीं है, क्योंकि ये डबलरोटी के रंग व कुरकरेपन को प्रभावित करते हैं. इसके अलावा सैक्रीन के कैंसर के संभावित कारक होने की भी कुछ रिपोर्टें हैं.

अब केंद्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, मैसूर के अनुसंधानकर्ताओं ने पाया है कि बिस्कुट व मीठी डबलरोटी बनाने में प्रयुक्त लोई में कृत्रिम मधुकरों के साथ 10 से 30 प्रतिशत सार्बिटोल का इस्तेमाल अच्छे परिणाम देता है. सार्बिटोल लोई को कठोर होने से रोकता है और इसे फैलाने में मदद करता है. इससे बिस्कुटों में भूरा रंग समान रुप से फैलता है और अच्छा कुरकुरापन बना रहता है.

प्रकाश संश्लेषक कृत्रिम अणु

अमेरिकी अनुसंधानकर्ताओं के एक दल ने हाल ही में सूर्य की ऊर्जा का सीधे उपयोग कर सकने में सक्षम एक कृत्रिम अणु का विकास किया है. यह प्रकाश-संश्लेषण जैसी प्रक्रिया द्वारा सौर ऊर्जा को उपयोगी ऊर्जा में बदलता है. इस विकास ने सौर ऊर्जा के दोहन का एक नया मार्ग खोल दिया है.

फोटोन यानी प्रकाश के कण इन अणुओं को जिन्हें पैंटाड के नाम से जाना जाता है, विद्युत-आवेशित कर देते हैं. यह आवेश उतनी देर तक बना रहता है कि वह विद्युत परिपथ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवाहित हो सके.

जब एक फोटोन किसी अणु से उसकी लंबाई में कहीं टकराता है तो अणु उत्तेजित हो जाता है और उसका एक इलेक्ट्रोन उच्चतर ऊर्जा अवस्था में पहुंच जाता है. यह इलेक्ट्रोन अणु के केंद्र के पार्फिरिन नामक संरचना वलयों में से किसी एक से आता है. एक बार उच्चतर कक्षा में पहुंच जाने पर यह इलेक्ट्रोन पुनः विश्राम की अवस्था में आना चाहता है. किन्तु अणु की संरचना ऐसी होती है कि न्यूनतम ऊर्जा का पथ इसे उसकी प्रारंभिक स्थिति से दूर ले जाता है और वापिस नहीं आने देता. उत्तेजित इलेक्ट्रोन निम्नतर ऊर्जा अवस्था में पड़ोस के परमाणु पर कूदता है. इसका निम्न से निम्नतर ऊर्जा अवस्था में अन्य परमाणुओं पर कूदना तब तक जारी रहता है जब तक कि वह अणु के दूसरी सिरे पर नहीं पहुंच जाता. इस प्रक्रिया में इलेक्ट्रोन अपने प्रारंभिक स्थान से लगातार दूर होता जाता है जिससे अणु के एक सिरे पर धनात्मक व दूसरे सिरे पर ऋृणात्मक आवेश उत्पन्न हो जाता है.

इस प्रकार बने धनात्मक व ऋृणात्मक आवेश के पृथक्कीकरण में फोटोन की लगभग आधी ऊर्जा रासायनिक विभव ऊर्जा के रुप में संचित हो जाती है. वास्तव में पौधे और कुछ जीवाणु आवेश पृथक्कीकरण द्वारा ही प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्रारंभ करते हैं.

पैंटाड अणु इन आवेशों को 55 माइक्रोसेकंड तक अलग-अलग बनाए रखता है, यह समय आवेशों को किसी चालक या दूसरे रसायनों द्वारा प्रवाहित करने के लिए पर्याप्त अवधि है. पैंटाड पोर्फोरिन, कैरोटिनायड और क्विनोन नामक रासायनिक समूहों से निर्मित होता है. यही वे रासायनिक समूह हैं जिनका पौधों तथा जीवाणुओं द्वारा विभिन्न विन्यासों में प्रकाश एकत्रित करने में उपयोग होता है.

यदि पैंटाड को एक झिल्ली पर इस प्रकार रखा जाए कि इसके दो सिरे झिल्ली पर विपरीत दिशाओं में हों तो पैंटाड पर अपने आवेश ऐसी रासायनिक क्रियाएं प्रेरित कर सकते हैं, जिनसे बाद में उपयोग के लिए ऊर्जा संचित हो सकती है—ठीक वैसे ही जैसे बैटरी में ऊर्जा संचित होती है. दूसरी ओर इन अणुओं को एक पतली फिल्म में, जिसके प्रत्येक सिरे पर विद्युत चालक जुड़े हों, इस प्रकार अंतः-स्थापित किया जा सकता है कि अणु में आवेश-पृथक्करण से विद्युत धारा प्राप्त की जा सकती है.

बधिरों के लिए उपयोगी कुछ नई युक्तियां

बधिरता विकलांगता का उद्दृश्य रुप है. हमारे देश में अनुमानतः 3 करोड़ यानी देश की आबादी के 5 प्रतिशत लोग गूंगे-बहरे हैं. बोलने की शक्ति के बावजूद भी बधिर व्यक्ति श्रवण शक्ति के अभाव में दूसरों द्वारा बोले गए शब्दों को न सुन सकने के कारण भाषा अर्जन भी नहीं कर पाते.

ऐसे व्यक्तियों के लिए जो सुन न सकने के कारण बोल भी नहीं पाते या स्पष्ट तथा शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते कैंब्रिज विश्वविद्यालय के डा० फ्रैंक फाल साइड तथा उनके सहयोगियों ने एक उपयोगी मशीन बनाई है जिसकी सहायता से बधिर व्यक्ति भी सामान्य स्वस्थ व्यक्तियों की तरह बोलना सीख सकते हैं. इस मशीन में टी० वी० की तरह की एक स्क्रीन लगी होती है. जब कोई स्वस्थ व्यक्ति बोलता है तब स्क्रीन पर रेखाएं उभर आती हैं. ये रेखाएं व्यक्ति के बोलते समय के मुंह और कंठ की आकृति पर आधारित होती हैं.

बधिर व्यक्ति उस आवाज का उच्चारण बार-बार, तब तक करते रहते हैं, जब तक कि उनके बोलने से उभरी रेखाएं भी स्वस्थ व्यक्ति की रेखाओं से मेल नहीं खातीं. दोनों रेखाओं के मेल खाने का मतलब यह है कि बधिर व्यक्ति ने भी शब्द का उच्चारण सही किया है. इस अभ्यास से बधिर व्यक्ति सही-सही बोलना सीख सकते हैं.

बधिर मां-बाप की सहायता के लिए इजराइल के एक वैज्ञानिक जोसेफ कैमर ने एक यंत्र विकसित किया है. कैमर इलेक्ट्रोनिक्स, यरुशलम द्वारा निर्मित 'द शेकर' नामक इस यंत्र से बधिर मां-बाप बच्चे की जरुरत के अनुसार उसके पास आ सकेंगे और उसकी सुविधाओं का भी ख्याल रख सकेंगे. यह यंत्र हाथ की घड़ी जैसा है और पहना भी घड़ी की तरह जाता है. इस यंत्र में एक माइक्रोफोन फिट है जिसे बच्चे के पालने पर लगाया जाता है. जब बच्चा रोता है या कोई आवाज करता है तो उक्त माइक्रोफोन के जरिए उसकी खबर मां-बाप जिसने यह घड़ी नुमा यंत्र पहना होता है, तक पहुंच जाती है. उस समय इस घड़ीनुमा यंत्र में कंपन होने लगता है साथ ही उससे रोशनी की तरह एक चमक निकलती है जिससे मां-बाप को फौरन मालूम हो जाता है कि बच्चे को उसकी जरुरत है.

बधिर व्यक्तियों के लिए जर्मनी के वैज्ञानिकों ने एक ऐसा अनोखा ब्रेल टेलोफोन तैयार किया है, जो उन्हें आराम से दूर की बात सुनाता है. राष्ट्रीय मूक-बधिर संस्थान हैनोवर द्वारा आविष्कृत इस टेलीफोन से, नंबर डायल करने के बाद, संदेश टाइप करके भेजा जाता है. इसके अलावा दूसरे छोर पर आदमी को घंटी के बजाए एक विशेष यंत्र द्वारा कंपन पैदा करके बुलाया जाता है. यही यंत्र बाद में ब्रेल पट्टिका पर जवाबी संदेश टाइप करके भेजता है, और बातें आसानी से हो जाती हैं.

इसी से मिलता-जुलता एक टेलीफोन म्युनिसिपल सेंटर ऑफ इंडस्ट्रियल साइंस एंड टेक्नोलोजी, टोकियो ने भी बनाया है. यह सुवाह्य (पोर्टेबल) यंत्र सार्वजनिक और घरेलू टेलीफोनों पर लगाया जा सकता है जिसमें कोई भी बधिर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ एक की-बोर्ड में जापानी लिपि पढ़कर संदेश प्राप्त का सकता है. इसे 'लेटर फोन' भी कहते हैं.

आंखों से भी कर सकते हैं टाइप

कनाडा में टोरंटो विश्वविद्यालय के इंजीनियरी विभाग ने एक ऐसे टाइपराइटर का आविष्कार किया है, जिससे उंगलियों के स्पर्श बिना भी केवल देख कर ही टाइप किया जा सकता है. विद्युत संचालित टाइपराइटर कुंजी पटल की जगह एक स्क्रीन अर्थात् पर्दा लगा होता है. इस पर सभी शब्द एवं संबंधित चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बने होते हैं. शब्दों का संबंध अंदर के विद्युत संवेदी भागों से रहता है. जब व्यक्ति टाइप करने बैठता है तो टाइपराइटर में विद्युत प्रवाहित की जाती है और जो शब्द टाइप करना होता है उस शब्द पर व्यक्ति को कुछ पल तक लगातार आंखें गड़ाए रहना पड़ता है. इस प्रक्रिया के फलस्वरुप इच्छित शब्द स्वतः ही दब जाता है और कागज पर उसका चिन्ह अंकित हो जाता है.

यह टाइपराइटर खास तौर से बूढ़े और ऐसे व्यक्तियों के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है जो अपने हाथों से ठीक से काम लेने में असमर्थ है. विभिन्न प्रकार की जानकारियों का उच्च घनत्व के 'पठन भाव स्मृतियों' (रीड ओनली मेमोरीज) में विद्युत संकेतों के रुप में संचयन किया जाता है और अपेक्षित सूचनाओं को द्रव क्रिस्टल प्रदर्श में प्रदर्शित किया जाता है. इसके अतिरिक्त इसमें एक बोर्ड एवं एक डेटा बेस प्रोसेसर होता है जिससे स्मृति तथा प्रदर्श पर आने वाली निर्गम सूचनाओं से दक्षता पूर्वक संपर्क स्थापित हो जाता है.

विकलांगों के लिए विशेष कंप्यूटर

अमेरिकी कंपनियों ने पर्सनल कंप्यूटरों के कुछ ऐसे माडल तैयार किए हैं, जो दुनिया के करोड़ों विकलांगों के जीवन में नई आशा का संचार कर सकते हैं. अब ऐसे वर्ड प्रोसेसर कंप्यूटर तैयार किए गए हैं, जिनके 'कुंजी पटल' पर बड़े आकार के 'की पैड' लगे हैं जो आपरेटर के सिर से जुड़े हलके प्वाइंटरों से ही संचालित हो सकते हैं.

कुछ दूसरे कंप्यूटर टर्मिनल केवल आवाज से ही संचालित हो सकते हैं. अटलांटा, जार्जिया स्थित 'यू० एस० नेशनल सर्पोर्ट्स सेंटर फार पर्सन्स विद् डिसेबिलिटीज' की मेरी पेट राडबाग के अनुसार इन परिवर्तित कंप्यूटरों में से कुछ ऐसे हैं जो शरीर की किसी एक मांसपेशी से संचालित हो सकते हैं. इन यंत्रों को माइक्रो कंप्यूटर प्रणाली से जोड़कर, पहिएदार कुर्सी या बिस्तरे पर लेटा हुआ मरीज भी रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, एयर कंडीशनर जैसी इलेक्ट्रोनिक मशीनें चला सकता है.

दुकानों के लिए कांच के आकर्षक पैनल

एक बड़े डिपार्टमेंट स्टोर के बाहर शो विंडो पर लगा कांच का एक बड़ा पैनल जिसके पार आप नहीं देख सकते मात्र एक स्विच दबाकर अब पल भर में पारदर्शी बनाया जा सकता है. अमेरिका में सनीवेल की तालिक कारपोरेशन ने ये वेरिलाइटविजन पैनल बनाएं हैं.

क्रिस्टली रुप में द्रव क्रिस्टल बिंदुकों को एक फिल्म पर विलेपित करके ऐसा कांच बनाना संभव हो पाया है. पौलीविनाइल ब्यूटाइरल (पी वी बी) को परत चढ़ी यह फिल्म ताप-प्रबलित सपाट कांच के पैनलों के बीच व्यवस्थित होती है.

कांच के पैनल को वोल्टता देने पर प्रत्येक बिंदुक की वक्र आंतरिक सतह के साथ द्रव क्रिस्टल पंक्तिबद्ध हो जाते हैं जिससे प्रकाश का पारगमन संभव होता है. वोल्टता बंद करने पर द्रव क्रिस्टल पुनः बेतरतीब ढंग से बिखर जाते हैं जिस कारण इनसे गुजरने वाला प्रकाश छितराने लगता है और पैनल पारभासी बन जाता है. पारभासी पैनल में से प्रकाश गुजरता तो है, लेकिन अणुओं के पंक्तिबद्ध न होने के कारण कांच पैनल दुधिया सफेद दीखता है जिसमें से पार नहीं देखा जा सकता.

ये विशेष किस्म के कांच पैनल दुकानों की बड़ी-बड़ी खिड़कियों के लिए खास तौर पर उपयोगी हैं. इनका बदलता स्वरुप खरीदारी करने आए व्यक्तियों को आकर्षित करता है.

☐ सोवियत संघ में विकसित एक यंत्र मिनटों में कैंसर, एड्स या क्षय के रोगी की शिनाख्त कर सकता है. 'अरिक' नामक इस यंत्र के बड़े पैमाने पर उत्पादन से पहले परीक्षण किए जा रहे हैं. मूल रुप से विद्युत-चालकता तथा द्रवों के प्रतिरोध को उनकी रासायनिक प्रतिक्रियाओं के क्रम में मापने के इस यंत्र को, जिसका भौतिकी और रसायन विज्ञान में व्यापक उपयोग किया जाता है, विशेष रुप देकर वैज्ञानिकों ने रोगजनक सूक्ष्मजीवों से उत्पन्न प्रतिजनों (एंटीजन्स) को निष्प्रभावी बनाने वाले रोग-प्रतिकारकों का पता लगाने के लिए उपयोग किया गया, जिससे चमत्कारी परिणाम निकले.

☐ अमेरिका में न्यूयार्क स्थित जनरल इलेक्ट्रिक रिसर्च एंड डिवेलपमेंट के वैज्ञानिकों ने जीवाणुओं के दो ऐसे विभेदों का पता लगाया है जो पौलीक्लोरिनेटेड बाइफिनाइल (पी सी बी) को खा कर नष्ट करने में सक्षम है.

तीस के दशक में विकसित इन रसायनों को 1979 में प्रतिबंधित घोषित कर दिया गया था क्योंकि ये नष्ट न होने के कारण प्रदूषण की समस्या पैदा कर रहे थे. इस समय इन्हें मंहगे व उच्च-क्षमता के भस्मक द्वारा ही नष्ट किया जा सकता है. अनुमान है कि गैर कानूनी ढंग से फेंके गए और बिजली के ट्रांसफार्मरों से लीक होकर वातावरण में आए पी सी बी की मात्रा कई लाख किलोग्राम है. ऐसे में ये जीवाणु काफी उपयोगी साबित हो सकते हैं क्योंकि ये 90 प्रतिशत से भी ज्यादा पी सी बी मिश्रणों को नष्ट करने में सक्षम पाए गए हैं.

☐ स्वीडन के इंस्टिट्यूट फार द हैंडीकैप्ड ने विकलांगों के लिए एक कुर्सी विकसित की है. यह ऐसे विकलांगों के लिए जिन्हें उठने बैठने में परेशानी होती है, काफी सुविधाजनक है. इस कुर्सी में ऊंचा उठाने के लिए चालक यंत्र लगा है. विद्युत-चालित इस कुर्सी की बाजुओं में एक स्विच फिट है जिससे इसे इधर-उधर चलाया जा सकता है. बिजली न होने पर इसे बैटरी से भी चलाया जा सकता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग प्रतिरोपण पर मिला है 1990 का चिकित्सा-विज्ञान नोबेल

□ राजेन्द्र कुमार राय

□ इस वर्ष चिकित्सा-विज्ञान का नोबेल पुरस्कार अमेरिका के दो वैज्ञानिकों डा० डी० टॉमस (70) और डा० जे० मुरे (71) को दिया गया है. इन वैज्ञानिकों ने लगभग चालीस वर्ष पहले शरीर के रोगग्रस्त अंगों को नए तथा सामान्य अंगों से बदलने की नई तकनीकों का विकास करना शुरु किया था. तब से अब तक लाखों-करोड़ों लोग इन तकनीकों का लाभ उठाकर नई जिन्दगियां बिता चुके हैं.

डा० टॉमस और डा० मुरे ने अंग, अस्थि मज्जा व कोशिका प्रतिरोपण तकनीकों की भी शुरुआत की थी. इस प्रतिरोपण तकनीकों को नोबेल असेम्बली ने उनके विकास के चालीस वर्ष बाद पुरस्कृत किया है.

अमेरिका के मेसाचुसेट्स राज्य की राजधानी बोस्टन के 'ब्रिघंम और महिला असताल' के डा० जोसेफ मुरे ने सर्वप्रथम 1954 में टिशू (ऊतक) अस्वीकृति की समस्या पर विजय प्राप्त की. उन्होंने उसी वर्ष एक अंग प्रतिरोपण का सफल परीक्षण कर दिखाया. मुरे ने एक जुड़वां बच्चे के गुर्दे को दूसरे जुडवां बच्चे में प्रतिरोपित किया था.

डा० डोनाल टॉमस ने अस्थि मज्जा प्रतिरोपण तकनीक की खोज की. यह विधि आजकल रक्त कैंसर रोगियों के लिए वरदान साबित हो रही है. डा० मुरे और डा० टॉमस ने प्रतिरोपण तकनीक पर अनुसंधान कार्य एक साथ शुरु किया था. द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यह दोनों 'बोस्टन असताल' में कार्यरत थे.

नोबेल पुरस्कार सामान्यतः चिकित्सा विज्ञान में मूलभूत अनुसंधान पर दिया जाता है. लेकिन इस वर्ष यह उपचार की तकनीकों के विकास पर दिया गया है. पुरस्कार की खबर सुनकर डा० मूरे ने कहा कि यह एक सपने जैसा लग रहा है, क्योंकि एक समय ऐसा भी आया था, जब हमसे कहा गया था कि प्रतिरोपण एक बेकार तकनीक है, आप लोग इस पर अपना समय क्यों गंवा रहे हैं.

इस वर्ष चिकित्सा-विज्ञान नोबेल पुरस्कार के विजेता डा० मुरे और डा० टॉमस को अपने उन अनुसंधानों के लिए यह सम्मान मिला है जो उन्होंने 40 वर्ष पूर्व किए थे और जिनका लाभ आज आम आदमी तक पहुंचता लग रहा है, किंतु क्षितिज पर खतरा भी मंडरा रहा है—मानव अंगों के बढ़ते व्यापार का—जिसकी तुरंत समय रहते रोकथाम अत्यन्त जरुरी है.

एक समय था जब अंग प्रतिरोपण की बात कोरी कल्पना थी. साठ के दशक के आसपास हजारों लोग गुर्दे की बीमारी के कारण ही मर जाते थे. इसीलिए जब इनका प्रतिरोपण शुरु हुआ तो संचार माध्यमों में उसे काफी प्रमुखता से लिया गया. विज्ञान ने एक बार फिर कल्पना को साकार कर दिखाया था.

कुछ वर्षों तक साथ-साथ अनुसंधान कार्य करने के बाद डा० मुरे व टॉमस की दिशाएं भी अलग-अलग हो गईं. डा० मुरे ने गुर्दे के प्रतिरोपण पर कार्य प्रारंभ किया. उन्होंने प्रतिरोपित अंग को शरीर से बाहर भी जीवित अवस्था में रखने में सफलता पाई. डा० टॉमस ने अस्थि मज्जा कोशिकाओं को अपना कार्य क्षेत्र चुना और एक व्यक्ति की अस्थि मज्जा कोशिका को दूसरी में प्रतिरोपित करने की प्रक्रिया को सफल बनाया. इस प्रक्रिया से रोग प्रतिरक्षण प्रणाली को सशक्त बनाकर बीमारियों का इलाज करने में सहायता मिली और टॉमस की अस्थि मज्जा प्रतिरोपण तकनीक उन लाखों लोगों के लिए जीवन की आशा बन गई, जो रक्त संबंधी बीमारियों व आनुवंशिक रोगों से ग्रस्त थे. आज पूरे विश्व में लगभग बीस हजार अस्थिमज्जा प्रतिरोपण आपरेशन प्रति वर्ष किए जाने लगे हैं, जबकि दस वर्ष पहले यह संख्या दो सौ भी नहीं थी. अस्थि मज्जा प्रतिरोपण तकनीक द्वारा रक्त कैंसर, रक्त की कमी (एनीमिया) और थैलासीमिया जैसी बीमारियों से निपटा जाता है. रोगग्रस्त कोशिकाओं की जगह स्वस्थ व सामान्य कोशिकाएं लगाना डा० मुरे और डा० टॉमस की खोजों का कुछ परिणाम हैं.

डा० मुरे ने सर्वप्रथम 1950 के आसपास कुत्तों को अपने प्रयोग का आधार बनाया. उन्होंने कुत्तों के गुर्दों का उनमें प्रतिरोपण आरंभ किया. उस समय वैज्ञानिकों का विचार था कि शरीर की रोग प्रतिरक्षक प्रणाली बाहर के किसी अंग को ग्रहण नहीं कर सकती क्योंकि प्रतिरोपण के उपरांत ही उसके अस्वीकार होने की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है और शीघ्र ही रोगी वायरस (विषाणु) का शिकार हो जाता है. अध्ययनों से पता चला है कि निकट संबंधी का गुर्दा लगाने पर उसकी अस्वीकृति की संभावना कम हो जाती है. सबसे पहले 1962 में किसी मरीज के गैर रिश्तेदार के शव के गुर्दे का सफल प्रतिरोपण किया जा सका. डा० मुरे के इस कार्य में उनके एक सहयोगी डा० जार्ज हिचिंग्स (अमेरिका) को 1988 का चिकित्सा विज्ञान का नोबेल पुरस्कार, जीवन रक्षक औषधियों की खोज पर पहले ही दिया जा चुका है.

डा० मुरे द्वारा गुर्दे का सफल प्रतिरोपण किए जाने के बाद शरीर के अन्य अंगों का प्रतिरोपण भी आरंभ हो गया. हालांकि शुरु में अन्य अंगों के प्रतिरोपण की बात नहीं सोची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई थी फिर भी दिल व जिगर के प्रतिरोपण की संभावना व्यक्त की जाती रही थी. डा० मुरे बोस्टन अस्पताल में प्लास्टिक सर्जरी का कार्य भी करते थे. हचिंसन सेंटर की क्लीनिकल डिवीजन के निदेशक के रुप में आजकल कार्य कर रहे डा० टॉमस दुनिया के सबसे बड़े अस्थि मज्जा कार्यक्रम को भी निर्देशित कर रहे हैं. हचिंसन सेंटर में प्रतिवर्ष लगभग 350 अस्थि मज्जा प्रतिरोपण ऑपरेशन किए जाते हैं.

वास्तव में रक्त कैंसर में शरीर की कुछ श्वेत रक्त कोशिकाएं कैंसर जन्य हो जाती हैं, और धीरे-धीरे सामान्य रक्त पैदा करने वाली कोशिकाओं को भी नष्ट कर देती हैं. डा० टॉमस ने रक्त कैंसर से ग्रस्त मरीजों में अस्थि मज्जा के स्वस्थ प्रतिरोपण का कार्य शुरू किया. अस्थि मज्जा उस ऊतक को कहते हैं, जो शरीर की हड्डियों के खोखले भाग में पाए जाते हैं, ये रक्त कोशिकाएं तथा प्लेटलेट बनाने का कार्य करते हैं. डा० टॉमस ने सबसे पहले 1956 में ही अस्थि मज्जा प्रतिरोपण का सफल प्रयोग कर दिखाया था. उन्होंने बाद में यह सिद्ध किया कि अस्थि मज्जा लेने वाले व अस्थि मज्जा दाता दोनों की रोग प्रतिरक्षण प्रणालियां आपस में मेल खाती हैं और एक जैसी हैं. इससे गैर संबंधियों की अस्थि मज्जा को भी आसानी से प्रतिरोपित किया जाने लगा. इन दोनों वैज्ञानिकों को नोबेल से पुरस्कृत किए जाने पर नोबेल असेम्बली के एक सदस्य डा० सी० जी० ग्रोथ ने कहा कि एक क्रान्तिकारी उपचार की खोज की तकनीक का यह उचित सम्मान है क्योंकि डा० मुरे व डा० टॉमस की इस खोज के पहले यह बात सिर्फ विज्ञान कथाओं में ही पढ़ने को मिलती थी कि एक व्यक्ति के अंग को निकाल कर उसे दूसरे व्यक्ति में लगा दिया गया. डा० मुरे और डा० टॉमस के प्रति, जिन्होंने अंग प्रतिरोपण संभव किया, मानवता सदा के लिए ऋणी रहेगी.

लेकिन डा० मुरे और डा० टॉमस ने यह बात सपने में भी नहीं सोची होगी कि उनकी खोज का कोई अमानवीय पक्ष भी हो सकता है. जहां उनके इस कार्य को उनकी खोज के चालीस साल बाद मान्यता प्रदान करते हुए नोबेल से सम्मानित किया जा रहा है, वहां आज अंग प्रत्यारोपण इस स्थिति में पहुंच गया है कि मानव अंगों की बिक्री का धंधा जोरों से चालू हो गया है.

इसी वर्ष अमेरिका के एक अखबार 'वाशिंगटन पोस्ट' में प्रकाशित अपने लेख में 'फाउंडेशन आन इकोनोमिक ट्रेंड' के वैधानिक सलाहकार एंड्रयू किम ब्रेल ने लिखा था कि 'अमेरिकी लोग अपने-आपको काट-काट कर बेच रहे हैं'. 'मानवीय उत्पाद' के इस नए बाजार में खून, वीर्य और अंडाणुओं से लेकर सब कुछ बेचा जा रहा है. अमेरिका में प्रतिवर्ष 9000 गुर्दे, 1700 दिल, 2200 यकृत, 450 पित्ताशय, 70 फेफड़े के जोड़े और 30,000 कोर्निया प्रत्यारोपित किए जाते हैं. इसके एवज में ग्राहकों से लगभग एक अरब डालर की प्राप्ति होते है. गत मई तक के आंकड़ों के अनुसार अमेरिका में 20,610 लोग अंग-दान (या विक्रय का) इंतजार कर रहे थे. वहां 1984 में एक कानून बनाया गया था ताकि अंगों की दलाली का विज्ञापन देने वालों के खिलाफ कार्रवाई की जा सके. हां रक्त और वीर्य को इससे अलग रखा गया था.

डा० मुरे और डा० टॉमस के इस अत्यन्त क्रांतिकारी और मानवीय अनुसंधान के अमानवीय उपयोग को रोकने का एकमात्र कारगर उपाय यही लगता है कि समय रहते मानवीय अंगों के व्यापार के लिए दुनिया भर में उभरते नए बाजारों का तुरंत सफाया कर दिया जाए—इसके लिए कानूनों में जरुरी फेरबदल अभी से की जानी चाहिए—वरना हम में से कौन, कब और कहां किसके लिए बिकाऊ माल बन जाएगा कहना कठिन है. □

विश्व एड्स दिवस 1990 : स्त्रियां और एड्स

□ आर० के० अन्थवाल

□ विश्व में एड्स रोगियों की संख्या लगातार व तेजी से बढ़ रही है. सन् 1981 में पहली बार प्रकाश में आने के बाद से अब तक एड्स रोग लाखों लोगों को दबोच चुका है. नवीनतम जानकारी के अनुसार विश्व स्वास्थ्य संगठन को 157 देशों से 2,80,000 एड्स के मामलों की सूचनाएं मिली हैं. वैसे विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुमान से यह संख्या बारह लाख से कम नहीं है. यदि इसमें ऐसे वयस्क व्यक्तियों को शामिल कर दिया जाए जो ह्यूमन इम्यूनो डिफिशिएंसी वायरस (एच आइ वी) यानी एड्स वायरस से संक्रमित तो हो चुके हैं पर जिनमें रोग के लक्षण प्रकट नहीं हुए या रोग उभर कर सामने नहीं आया, तो यह संख्या 80 लाख से एक करोड़ के बीच हो सकती है और इसमें लगभग एक तिहाई यानी लगभग 30 लाख स्त्रियां बताई जाती हैं.

अनुमान है कि वर्ष 1990-91 के दौरान और पांच लाख लोग एड्स वायरस के संक्रमण के दायरे में आ जाएगें, जिनमें दो लाख संख्या तो सिर्फ स्त्रियों की होगी. 1992 के अंत तक एड्स वायरस संक्रमित स्त्रियों की संख्या बढ़ कर छः लाख होने का अंदाजा है.

इन चौंकाने वाले आंकड़ों से स्पष्ट है कि एड्स वायरस-संक्रमित स्त्रियों की संख्या जल्दी ही संक्रमित पुरुष व बच्चों की संख्या के बराबर पहुंच कर उसे भी पार कर जाएगी.

प्रारंभ में केवल अफ्रीका व अमेरिका की समस्या समझे जाने वाले एड्स के खूनी पंजे में आज पांचों महाद्वीप आ चुके हैं. किसी महाद्वीप, उपमहाद्वीप, देश, धर्म, जाति, रंग, भाषा व लिंग की सीमा को न मान कर यह स्त्री, पुरुष व बच्चों सभी को प्रभावित कर रहा है. एड्स की बढ़ती चुनौती से निपटने के लिए वैसे तो अब लगभग हर देश की सरकार सजग हो गई है पर देशांतरगामी यानी एक देश से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे देश में फैल सकने वाली इस महामारी को रोकने के लिए विश्व स्तर पर सम्मिलित प्रयास अत्यावश्यक हैं. एक विश्व व्यापी प्रयास से एड्स के रुकने की बात विश्व स्वास्थ्य संगठन के एड्स पर विश्व कार्यक्रम के अंतर्गत प्रचारित भी किया गया है. इसी कार्यक्रम के अंतर्गत सन् 1988 से अब तक हर साल पहली दिसंबर को 'विश्व एड्स दिवस' मनाया जाता है.

वर्ष 1990 के तीसरे विश्व एड्स दिवस का मुख्य विषय है 'स्त्रियां और एड्स'. इसके अंतर्गत इस साल स्त्रियों से एड्स के कारण जुड़ी समस्याओं, एड्स रोकथाम व एड्स पीड़ितों की देखभाल में स्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका आदि की ओर ध्यान आकर्षित किया जाएगा. इसके अलावा इस वर्ष 'हम सब पर एड्स के प्रभाव' को उजागर करते हुए अधिक से अधिक लोगों को एड्स संबंधी जानकारी पहुंचाने की योजना है क्योंकि जब तक एड्स वायरस के विरुद्ध कोई टीका विकसित नहीं कर लिया जाता या किसी कारगर इलाज का पता नहीं लगता तब तक एड्स संबंधी शिक्षा ही सबसे सुरक्षित टीका साबित हो सकती है. उचित जानकारी व आवश्यक सावधानियां बरत कर एड्स से निश्चित रुप से बचा जा सकता है और साथ ही दूसरों को भी बचाया जा सकता है.

स्त्रियों में एड्स के बढ़ते मामलों के आंकड़े सिर्फ संख्या तक सीमित नहीं हैं. एड्स उन करोड़ों महिलाओं की जिन्दगी से सीधे-सीधे गहरा संबंध रखता है जो स्वयं एड्स वायरस का शिकार हैं या एड्स वायरस संक्रमित पति की पत्नी या एड्स वायरस संक्रमित बच्चे की मां हैं या फिर मां बनने वाली हैं.

एड्स के रोगी का इस लाइलाज रोग की पीड़ा के अलावा इससे जुड़े कलंक, सामाजिक बहिष्कार, भेदभाव स्वजनों से बिछड़ाव, नौकरी छूटने, आर्थिक संकट जैसी अनेक समस्याओं से जूझना पड़ता है. स्त्रियों को तो ये समस्याएं और भी विकराल रुप में एड्स के साथ मिलती हैं, क्योंकि अधिकतर मामलों में स्त्रियों की परिवार और समाज में पुरुषों के मुकाबले कमजोर स्थिति होती है. सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देशों और विकसित देशों के पिछड़े लोगों में तो स्त्रियों की हालत और भी खराब है. उन्हें शिक्षा, नौकरी, स्वास्थ्य सेवाओं आदि का लाभ उठाने का भी उचित अवसर प्राप्त नहीं हो पाता. ऐसे में इन स्त्रियों को एड्स जैसे रोग और इससे जुड़ी समस्याओं की कितनी जानकारी हो सकती है इसका अंदाजा लगाया जा सकता है. घर की चारदीवारी के बाहर की चहल-पहल से अनजान ये स्त्रियां आसानी से पहले खुद एड्स का शिकार बन कर फिर इसे फैलाने का माध्यम बन सकती हैं इसलिए तमाम लोगों के साथ-साथ अधिकाधिक स्त्रियों को भी एड्स संबंधी जानकारी से अवगत कराना आवश्यक माना जा रहा है. विश्व स्वास्थ्य संगठन के महानिदेशक डा० हिरोशि नाकाजिमा के अनुसार 'सबके लिए स्वास्थ्य प्राप्त करने की कुंजी' स्त्रियां हैं.

महिलाएं एड्स की रोकथाम के अलावा एड्स पीड़ितों की देखभाल में अच्छी भूमिका निभा सकती हैं. महिलाएं स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता, शिक्षिका, सामाजिक कार्यकर्त्ता आदि के रुप में भी एड्स कार्यक्रम से जुड़ सकती हैं.

इस वर्ष महिलाओं से जुड़ी विशेष समस्याओं और एड्स रोकथाम में उनकी भूमिका की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए एड्स के विरुद्ध विश्वव्यापी अभियान में लगभग हर स्तर पर ज्यादा से ज्यादा स्त्रियों की भागीदारी की आवश्यकता को उजागर किया जाएगा.

भारत सहित विश्व के तमाम देशों में इस अवसर पर विश्व स्वास्थ्य संगठन संयुक्त राष्ट्र एजेंसियां और अंतरराष्ट्रीय महिला संगठनों के अलावा सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों व संस्थाओं द्वारा ग्रामीण स्तर से लेकर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर परिचर्चा, संगोष्ठियों तथा अन्य कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है. विश्व के कई समाचार पत्र एड्स विषय पर विशेष संस्करण निकाल रहे हैं और रेडियो तथा टी वी पर एड्स संबंधी कार्यक्रम व विशेषज्ञों के साक्षात्कार प्रसारित कर रहे हैं. विश्व स्वास्थ्य संगठन के महानिदेशक जेनेवा स्थित मुख्यालय में विशेष भाषण देगें जिसके बाद विश्व के कई देशों से आए विशेषज्ञों की गोल मेज सभा आयोजित की जाएगी. यह पहला मौका है जब विश्व एड्स दिवस को आवश्यकता के अनुरुप अत्यधिक सुसंगठित एवं व्यापक पैमाने पर मनाया जा रहा है.

अन्य महाद्वीपों के लाखों एड्स रोगियों की तुलना में एशिया में अब तक सिर्फ 790 एड्स रोगियों का पता चला है. भारत में अब तक 57 एड्स रोगियों की पहचान हुई है. लेकिन इस संख्या के ज्यादा होने का अनुमान है. पश्चिमी देशों के मुकाबले भारत जैसे विकासशील देशों में एड्स-परीक्षण की व्यापक सुविधा के अभाव में यह बात सही प्रतीत होती है. एड्स वायरस संक्रमित व्यक्तियों जिनमें रोग के लक्षण प्रकट नहीं हुए हों, की संख्या तो निश्चित रुप से कई हजारों में होगी क्योंकि उचित परीक्षण सुविधा व एड्स संबंधी जागरुकता के अभाव में लगभग स्वस्थ दिखने वाले इन लोगों पर ध्यान नहीं जाता है और वास्तव में संक्रमण फैलाने में ये लोग ही सबसे खतरनाक होते हैं. भारत में एक सर्वेक्षण के दौरान अधिक खतरे वाले वर्ग के अंतर्गत वेश्याओं, अत्यधिक यौनाचार करने वाले पुरुषों, नशेड़ियों, हीमोफीलिया के रोगियों, खून बेचने वाले व्यक्तियों आदि मे रक्त का परीक्षण किया गया. 30 जून 1990 तक ऐसे 4,95,785 व्यक्तियों में से 2,604 व्यक्तियों का एड्स वायरस संक्रमित पाया गया. निश्चिय ही कुल संक्रमित व्यक्तियों की संख्या चौकाने वाली होगी.

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुमान से सन् 1995 तक भारत में 60,000 एड्स के रोगी हो जाएंगे भारत जैसा देश जहां अभी प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधा भी हरेक के नसीब में नहीं है इस समस्या से कैसे निपटेगा यह चिंता का विषय है, इसके लिए लोगों में एड्स के प्रति जागरुकता लाना आवश्यक है. यदि आप अपने दुश्मन को ठीक से जान जाते हैं तो आपके जीतने की संभावना बढ़ जाती है. इसे देखते हुए आप अपनी बातों और चर्चा का विषय बनाकर, एड्स संबंधी जानकारी को अधिकाधिक लोगों को पहुंचा सकते हैं और समाज को शिक्षा जैसे हथियार से लैस करके 'एड्स' रुपी दुश्मन को परास्त कर सकते हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल्द ढाएगा कहर रग-रग में रेंगता एड्स का जहर

☐ रमेशदत्त शर्मा

☐ "मैं तो अपने खेत बेचकर खाड़ी के देशों में नौकरी के लिए बंबई आया था", उस राजस्थानी नौजवान ने रुंआसे स्वर में अपनी करुणकथा बयान की. "दुबई के लिए टिकट कटाया. सुबह जाना था. रात को कुछ दोस्त बोले कि चलो मौज मस्ती कर लें. मेरी जिन्दगी की पहली गलती थी. वह दुबई पहुंचा तो हवाई अड्डे से ही वापस कर दिया गया."

इस भारतीय नौजवान का खून जांचा गया तो उसमें 'एड्स' का विषाणु मौजूद था. इसीलिए उसे दुबई में प्रवेश नहीं करने दिया गया. अपने परिवार का एक मात्र कमाऊ सदस्य यह भोलाभाला ग्रामीण युवक अब मौत की घड़ियां गिन रहा है क्योंकि एड्स का अभी तक न तो कोई टीका निकला है और न ही कोई दवा. एक बार रोग लग गया तो बस मौत ही उससे छुटकारा दिला सकती है.

इस नौजवान ने तो खैर, कोठे पर जाने का कुकर्म किया था, परंतु पांच दिन की बेबी तो बिल्कुल बेकसूर थी. 8 जून 1990 को जब उसे दिल्ली के कलावती सरन शिशु चिकित्सालय में लाया गया तो बेबी बिल्कुल पीली पड़ी हुई थी. उसे एक किस्म का पीलिया हो गया था—हाइपरविलिरुबिनिमिया. इस रोग में पित्त (बाइल) में बनने वाला 'विलिरुबिन' प्रोटीन ज्यादा मात्रा में बनकर खून में जमा हो जाता है और हीमोग्लोबिन बनने में बाधा डालता है. पांच दिन की बेबी को इस रोग से मुक्त करने का एक ही उपचार था कि उसकी देह का तमाम खून बदल डाला जाए. केवल दो यूनिट खून चाहिए था. लेकिन मूर्ख माता-पिता में से कोई भी अपनी बच्ची को खून देने को तैयार नहीं था. उस भूल के लिए वे जीवन भर पछताएंगे, क्योंकि बाजार से जो खून खरीदा और चढ़ाने के बाद उसे जांचा गया तो उसमें 'एड्स' का विषाणु पलता पाया गया.

भारत में जिस पहले एड्स रोगी की मौत हुई, वह भी खून चढ़वाने से रोगी बना था. वह सेठ अमेरिका से अपने दिल की बाइपास सर्जरी कराके लौटा था और वहीं से रोग लगा बैठा. एड्स—यानी 'एक्वायर्ड इम्यूनोडेफिशिएंसी सिण्ड्रोम', 'एच आई वी' अर्थात् 'ह्यूमन इम्यूनोडेफिशिएंसी वाइरस' से फैलता है. यह मुख्य रुप से लैंगिक सहवास से फैलने वाले इस विषाणु को फैलाने में मर्द औरतों से आठ गुना ज्यादा समर्थ हैं. एड्स ग्रस्त खून चढ़वाने, एड्स ग्रस्त खून से बनी दवाएं लेने, एड्स ग्रस्त रोगी द्वारा इस्तेमाल की गई सिरिंज इस्तेमाल करने और एड्स की रोगी मां से भी बच्चे में एड्स आ सकता है.

इस समय पूरे भारत में कुल 720 ब्लड बैंक हैं जो हर साल करीब 15 लाख यूनिट खून जमा करते है. इनमें से सरकारी अस्पतालों में तो अब सभी रक्तदाताओं का खून लेने से पहले उसकी जांच की जाती है कि उसमें एड्स विषाणु तो नहीं है. कायदे से निजी ब्लड-बैंकों को भी करनी चाहिए. लेकिन एलाइसा-टेस्ट करने वाली मशीन दो लाख रुपए में आती है. हर बार टेस्ट करने पर भी काफी खर्च आता है. इस खर्च को भला खून बेचने वाले दुकानदार क्यों उठाने लगे ? दिल्ली में बड़े छोटे करीब 30 ब्लड बैंक है. इनमें से छह निजी ब्लड-बैंकों में से चार हर साल करीब 10 हजार यूनिट खून बेचते हैं. दिल्ली के अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में हर साल 5 हजार यूनिट खून कम पड़ता है. सफदरजंग अस्पताल को 17,800 यूनिट खून हर साल चाहिए और इकट्ठा हो पाता है केवल 4250 यूनिट. भारतीय रेडक्रास सोसायटी केवल 2250 यूनिट खून दे पाती है. पिछले साल सोसायटी ने साल भर में कुल 27 हजार यूनिट खून जमा किया था. बाकी खून मरीजों के सगे-संबंधियों को जहां-तहां से जुटाना पड़ता है. सफदरजंग अस्पताल को ही पिछले साल 11 हजार यूनिट खून खरीदना पड़ा था.

खून बेचने वाले गरीब, भिखमंगे खून बेचकर कोठों पर जाते है और वहीं से एड्स लगा बैठते हैं. जैसे ही उनके खून में एड्स के विषाणु पकड़े गए वे उस अस्पताल या ब्लड बैंक की जगह कहीं और बेचना शुरु कर देते हैं. अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान की एड्स अनुसंधानशाला ने युवा वैज्ञानिक डा॰ वाई॰ एन॰ सिंह ने पांच बड़े ब्लड-बैंकों के सर्वेक्षण से पता लगाया है कि वहां खून बेचने वाले पेशेवर लोगों में दस एड्स के रोगी थे. तलाशने पर मालूम हुआ कि लालकिले के पीछे और चांदनी चौक की गलियों के गरीब लोग थे ये. ये सब कोठों पर जाते थे. पता चलते ही रक्तदाता दिल्ली से गायब हो गए और आस पास के शहरों-कस्बों में खून बेचने लगे. खूनी धंधे के साथ ही संक्रमित खून से एड्स फैलने का खतरा बढ़ता जा रहा है. एक अप्रैल 1989 से 31 मार्च 1990 के बीच महानगरों में स्थित जांच केन्द्रों में साढ़े तीन लाख से ज्यादा बोतल खून की जांच की गई तो करीब 3600 नमूनों में 'एच आई वी' मौजूद था.

अक्तूबर 1985 से 31 मार्च 1990 तक लगभग 4 लाख 61 हजार स्त्री-पुरुषों की जांच की गई तो 2100 से अधिक में 'एड्स' का विषाणु पलता पाया गया. इस तरह संक्रमण-दर 4.7 प्रति हजार बैठती है. एड्स

पूरे देश में दिनों दिन 'एड्स' का आतंक फैलता ही जा रहा है. बंबई और मद्रास के बाद अब दिल्ली इसकी चपेट में है. वेश्याओं के अलावा खून की बोतलों से भी एड्स पनप रहा है. क्या ऐसे में सरकार और संचार माध्यम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहेंगे कि चेतेंगे ? समय रहते नहीं चेते तो सन् दो हजार तक एड्स सबसे विकट नर-संहारक बन जाएगा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का वाइरस खून में पूरी तरह सक्रिय होने में चंद महीनों से लेकर 5-7 या 10 साल तक ले सकता है. औसतन 7 साल लगते हैं. इस बीच बिना खून की जांच के पता ही नहीं चलेगा कि सामने वाला एड्स वाहक है या नहीं. एक बार उग्र रुप धारण करते ही एड्स का वाइरस खून में मौजूद रोगरक्षक सफेद कोशिकाओं में से खासतौर से टी-कोशिकाओं पर अपना कब्जा जमा लेता है. इस तरह मामूली निमोनिया भी एड्स रोगी की जान ले लेता है क्योंकि फिर किसी भी दवा का कोई असर नहीं होता.

भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् के महानिदेशक डा० अवतार सिंह पेंटल ने एड्स पर चर्चा के एक कार्यक्रम के सिलसिले में की गई एक भेंट के दौरान बड़े दर्द से कहा था–"बड़ी देर कर दी है आपने. अब तो वक्त निकल गया. एड्स हर तरफ से हमला बोल रहा है, इस देश पर". डा० पेंटल के अनुसार "बंबई में इस समय करीब एक लाख वेश्याएं हैं. हर वेश्या प्रतिदिन कम से कम दस ग्राहक निपटाती है. इनमें से लगभग 36 हजार वेश्याएं एड्स की शिकार हैं. अंदाज लगाइए कि बंबई में यह रोग कितनी तेजी से फैल रहा होगा."

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार सन् 1996 तक बंबई की हर तीसरी गृहिणी 'एड्स' का शिकार होने लगेगी. यह स्थिति सचमुच बड़ी भयावह है. उस समय तक सारी दुनिया में 80 से 100 लाख स्त्री-पुरुष एड्स विषाणु को अपने खून में पाल रहे होंगे. विश्व स्वास्थ्य संगठन के एड्स-नियंत्रण कार्यक्रम के अध्यक्ष डा० माइकेल मर्सन के अनुसार विकासशील देशों में यह रोग बड़ी तेजी से फैल रहा है. अफ्रीका के सहारा से नीचे के इलाके में सन् 1987 में 25 लाख एड्स-वाहक बताए गए थे. अब यह संख्या 50 लाख से ऊपर जा पहुंची है. पहले '50 वयस्क स्त्री-पुरुष में 1' रोगी का अनुपात था, जबकि अब '40 में एक' तक बढ़ गया है. इसी तरह दो साल पहले एशिया में जहां-तहां इक्का-दुक्का एड्स रोगी सुना जाता था, वहीं अब एशिया में भी एड्स का वाइरस 5 लाख के करीब स्त्री-पुरुषों की नस-नस में दौड़ रहा है. अगर ठोस कदम तुरंत नहीं उठाए गए तो सन् दो हजार तक एड्स विश्व की सबसे भयंकर महामारी का रुप धारण कर लेगा. लैंगिक संबंधों से रोग के फैलाव में इस दशक में छह गुनी वृद्धि होने की आशंका है. अनुमान है कि इस दशक के अंत तक कम से कम 30 लाख स्त्रियां और बच्चे एड्स की एड़ियों तले कुचल कर दम तोड़ देंगे.

बहुत से लोग सोचते हैं कि हम तो किसी कुकर्म में फंसे नहीं हैं, फिर हमें 'एड्स' क्यों हो जाएगा ? क्या कोई जानता है कि कब किसे चोट, दुर्घटना या रोग के कारण अस्पताल जाकर खून चढ़वाने की नौबत आ जाएगी और खून की किस बूंद में छुपा 'एच आई वी' उसे डस लेगा ? इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि केवल इस्तेमाल के बाद फेंकने वाली सिरिंज से ही खून निकलवाएं या इंजेक्शन लगवाएं.

भारत में अब खून से बनने वाली दवाएं बनाने पर पाबंदी है क्योंकि बहुतों में 'एच आई वी' पाया गया था. ऐसी सभी दवाएं कड़ी जांच-पड़ताल के बाद बाहर से आ रही हैं. इसके अलावा रक्त-दान भी किया जाना चाहिए ताकि अस्पतालों को खून न खरीदना पड़े. हाल में ही सरकार ने 30 करोड़ रुपए के प्रावधान से एड्स-नियंत्रण कार्यक्रम शुरु किया है. पूरे देश में 43 निगरानी और जांच केंद्र तथा पांच संदर्भ केंद्र कार्यरत हैं.

हमें एड्स रोगियों के प्रति सामाजिक बहिष्कार की जगह सहानुभूति भी जगानी होगी. जिन्हें एड्स के प्रकोप का सामना करना पड़ रहा है उनके लिए विशेष एड्स क्लिनिक खुलने चाहिए. एड्स-ग्रस्त वेश्याओं को पेंशन देकर धंधा छुड़ाने का प्रस्ताव अभी कागजों में अटका है. सभी संचार माध्यम भी एड्स के प्रति जन चेतना जगाने का काम अभी भूले बैठे हैं. उधर देश की नस-नस में तेजी से एड्स का जहर फैलता जा रहा है. □

दुनिया के देशों में दस्तक दे रही तीसरी महामारी–एड्स

□ महेन्द्र कुमार, हेमचन्द्र पगारे

□ लगभग एक दशक पूर्व चिकित्सा विज्ञान में पहली बार एड्स अर्थात् एक्वायर्ड इम्यून डेफिशिएन्सी सिन्ड्रोम का उल्लेख किया गया था. अचानक चिकित्साशास्त्रियों को पता चला कि एच० आई० वी० नामक विषाणु से संक्रमित इस बीमारी का चिकित्सा विज्ञान के पास कोई इलाज नहीं है. सन् 1981 के अंत तक इस बीमारी के कारण अकेले अमेरिका में 248 लोगों की मृत्यु हो गई तथा उसके अनेक प्रकरण यूरोप, अफ्रीका और हायती में दर्ज किए गए. धीरे-धीरे यह ला-इलाज मर्ज विश्व के सभी विकसित तथा विकासशील देशों में फैलता गया और अब स्थिति यह है कि यदि शीघ्र ही इसका कोई अक्सीर उपचार नहीं खोज लिया गया तो इस सदी के अंत तक लगभग 50 लाख लोगों के इससे संक्रमित हो जाने या मर जाने की आशंका है.

इस बीमारी के कारणों में सर्वप्रथम कहा गया कि यह विषाणु एक से ज्यादा व्यक्तियों के साथ संभोग तथा विशेष रुप से पश्चिम के सम्पन्न समाजों में यौन-उच्छृंखलता के कारण फैलता है. जैसा कि स्वाभाविक ही था, एड्स की बीमारी की सांघातिकता को देखते हुए सभी देशों में इसके कारण, निदान तथा उपचार के लिए व्यापक कार्यक्रम हाथ में लिए गए और उसके बारे में तथ्यों और भ्रांतियों, दोनों के खंडन-मंडन का सिलसिला प्रारंभ हुआ. विश्व स्वास्थ्य संगठन के नेतृत्व में इससे बचाव के उपाय विभिन्न देशों की सरकारों ने प्रारंभ किए तथा आम जनता को शिक्षित करना भी प्रारंभ किया. जहां, वैज्ञानिक-समुदाय तथा सरकारें इसके प्रत्यक्ष पहलुओं से निपटने में लगे हैं, वहीं लंदन स्थित स्वयंसेवी तथा मानव-अधिकार संस्था पेनोस ने भी एड्स के सभी पहलुओं के अध्ययन का एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एड्स जिस के प्रति 'तीसरी महामारी' की संज्ञा दी गई है, आज सारी दुनिया में सामाजिक तथा राजनीतिक प्रतिक्रियाएं हो रही हैं. इस तथ्य को लन्दन स्थित पर्यावरण एवं मानव अधिकार संस्थान 'पोनोस' ने एक पुस्तक 'द थर्ड ऐपिडेमिक : द रीपकर्शन्स ऑफ द फियर ऑफ एड्स' में रेखांकित करते हुए कहा है कि इनके द्वारा भी सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए भारी खतरा उत्पन्न हो रहा है. पुस्तक बतलाती है कि एड्स पीड़ित व्यक्ति तथा उसके साथ काम करने वालों को समाज द्वारा ठुकराए जाने, दोषी ठहराए जाने तथा कलंकित किए जाने के कारण जहां इस रोग की रोकथाम में दिक्कतें आती हैं वहीं उनका उपचार भी बेअसर हो जाता है.

कार्यक्रम प्रारंभ किया. इन्हीं व्यापक अध्ययनों को ''द थर्ड एपिडेमिक—रिपर्कशन्स ऑफ द फियर ऑफ एड्स'' नामक पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है.

जहां तक पुस्तक के शीर्षक 'द थर्ड एपिडेमिक' का सवाल है, उसके संपादकों का कहना है कि एड्स नामक महामारी के तीन चरण हैं. पहली महामारी संभवतः पचास या साठ के दशक में किसी समय प्रारंभ हुई. सन् 1980 के पूर्व तक वह अदृश्य रुप से, विश्व के एक-दूसरे से काफी फासले पर स्थित स्थानों में चुप-चाप फैलती रही. यह पहला अदृश्य संक्रमण इस समय भी जारी है और विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक जो अनुमानतः 50 लाख व्यक्ति इससे पीड़ित हुए उनमें से दस प्रतिशत या तो मर चुके हैं या उनमें इनके प्रत्यक्ष लक्षण उभर आए हैं.

दूसरी महामारी एड्स या एच० आई० वी० व्याधि के प्रत्यक्ष लक्षण के साथ 1980-81 में शुरु हुई. जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस दूसरी महामारी के कारण सन् 2000 तक और 50 लाख लोग इससे पीड़ित हो सकते हैं. तीसरी महामारी, जिससे पुस्तक का शीर्षक प्रेरित है, का सर्वप्रथम उल्लेख विश्व स्वास्थ्य संगठन के विश्व एड्स कार्यक्रम के पूर्व अध्यक्ष डा० जोनाथन मान ने संयुक्त राष्ट्र में दिए गए अपने भाषण में किया था. उनका कहना था कि ''एड्स की बीमारी और उसके मरीजों के प्रति जिस तरह की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रतिक्रियाएं सामने आई हैं वे उतनी ही बड़ी चुनौती विश्व के समक्ष उपस्थित कर रही है जितनी की स्वयं यह बीमारी कर रही है.'' यह तीसरी महामारी भी इतनी भयानक है कि उसने परिवारों और मित्रों को जहां विभाजित भी किया और एक भी, वहीं देशों की सरकारों तथा विधायिकाओं के सामने कुछ बहुत ही त्रासद विकल्प भी पेश किए हैं. इतना ही नहीं खुद चिकित्सा विज्ञानियों के पेशे में भी एड्स ने कई प्रकार की दरारें पैदा की हैं.

तीसरी महामारी की चुनौतियां

एड्स के प्रति विभिन्न समाजों में जो प्रतिक्रियाएं हुई हैं वे हमारी निर्णय-बुद्धि, मानवता और करुण-भाव के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती हैं. चूंकि एड्स को एक संसर्गजन्य रोग माना जाता है उसने समाज के हर स्तर पर, घरों, परिवारों, बेडरूमों से होते हुए अस्पतालों तथा राष्ट्रपतियों के प्रासादों में एक अजीब धर्म संकट की स्थिति खड़ी कर दी. एड्स की बीमारी ने जो कुछ नाजुक मुद्दे हमारे सामने उठाए हैं वे इस प्रकार हैं :

* क्या किसी व्यक्ति को काम पर रखने के पूर्व उसके नियोजक द्वारा यह जांच करना जरुरी है कि कहीं व्यक्ति विषाणु-संक्रमित तो नहीं है?
* क्या किसी समाचार-पत्र द्वारा इस तथ्य को प्रचारित किया जाना चाहिए कि किसी खास जातीय-समुदाय में एड्स के मरीज अन्यों की अपेक्षा ज्यादा संख्या में हैं?
* यदि कोई एड्स पीड़ित व्यक्ति बावर्ची का काम कर रहा है तो क्या उसे नौकरी से निकाल दिया जाना चाहिए?
* क्या किसी शहर को यह अधिकार है कि वह वहां की वेश्याओं की स्वतंत्रता इस डर से छीन ले कि वे अन्य लोगों को संक्रमित कर सकती है?
* क्या कोई शिक्षक किसी एड्स पीड़ित छात्र को अपनी कक्षा से इस वजह से बहिष्कृत कर सकता है कि उससे अन्य छात्र या उसके माता-पिता भयभीत हो जाएंगे?
* क्या किसी डाक्टर के लिए यह उचित होगा कि वह किसी मरीज के संक्रमित होने का पता लगते ही उसके पति/पत्नी या साथी (?) को इसकी सूचना दे दे?

इन सवालों के जवाब आसान नहीं हैं. असली मुद्दा यह है कि आप किसे ज्यादा अहमियत देंगे : समाज के समग्र कल्याण को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या एक व्यक्ति के कल्याण को. तीसरी महामारी हमारे भीतर निहित सर्वश्रेष्ठ या निकृष्टतम दोनों तरह की प्रवृत्तियों को उभार सकती है. लेकिन यह तीसरी महामारी केवल पूर्वाग्रह या असहिष्णुता का ही प्रश्न नहीं है. इससे प्रत्यक्ष रुप से सार्वजनिक स्वास्थ्य और एच॰ आई॰ वी॰ संक्रमण के प्रसार का मुद्दा जुड़ा हुआ है. डा॰ मान की राय में "भेदभाव करने तथा किसी को कलंक लगा देने से सार्वजनिक स्वास्थ्य को ज्यादा क्षति पहुंचने की संभावना है. अतः एच॰ आई॰ वी॰ के मरीज के मानव-अधिकार तथा गरिमा का संरक्षण कोई विलासिता की बात नहीं है. वह एक अनिवार्य आवश्यकता है. इसे व्यक्ति के विरुद्ध समष्टि के अधिकारों का मामला नहीं समझा जाना चाहिए".

बहरहाल, संक्षेप में 'एड्स' व्याधि तथा उसके मरीजों के प्रति विभिन्न देशों, समाजों और समूहों की प्रतिक्रियाएं जानना दिलचस्प होगा. यों भी पुस्तक के संपादकों का उद्देश्य फिलहाल इन प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण करना ही है, कोई तुर्त-फुर्त निष्कर्ष निकालना नहीं.

पुस्तक के पहले सात अध्यायों में एड्स एच॰ आई॰ वी॰ की बीमारी के बारे में कुछ तथ्यों को प्रस्तुत करने के साथ ही कई भ्रांतियों और पूर्वाग्रहों का निराकरण भी किया गया है. मसलन, एड्स के संक्रमित होने और वास्तविक बीमारी के होने में सात से बीस वर्ष का समय लग सकता है, लेकिन एक बार एड्स विकसित हो जाने के बाद वह चूंकि रोग-प्रतिरोध प्रणाली को क्षति-ग्रस्त कर देता है उसके कारण किसी न किसी संक्रामक रोग से उसकी मृत्यु निश्चित ही होती है. लेकिन संक्रमण मच्छर, हाथ मिलाने, पाखानों, टेलीफोन, आलिंगन-चुम्बन और खांसी आदि से नहीं होता. संक्रमण के सबसे सामान्य रास्ते संभोग (यौन संपर्क) तथा विषाक्त खून देना है. इसीलिए अधिकांश देशों में रक्त-दाताओं के खून की नियमित जांच की जाती है. वैसे अस्पतालों के वातावरण में भी संक्रमण हो जाने के प्रकरण देखने में आए हैं और इसीलिए निजी अस्पताल और क्लिनिक ऐसे रोगी को स्वीकार नहीं करते. माताओं द्वारा भी शिशुओं के संक्रमित हो जाने का अंदेशा रहता है. दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह सामने आया है कि एड्स के शिकार अमीरों के बजाए गरीब ही ज्यादा होते हैं. इसका कारण एक यह भी है कि इसका इलाज उनकी हैसियत के बाहर होता है.

एड्स के बारे में व्याप्त भ्रांतियों तथा जानकारी के अभाव के कारण कुछ बहुत विचित्र प्रतिक्रियाएं भी सामने आई हैं जैसे "काले शैतानों, अपने देश वापस जाओ", के नारे, एड्स मरीजों के हाथों पर गुदना बना देना, उनकी अलग बस्तियां बसा देना, या उन्हें सिर्फ अस्पतालों में ही रखने आदि के सुझावों के अलावा मिस्र के एक धार्मिक नेता की राय में तो सारे 'एड्स मरीजों' को मार डाला जाना चाहिए ताकि वे अन्य लोगों को संक्रमित न कर सकें. बेल्जियम के प्रधानमंत्री ने सारे अफ्रीकी छात्रों के परीक्षण की हिमायत करते हुए कहा कि "हमें अपने लोगों की सुरक्षा करनी होगी. हमें अपना वही पैसा खर्च कर ऐसे बाहरी लोगों को नहीं आमंत्रित करना चाहिए जो हमारे ही लोगों की जानें खतरे में डाले."

इसके विपरीत कुछ सकारात्मक प्रतिक्रियाएं भी हैं. संयुक्त राष्ट्र महासचिव जेक्वियर पेरेज दे क्वेयार के अनुसार "हमें यह स्पष्ट रुप से कह देना चाहिए कि हमारी जंग मर्ज के विरुद्ध है, व्यक्तियों के विरुद्ध नहीं." दक्षिण अफ्रीका के चिकित्सा अनुसंधान संस्थान के डा॰ सेफ्रिस के अनुसार, "एड्स तो एड्स होता है. अफ्रीकी एड्स या समलैंगिक एड्स जैसी कोई बात नहीं होती. यह एक बीमारी है, और वह इंसानों को होती है." युगांडा की राष्ट्रीय एड्स समिति के अध्यक्ष के अनुसार, "हमें पूर्वाग्रहों का पूर्वानुमान कर उन्हें रोकना चाहिए. गलत जानकारी तथा उत्पीड़न के विरुद्ध स्वस्थ और अस्वस्थ, दोनों को संरक्षण मिलना चाहिए".

अमेरिका के विभिन्न राज्यों ने स्वयंस्फूर्त तथा गोपनीय रक्त परीक्षण के बारे में नियम बनाए हैं लेकिन इनके बारे में भी मिश्रित प्रतिक्रियाएं हुई है. दरअसल इन परीक्षणों का उपयोग और दुरुपयोग दोनों हो रहा है. जहां रोग की रोकथाम की दृष्टि से ये उपयोगी हैं, वहीं कुछ देशों में केवल विदेशियों, सैनिकों, वेश्याओं, कैदियों आदि को ही इन परीक्षणों से गुजरना पड़ता है.

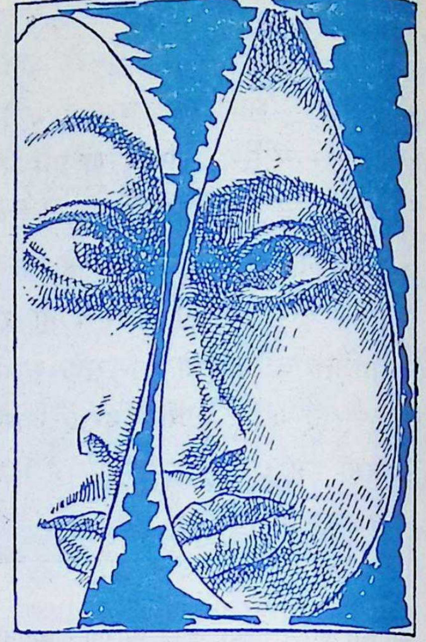

व्यक्तिगत प्रतिक्रियाएं

ब्रिटिश छात्र बेन, जिसे स्कूल से निकाल दिया गया: " एड्स मरीज को बीमारी के साथ-साथ विपरीत वातावरण से भी जूझना पड़ता है". एक अमेरिकी सैनिक के मुताबिक "एड्स मरीज के परिवार तथा मित्रों के साथ भी अछूतों जैसा बर्ताव होता है". न्यूयार्क के एक अस्पताल में एक नवजात शिशु को कोई संभालने को तैयार नहीं था क्योंकि उसकी मां आयशा "एच॰ आई॰ वी॰ पॉजिटिव" थी. लेकिन कामगारों के अधिकारों के लिए कार्यरत फ्रांस के मजदूर संघ एड्स पीड़ितों के लिए भी लड़ रहे हैं. इसके विपरीत स्वास्थ्य कर्मियों के बीच भी एड्स संक्रमण का भय तथा पूर्वाग्रह कम नहीं है. सिंगापुर ने इन्हें सही जानकारी देने के लिए एक पुस्तिका प्रकाशित की है. कई अध्ययनों से बार-बार पता चला है कि स्वास्थ्यकर्मियों के उनके काम के दौरान संक्रमित हो जाने की संभावना काफी कम होती है. वैसे पूर्ण सुरक्षा तो अंतरिक्ष-पोषाकों या खदानों आदि में लगाए जाने वाले मुखौटों से ही मिल सकती है. लेकिन ये उपाय महंगे तथा तवालत भरे होते हैं. दरअसल एड्स हमारी स्वास्थ्य प्रणालियों को भी उजागर करता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कानूनी मुददे और सरकारों की प्रतिक्रियाएं

विभिन्न देशों में भिन्न प्रतिक्रियाएं रही हैं. जहां जिम्बाब्वे मरीजों को अलग-थलग रखने के विरुद्ध हैं, वहीं अधिकांश देशों की सरकारों ने एड्स प्रसार को रोकने के लिए कानून बनाने में काफी संयम से काम लिया है. वे जनता को शिक्षित करते हुए उसे स्वयं सारी खबरदारियां बरतने को प्रेरित करना चाहती हैं. भारतीय चिकित्सा अनुसंधान संस्थान के महानिदेशक डा० ए० एस० पेंटल की उनके इस सुझाव के कारण काफी आलोचना की गई कि विदेशियों तथा आ-प्रवासी भारतीयों के साथ सैक्स-संबंधों पर कानूनी बंदिश लगा दी जानी चाहिए. अंतरराष्ट्रीय आवागमन इस भारी मात्रा में होता है कि व्यवस्थित परीक्षण में त्रुटि होने की काफी संभावना रहेगी. उससे एक झूठा सुरक्षा-भाव ही पैदा होगा. दक्षिण कोरिया ने जो कानून बनाए हैं उनमें एड्स परीक्षणों को कुछ विशिष्ट पेशों या ''अति जोखिम वाले धंधों'' पर केंद्रित किया गया है.

विभिन्न महाद्वीपों से एड्स के प्रति प्राप्त कुछ प्रतिक्रियाएं बड़ी दिलचस्प हैं. सोवियत रुस के लोग इसे ''नाकारों की बीमारी'' कहते हैं वहीं थाइलैंड के लोग उसे ''फॉरेन'' बीमारी कहते हैं. फिलीपींस में सारा नज़ला ''आतिथ्य करने वाली'' महिलाओं पर गिरा है. भारत में, मद्रास की वेश्याओं को ताले में बंद करके रखा गया है. हायती में इस बीमारी ने इतना उग्र रुप धारण कर लिया है कि वहां अजीब-सा सन्नाटा इसके बारे में छा गया है. कोई उसके बारे में बात भी नहीं करता. अफ्रीकी देशों के पास इस मर्ज से लड़ने के लिए संसाधनों की भारी कमी है.

'थर्ड एपिडेमिक' के बाद के अध्यायों में उसके कानूनी, मानव-अधिकार तथा अंतरराष्ट्रीय संगठनों द्वारा उठाए गए कदमों का विस्तृत विवरण दिया गया है तथा इस तथ्य को रेखांकित किया गया है कि जहां एड्स की महामारी ने भय और नफरत को जन्म दिया है वहीं लोग अब इन दोनों भावनाओं पर काबू पाने के लिए भी उठ खड़े हुए हैं. जहां मूल व्याधि का कोई चिकित्साशास्त्रीय उपचार अभी तक नहीं हासिल हुआ है, वहीं इस तीसरी महामारी से लड़ने के लिए हमारे पास सहिष्णुता, समझदारी तथा सूचना के सशक्त हथियार मौजूद हैं. पेनोस संस्थान का यह प्रकाशन इन्हीं मानवीय-गुणों को उभारने की दिशा में एक महत्वपूर्ण योगदान है. **(सप्रेस द्वारा पेनोस, पर्यावरण कक्ष एवं गांधी शांति केंद्र के सहयोग से प्रस्तुत).** □

कैंसर की जीन-चिकित्सा

□ चन्द्रभान शर्मा

□ कैंसर! वह असाध्य रोग जिसकी परिकल्पना मात्र से ही शरीर में कम्पन पैदा हो जाती है, जिसके निदान में प्रयुक्त की जाने वाली समस्त विधियां इससे छुटकारा दिलाने में अब तक असमर्थ रही हैं. कुछ नई जैव-प्रौद्योगिक तकनीकों के आगे अब थोड़ा सिमटने सा लगा है. अभी तक केवल अनुसंधान रिपोर्टों में चर्चित और प्रयोगशाला स्तर तक सीमित आनुवंशिक चिकित्सा प्रणाली का अब मनुष्यों के रोगों के निवारणार्थ उपयोग किए जाने का समय आ गया है.

अमेरिका के नेशनल कैंसर इंस्टिट्यूट के सर्जन स्टीवेन ऐ० रोजेनबर्ग सबसे पहले चिकित्सक-वैज्ञानिक होंगे जिन्हें उनके द्वारा विकसित की गई जीन-चिकित्सा विधि को कैंसर रोगियों के उपचार में प्रयुक्त करने की अनुमति दी जाने वाली है. काफी समय से इस विधि की जांच नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ हेल्थ की मानव जीन-चिकित्सा उपसमिति द्वारा की जा रही थी. गत 30 जुलाई को उपसमिति ने इस विधि को मान्यता दे दी.

कैंसर एक ऐसा रोग है जिसमें शरीर के किसी भी भाग की कोशिकाएं अनियंत्रित रुप में विभक्त होती चली जाती हैं और उस भाग में गांठ या अर्बुद्ध (ट्यूमर) बन जाता है. इन अर्बुद कोषों में एक विशेष प्रोटीन का निर्माण होता है जो उनके लिए विष का कार्य करता है. साथ ही अर्बुद के कुछ कोष अपनी पृष्ठ कोशिकाओं से अलग होकर रक्त प्रवाह द्वारा शरीर के अन्य भागों में पहुंच पाते हैं और वहां भी नए अर्बुद पैदा करते हैं. धीरे-धीरे गांठों की संख्या शरीर में इतनी अधिक हो जाती है कि शरीर उन्हें बर्दाश्त नहीं कर पाता और रोगी की मृत्यु हो जाती है. अब तक इस रोग का निदान विभिन्न विधियों जैसे विकिरण, रासायनिक औषधियों आदि द्वारा किया जाता रहा है परन्तु इनसे अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई. आनुवंशिक चिकित्सा प्रणाली में रोग उत्पन्न करने वाले जीनों को सामान्य जीनों से बदल दिया जाता है या फिर ऐसे जीन से जो पदार्थ का निर्माण कर सके जिसको शरीर के किसी भाग की आवश्यकता हो. जैव प्रौद्योगिकी से उत्पन्न यह प्रणाली वास्तव में एक आश्चर्यजनक उपलब्धि है.

अर्बुद को अपने विकास के लिए सतत् आक्सीजन तथा पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है जो उसे रक्त से मिलते हैं. यदि उसे किसी प्रकार इन आवश्यक पदार्थों का मिलना रोक दिया जाए तो वह (ट्यूमर) पहले काला पड़ जाएगा और फिर सिकुड़ कर नष्ट हो जाएगा. रोजेनबर्ग ने ज्ञात किया कि यदि कैंसर-ग्रसित चूहों के रक्त में अर्बुद परिगलन घटक नामक प्राकृतिक दर्द-निवारक पदार्थ प्रवेश करा दिया जाए तो उनके अर्बुद कुछ घंटों या कभी-कभी कुछ मिनटों में ही सिकुड़ कर नष्ट हो जाते हैं. परंतु मनुष्यों में अभी यह संभव नहीं हो पाया है.

रोजेनबर्ग इस उद्देश्य की प्राप्ति एक अन्य मार्ग से करना चाहते हैं, यानी जीन-चिकित्सा प्रणाली द्वारा वे अर्बुद परिगलन घटक की एक बड़ी मात्रा इस पदार्थ का निर्माण करने वाले जीन को, ऐसी लसिका-कोशिकाओं (लिम्फोसाइट्स) के अंदर डाल कर अर्बुद तक पहुंचाना चाहते हैं जो कैंसर कोषों की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक रुप से आकर्षित होती है.

रोजेनबर्ग द्वारा विकसित विधि में रोगी के अर्बुद से कुछ लसिका-कोशिकाएं प्राप्त की जाती हैं. उन्हें फिर 'इन्टरल्यूकिन-2' नामक प्रभावशाली वृद्धि उद्दीपक के सहयोग से 'अर्बुद्द में प्रवेश करने वाली लसिका-कोशिका' के रुप में प्रतिकृत किया जाता है. दूसरी ओर अर्बुद परिगलन घटक जीनों को क्लोनिंग विधि द्वारा बड़ी मात्रा में प्राप्त करके रिट्रो-वायरस नामक विषाणु में प्रवेश कराया जाता है. ज्ञात हो कि कुछ रिट्रो-वायरस विषाणुओं में जीनों की प्रतिकृति पैदा करनी की क्षमता नहीं होती और उनमें जीन ज्यों के त्यों रहते हैं. अब इस विधि का अगला चरण प्रारंभ होता है. जीन-युक्त विषाणुओं को पहले से तैयार किए गए 'अर्बुद में प्रवेश करने वाली लसिका-कोशिकाओं से संवर्ध में मिला दिया जाता है. विषाणु कोशिकाओं में प्रवेश कर जाते हैं और अंदर का जीन लसिका-कोशिका के आनुवांशिक पदार्थ-डी एन ए से जुड़ जाता है. यहां इसमें अर्बुद परिगलन घटक का निर्माण करने की क्षमता पैदा हो जाती है. जब जीन-युक्त लसिका कोशिकाओं को कैंसर के रोगी के रक्त में मिलाया जाता है तो वे सीधे अर्बुद में जाकर एकत्रित हो जाती हैं तथा उसके रक्त संवहन को अवरोधित कर अर्बुद को नष्ट कर देती है.

'दि न्यू इंगलैण्ड जनरल ऑफ मेडिसिन' में प्रकाशित अपनी रिपोर्ट में रोजेनबर्ग ने लिखा है, '' हम यह सिद्ध करने में सफल हो गए हैं कि जिन रोगियों में अर्बुद में प्रवेश करने वाली लसिका-कोशिकाए प्रभावकारी हैं उनमें ये कोशिकाएं अर्बुद में एकत्रित हो जाती हैं—साथ ही जो कोशिकाएं अर्बुद में एकत्रित नहीं होतीं वे स्वयं ही जल्दी समाप्त हो जाती हैं तथा स्वस्थ ऊतकों में समाविष्ट नहीं होती''. यूं तो लसिका-कोशिकाएं स्वयं ही कैंसर विरोधी हैं परन्तु जब उसमें अर्बुद परिगलन घटक भी मिल जाता है तो उनकी क्षमता कई गुना बढ़ जाती है.

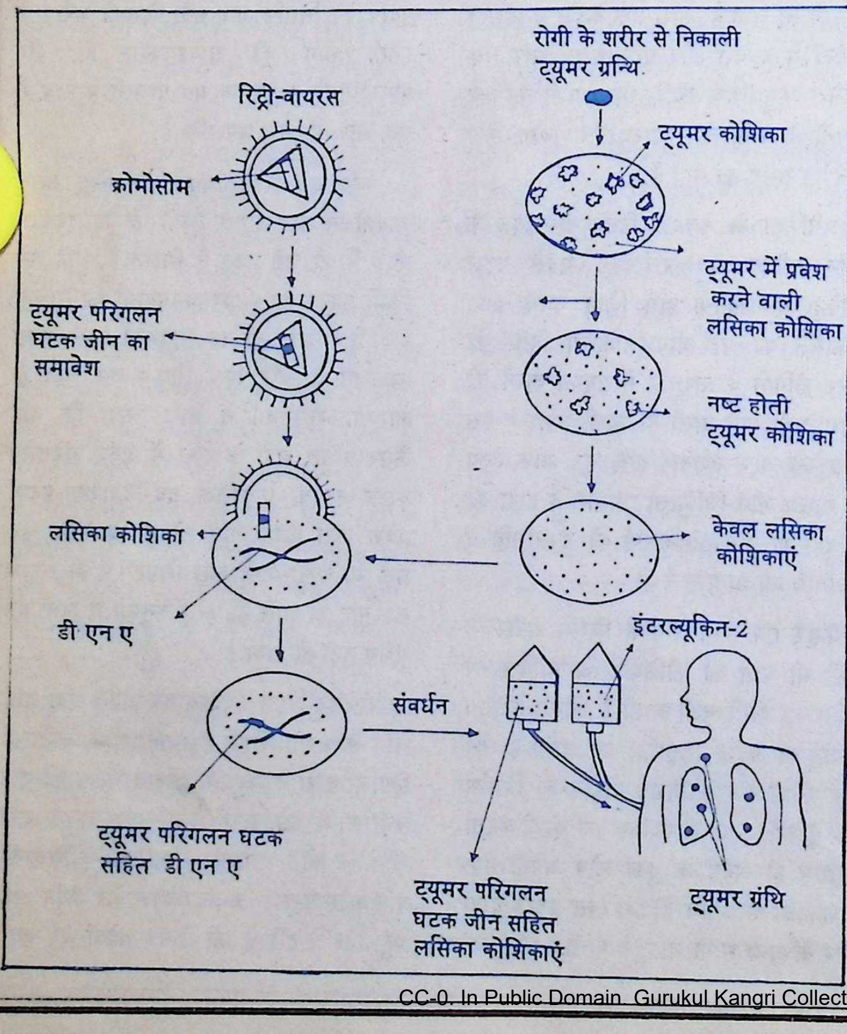

मानव जीन-चिकित्सा उपसमिति ने इस पद्धति के गुण-दोषों का पूर्ण विवेचन करके यह पूरी तरह सुनिश्चित कर लिया है कि ये विषाणु स्वयं ही कैंसर का कारण नहीं बन सकते. प्रयोगों में ऐसा कोई उदाहरण उनके सामने नहीं आया. वैसे कैंसर के इलाज में प्रयुक्त आधुनिक तरीके जैसे विकिरण, रसायन-औषध आदि भी कभी-कभी देर सवेर कैंसर की उत्पत्ति का कारण बन जाते हैं. रोजेनबर्ग ने जिन पांच कैंसर रोगियों पर ''नव-निर्मित लसिका-कोशिकाओं का प्रयोग किया उनमें से दो की मृत्यु हो गई, अन्य दो के अर्बुदों में महत्वपूर्ण कमी हुई किंतु पांचवा रोगी, जो एक 26 वर्षीया नवयुवती थी, इलाज के एक साल बाद पूरी तरह से छुटकारा पा चुकी है''.

अर्बुद परिगलन घटक एक भीषण विष है. अतः इसे प्रभावशाली मात्रा में रोगियों को सीधे नहीं दिया जा सकता, हालांकि कुछ रोगियों में इसका इंजेक्शन देने से रोग निवारण में आशातीत सफलता मिली है. वैसे भी लसिका-कोशिकाओं को रोगी के शरीर में सीधे इंजेक्शन द्वारा पहुंचाने से केवल ऊपरी सतह के अर्बुद ही ठीक हो सकते हैं, शरीर के अंदर के भागों वाले नहीं, इसलिए अर्बुद परिगलन घटक लसिका कोशिका का समन्वय ही लाभकारी होता है.

रोजेनबर्ग अर्बुद परिगलन घटक मिश्रित लसिका कोशिकाओं के निर्माण में लगे हैं. ज्यों ही उन्हें रोगियों पर औषधि के उपयोग की अनुमति मिलेगी वे इस कार्य को आरंभ कर देंगे—शायद अक्तूबर 1990 तक. रोजेनबर्ग के शब्दों में यदि यह प्रयोग सफल हुआ तो यह एक 'ऐतिहासिक घटना' होगी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों पर एड्स की गहराती छाया

□ डा० विजय कुमार श्रीवास्तव

एड्स इस शताब्दी का सबसे भयानक रोग. सन् 1981 में पहले रोगी का पता चलने के बाद से अब तक, दस वर्षों से भी कम समय में एड्स दुनिया भर में लाखों व्यक्तियों को निगल चुका है. अब तक मरे लोगों से कई गुने अधिक अगले पांच वर्षों में मरने वालों की कतार में खड़े है और यह कतार लगातार लंबी होती जा रही है. स्त्रियों के एड्स से पीड़ित होने से अधिक दुर्भाग्य की बात क्या हो सकती है क्योंकि 25 से 40 प्रतिशत गर्भवती स्त्रियां गर्भ में पनप रहे शिशुओं को भी संक्रमित कर देती हैं. ऐसे संक्रमित शिशु अपना 5वां जन्म दिन मनाए बिना ही मौत का शिकार हो जाते है. स्त्रियों पर एड्स रोग के गम्भीर प्रभाव को देखते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने तीसरे विश्व एड्स दिवस एक दिसंबर 1990 को 'स्त्री और एड्स' विषय पर केंद्रित किया है. इस दिशा में यह संभवतः पहला संगठित और अंतरराष्ट्रीय प्रयास है.

□ मनुष्य का दीर्घकालीन स्वस्थ और निरोग जीवन सुनिश्चित करने के लिए वैज्ञानिकों ने इस शताब्दी में बहुत से प्रयास किए हैं. इनमें से कुछ सफल भी कहे जा सकते हैं. दुनिया से चेचक जैसी भयानक बीमारी का उन्मूलन हुआ. हैजा, प्लेग, टिटेनस भी अब पहले जैसी दहशत पैदा नहीं कर पाते. साक्षात मृत्यु समझे जाने वाला क्षयरोग भी अब हौवा नहीं रहा. इन रोगों पर विजय पा लेने का भी नतीजा है कि अब भारत जैसे विकासशील और अल्प साधन सम्पन्न देशों में भी लोगों की औसत आयु साठ वर्ष हो गई है, जबकि केवल कुछ ही दशक पूर्व यह 30 के आस पास थी. जन्मते समय और गर्भ में ही मर जाने वाले शिशुओं की संख्या भी पहले से काफी कम हो गई है.

इन ढेर सारी सफलताओं की सीढ़ियां चढ़ते हुए, रोगनिदान और उनके उपचार की नवीनतम तकनीकों और रोगों पर काबू पाने की अधिक कारगर औषधियों से लैस होकर हम सब यह सोचने ही लगे थे कि विश्व स्वास्थ्य संगठन के लक्ष्य 'सन् 2000 तक सबके लिए स्वास्थ्य' का यदि 2000 तक नहीं तो इसके एक-दो दशक के अंदर तो प्राप्त कर ही लिया जाएगा, तभी 'एड्स' के आक्रमण की भयावहता ने हमारे सोच को एक ऐसा तेज झटका दिया कि हमारी सारी आशाएं चकनाचूर हो गईं. देखते ही देखते एड्स ने दुनिया भर में लाखों व्यक्तियों को अपना शिकार बनाना शुरु कर दिया.

एड्स का भयानक हमला इतना अचानक अप्रत्याशित और तेज था कि इसने दुनिया भर के चिकित्सा वैज्ञानिकों को कुछ समय के लिए किंकर्तव्यविमूढ कर दिया. लेकिन इसके प्रारम्भिक झटकों और संत्रास को झेल कर तुरंत वैज्ञानिकों ने इस नए आक्रांता से जूझने के लिए उपाय ढूंढ़ने शुरु कर दिए

सन् 1981 में इसके प्रादुर्भाव और उसके बाद कुछ वर्षों तक इसे केवल अमेरिका और अफ्रीका का ही रोग समझा गया. प्रारम्भ में इसे समलिंगियों की समस्या माना गया था. लेकिन जैसे जैसे समय बीतता गया और इस रोग तथा इस रोग को जन्म देने वाले विषाणु के रहस्य की पर्ते एक एक करके उतरती गईं वैसे वैसे इस रोग के संबंध में अनेक धारणाएं और मान्यताएं बदलती गईं.

प्रारंभ के केवल कुछ ही वर्षों के बाद यह अमेरिका और अफ्रीका की सीमाएं लांघता यूरोप और आस्ट्रेलिया होता हुआ एशिया महाद्वीप में आ पहुंचा. इतना अवश्य है कि अमेरिका, अफ्रीका और यूरोप में लाखों एड्स रोगियों की तुलना में एशिया में रोगियों की संख्या अभी काफी कम है. विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार अमेरिका, अफ्रीका, यूरोप और आस्ट्रेलिया में लाखों एड्स रोगियों की तुलना में एशिया में अभी इनकी संख्या तीन अंकों में ही है. 31 मई 1990 तक एशिया महाद्वीप में कुल मिलाकर एड्स के केवल 647 रोगी ही प्रकाश में आए हैं.

एशिया के 647 रोगियों में जापान में 189, इजराइल में 109, और भारत में 44 रोगी पाए गए. संख्या की दृष्टि से एशिया महाद्वीप के ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश सबसे अधिक एड्स रोगियों वाले देश हैं. भारत में 30 जून 1990 तक एड्स रोगियों की संख्या 48 हो गई थी.

भारत में एड्स रोगियों और एड्स विषाणु से संक्रमित व्यक्तियों का पता लगाने का काम सन् 1986 में प्रारंभ किया गया था. इस कार्यक्रम के अंतर्गत 30 जून 1990 तक देश भर में 4,95,787 ऐसे व्यक्तियों के रक्त का परीक्षण किया गया जो एड्स संक्रमण की दृष्टि से अधिक खतरे वाले वर्ग में आते हैं. इनमें से 2604 व्यक्तियों में संक्रमण के प्रमाण मिले, इन में से 48 व्यक्ति रोग के शिकार हो चुके हैं. इनमें 12 विदेशी तथा 36 भारतवासी हैं. अध्ययनों से पता चला है कि 36 भारतीय रोगियों में से 21 को रोग का संक्रमण भारत में ही हुआ है. पिछले दो वर्षों के दौरान अपने देश में ही संक्रमित एड्स रोगियों की संख्या लगातार बढ़ी है.

बाद के अध्ययनों से वैज्ञानिकों की यह प्रारम्भिक धारणा और मान्यता है कि एड्स रोग समलिंगियों का रोग है और यह अप्राकृतिक मैथुन का परिणाम है. सन् 1985 तक यह स्पष्ट हो गया था कि एड्स विशेषतया एक यौन संचारित ही रोग है. हां, रोग संचरण के इस प्रमुख तरीके के साथ-साथ रक्त और रक्त उत्पादों तथा संक्रमित सुइयों द्वारा नशीली दवाओं का इंजेक्शन लेने से भी इस

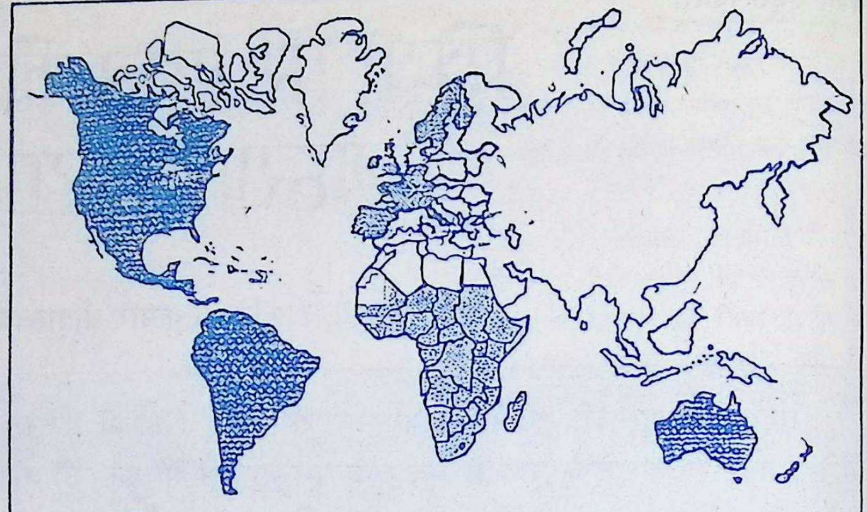

रोग का संचरण होता है. उस समय तक यह भी स्पष्ट हो गया था कि यौन सम्पर्कों के माध्यम से यह रोग पुरुष और स्त्रियों दोनों को हो सकता है, यौन संबंध समलिंगी हो अथवा विषमलिंगी. बाद में तो मां द्वारा गर्भस्थ शिशु में भी रोग का संक्रमण होने के अनेक प्रमाण मिले.

हाल में हुए अनुसंधानों से यह स्पष्ट हो गया है कि जितने अधिक व्यक्तियों से यौन सम्पर्क स्थापित किया जाता है रोग लगने की संभावना उतनी ही अधिक बढ़ जाती है. रक्त-स्राव के दौरान यौन सम्पर्क स्थापित करने और जननेन्द्रियों में कोई घाव होने से रक्त सम्पर्क की संभावना बढ़ जाती है. इससे संक्रमण की संभावना भी बढ़ जाती है. वैज्ञानिकों के अनुसार एड्स विषाणु वैसे तो पुरुष के वीर्य तथा स्त्रियों के जननअंगों के स्राव दोनों में पाए गए हैं. परंतु पुरुष वीर्य में विषाणुओं की संख्या अधिक होने के कारण पुरुषों के माध्यम से संक्रमण के प्रसार की संभावना स्त्रियों से संक्रमण के संचरण की तुलना में अधिक है.

एड्स पर विश्व भर में अभी तक जुटाई गई जानकारी के अनुसार संक्रमण के प्रसार के तीन प्रमुख रुप से जिम्मेदार पाए गए हैं. इनके अनुसार विश्व को 1989 में तीन हिस्सों में बांटा भी गया है. प्रथम समूह में अमेरिका, पश्चिमी यूरोप और आस्ट्रेलिया के सारे वे देश शामिल हैं जहां संक्रमण मुख्यतः समलिंगी यौनाचार और सुइयों द्वारा नशीली दवाओं के उपयोग से फैल रहा है. दूसरे समूह के देशों में अफ्रीका महाद्वीप के वे सारे देश शामिल हैं जहां संक्रमण का कारण विषमलिंगी यौनाचार है. इन देशों में संक्रमित रक्त और रक्त उत्पादों की भी एड्स संक्रमण के संचरण में महत्वपूर्ण भूमिका है. तीसरे समूह में एशिया महाद्वीप, पूर्वी यूरोप और उत्तरी अफ्रीका के देश शामिल है जहां एड्स का संक्रमण देर से हुआ है. इन देशों में रोगियों और संक्रमित व्यक्तियों की संख्या अपेक्षाकृत इतनी कम है कि रोग संक्रमण के बारे में कोई निश्चित मत नहीं बनाया जा सका है.

जहां तक इस वर्गीकरण का प्रश्न है हाल में प्राप्त जानकारी के अनुसार स्थिति में कुछ बदलाव आ रहा है. अमेरिकी देशों में जहां अभी तक समलिंगी यौनाचार को रोग के प्रसार के लिए मुख्यतः जिम्मेदार माना जाता

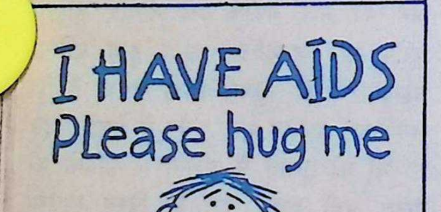

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है वहां विषमलिंगी यौनाचार संक्रमण के प्रसार के प्रमुख कारण के रुप में उभर रहा है. इस प्रकार विश्व में विषमलिंगी यौनाचार एड्स के प्रसार के लिए मुख्य रुप से जिम्मेदार ठहरता जा रहा है. विश्व में एड्स ग्रस्त स्त्रियों की संख्या में तेजी से वृद्धि होने के कारण भी इस बात को प्रबल समर्थन मिलता है.

एक आकलन के अनुसार 1989 के अन्त तक विश्व भर में छः लाख व्यक्ति एड्स की चपेट में आ चुके थे. इनमें स्त्रियों की संख्या लगभग दो लाख है. एड्स की रोगी स्त्रियों में सबसे अधिक एक लाख 20 हजार संक्रमण की दृष्टि से दूसरी श्रेणी के देशों की (अफ्रीकी महाद्वीप की) हैं. अस्सी के दशक में इन स्त्रियों ने लगभग 80 हजार रोगी बच्चों को जन्म भी दिया है. विश्व स्वास्थ्य संगठन के आक्रमण के अनुसार सन् 1992 तक केवल अफ्रीका में ही एड्स रोग ग्रस्त स्त्रियों की संख्या 3 लाख 50 हजार और एड्स रोग ग्रस्त बच्चों की संख्या 1 लाख 60 हजार से अधिक हो जाएगी. स्त्री और शिशु रोगियों की यह संख्या 1989 में विश्व में कुल स्त्री और शिशु रोगियों की संख्या की दो गुनी होगी.

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार सन् 1989 तक विश्व भर में एड्स विषाणु संक्रमित कुल 60 लाख व्यक्तियों में आधी संख्या (लगभग 30 लाख) केवल स्त्रियों की है. इनमें

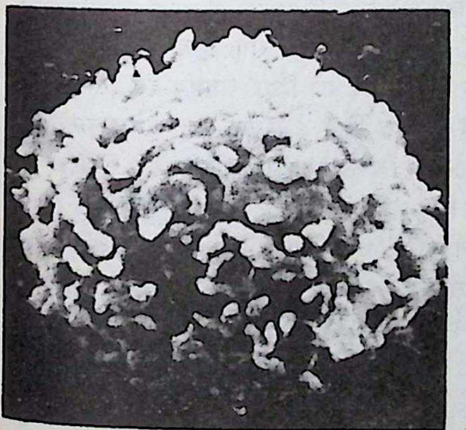

कहां से आए एड्स के विषाणु

एड्स रोग का प्रारंभ कब और कहां से हुआ, यह काफी विवादास्पद विषय है. लेकिन, अधिकांश वैज्ञानिक एड्स विषाणुओं का उद्‌भव अफ्रीका से मानते हैं. इस संबंध में अमरीका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक हार्वर्डस एसेक्स के अनुसंधान को अभी तक सबसे अधिक मान्यता मिली है. एसेक्स का मानना है कि एड्स रोग के विषाणु अफ्रीका के जैरे देश में पाए जाने वाले ग्रीन मंकी (एक प्रकार का बंदर) से मनुष्य में आए हैं. चूंकि यह बंदर बहुत ही सीधा होता है इसलिए खेल-खेल में एड्स रोग के विषाणु किसी समय बंदर से वहां के निवासियों के रक्त में पहुंच गए और वहीं से प्रारंभ हुई मनुष्य में यह लाइलाज बीमारी. एसेक्स के अनुसार जैरे में अमरीका और हैती के काफी नागरिक रहते थे. छटवें और सातवें दशक में इन देशों के काफी नागरिक अपने देश वापस गए और जाते समय अपने साथ ले गए एड्स के विषाणु.

इस संबंध में बोस्टन स्थित हार्वर्ड स्कूल ऑव पब्लिक हेल्थ के वैज्ञानिक माइरन इसेक्स का अनुसंधान भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है. उन्होंने पालतू लघुपुच्छ (छोटी पूंछ वाले) बन्दरों में कुछ विशेष प्रकार के विषाणुओं को खोज निकाला है जो इनमें एक ऐसी बीमारी उत्पन्न करते हैं जो एड्स से काफी मिलती है. इस विषाणु को उन्होंने सिमियन टी-लिम्फोट्रोफिक वायरस टाइप-3 (एस टी एल वी-3 मैक) नाम दिया. रचना एवं व्यवहार की दृष्टि से इनमें एवं एड्स विषाणुओं में काफी समानता है. एड्स विषाणुओं के समान यह भी टी लसिका कोशिकाओं को अपना निशाना बनाता है. इसेक्स के अनुसार एच टी एल वी-3 एवं एस टी एल वी-3 विषाणुओं की जीनों के विभिन्न भागों की रसायन संरचना एक जैसी होती है. इसी के आधार पर उन्होंने यह परिकल्पना भी की है कि एड्स विषाणुओं ने पहले बन्दरों को अपना लक्ष्य बनाया और बाद में बन्दरों से वे मनुष्य में पहुंचे.

इस परिकल्पना में कितना दम है इसे जांचने के लिए इसेक्स ने अफ्रीकी बन्दर 'ग्रीनमंकी' के रक्त में एस टी एल वी-3 विषाणुओं के विरुद्ध बनने वाली एण्टीबाडी की खोज की. उन्होंने पाया कि 40 प्रतिशत बन्दरों में यह एण्टीबाडी उपस्थित थीं. इसेक्स ने बाद में देखा कि लघु पुच्छ बन्दरों में उपस्थित एस टी एल वी-3 मैक विषाणुओं एवं ग्रीन मंकी में उपस्थित विषाणुओं में, जिन्हें उन्होंने एस टी एल वी-3, ए जी एम नाम दिया, अत्यधिक समानता थी. बाद में इसेक्स ने एस टी एल वी-3, एस जी एम एवं एच टी एल वी-3 विषाणुओं में संबंध ज्ञात करने के लिए कुछ परीक्षण किए. इस परीक्षण के दौरान 50 प्रतिशत ऐसे अमरिकियों में जिनमें रक्त में एड्स एण्टीबाडी उपस्थित थीं एस टी एल वी-3 एण्टीबाडी भी उपस्थित पाई गई. हां अमरीका में रहने वाले 97-100 प्रतिशत अफ्रीकी नागरिकों में एस टी एल वी-3 ए जी एम एण्टीबाडी उपस्थित पाई गई.

इन प्रयोगों के आधार पर वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि इस समय विश्व में तबाही मचाने वाला एड्स विषाणु अफ्रीका के ग्रीन मंकी से ही मनुष्य में पहुंचा है. मनुष्य में रक्त कैंसर को जन्म देने वाला एच टी एल वी कुल का ही एक अन्य विषाणु एच टी एल वी-3 भी अफ्रीका से आया माना जाता है. इससे वैज्ञानिकों की इस परिकल्पना को और भी अधिक बल मिलता है कि एड्स विषाणुओं का उद्‌भव अफ्रीका में ही हुआ है.

अफ्रीका में अधिकांश वैज्ञानिक अमरीकी वैज्ञानिकों के इस दावे के विरुद्ध हैं. इन वैज्ञानिकों का कहना है कि यह भी हो सकता है कि एड्स विषाणुओं एवं एड्स रोग का उद्‌भव अमरीका में हुआ हो और वहां के धनाढ्य समलिंगियों ने यह रोग अफ्रीका में पहुंचा दिया हो.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से लगभग 15 लाख संक्रमित स्त्रियां केवल अफ्रीका में सहारा मरुस्थल के आस पास के देशों की हैं. संक्रमण की दृष्टि से प्रथम समूह के देशों अर्थात् अमेरिका, आस्ट्रेलिया और पश्चिमी, यूरोप के देशों में संक्रमित स्त्रियों की संख्या लगभग 3 लाख है. तृतीय समूह अर्थात् सम्पूर्ण एशिया और पूर्वी यूरोप और उत्तरी अफ्रीका के विशाल भू-भाग में संक्रमित स्त्रियों की संख्या 33 हजार से अधिक नहीं है. स्त्रियों द्वारा गर्भावस्था के दौरान शिशु संक्रमण की दर विभिन्न देशों में अलग अलग है और यह उन देशों में स्त्रियों में संक्रमण की दर और इस्तेमाल में लाए जाने वाले गर्भ-निरोधक उपायों पर निर्भर है. उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार विभिन्न देशों में यह दर 3 प्रति हजार से 210 प्रति हजार के बीच पाई गई है (सारणी-1).

हालांकि एड्स विषाणु ग्रस्त सभी स्त्रियों से जन्म लेने वाले शिशुओं में जन्म के समय विषाणु के विरुद्ध बनने वाले प्रतिपिंड पाए जाते है परंतु बाद के अध्ययनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी स्त्रियों से जन्म लेने वाले केवल 25-50 प्रतिशत बच्चे ही विषाणु संक्रमित होते हैं. अन्य बच्चों के रक्त में मिलने वाले प्रतिपिंड उन्हें मां के रक्त से प्राप्त होते है. यदि यह मान लिया जाए कि एड्स संक्रमित स्त्रियों से जन्म लेने वाले केवल 25 प्रतिशत शिशु ही संक्रमित होंगे तब भी यह अनुमान लगाया जा सकता है केवल अफ्रीका की संक्रमित गर्भवती स्त्रियों से जन्म लेने वाले अनुमानतः छः लाख शिशुओं में से लगभग डेढ़ लाख को जन्म के समय से ही एड्स रोग का संक्रमण हो गया होगा. इन सबका अपना 5वां जन्म दिन मनाने से पहले ही मृत्यु हो जाएगी. इसी के साथ जहां साढ़े चार लाख असंक्रमित शिशुओं का प्रश्न है तो वे भी कम दुर्भाग्यशाली नहीं हैं क्योंकि वे भी कुछ ही दिनों में अपने मां, बाप अथवा दोनों से ही वंचित हो जाएंगें. विश्व स्वास्थ्य संगठन का अनुमान है कि सन् 1992 तक यह सारे आंकड़े दो गुने हो जाएगें.

अमेरिका, आस्ट्रेलिया और पूर्वी यूरोप के देशों में, जहां फिलहाल पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों और बच्चों में एड्स रोग काफी कम है, वहां भी एड्स रोग स्त्रियों और बच्चों की मृत्यु का कारण बन गया है. अमेरिका में बच्चे जनने की आयु की स्त्रियों में एड्स रोग मृत्यु का 8वां

एड्स के प्रति जागरुकता

एड्स के बारे में लोगों को कितनी जानकारी है इसका पता लगाने के लिए 'आपरेशंस रिसर्च ग्रुप' द्वारा देश में कई शहरी आबादी में एक सर्वेक्षण किया गया. इस सर्वेक्षण में 35 शहरों के 2100 घरों को शामिल किया गया. 'आपरेशंस रिसर्च ग्रुप' के सर्वेक्षण कर्ताओं ने इस सर्वेक्षण में शामिल किए गए सभी घरों के कम से कम एक वयस्क व्यक्ति से व्यक्तिगत तौर पर कुछ प्रश्न पूछे.

आपरेशंस रिसर्च ग्रुप की रिपोर्ट के अनुसार सर्वेक्षण से यह बात सामने आई है कि लोग अब यह महसूस करते हैं कि एड्स रोग का सामना करने में शिक्षा एक अच्छी वैक्सीन साबित हो सकती है, परंतु इस दिशा में मुश्किल से कोई काम हो रहा है.

सर्वेक्षण से पता चला है कि शहरों की लगभग 90 प्रतिशत से अधिक आबादी को असाध्य एड्स रोग की जानकारी है फिर भी इनमें से केवल 50 प्रतिशत ही रोग की गंभीरता की वास्तविकता से परिचित हैं. जितने लोगों को एड्स की जानकारी है उनमें से लगभग 50 प्रतिशत यह महसूस करते हैं कि लोगों को एड्स रोग के बारे में शिक्षित किए जाने के प्रयास अपर्याप्त हैं. लोगों ने समाचार पत्रों को एड्स के बारे में जागरुकता पैदा करने का सबसे बड़ा स्रोत बताया. परंतु जहां तक रेडियो का प्रश्न है उनके अनुसार जन संचार के इस माध्यम ने चिकित्सकों और दूरदर्शन से भी कहीं अधिक सराहनीय कार्य किया है.

ग्रुप ने इस समस्या पर पहला सर्वेक्षण नवम्बर 1988 में किया था. अप्रैल 1990 में किए गए ताजा सर्वेक्षण से पता चला कि पहले सर्वेक्षण के बाद से हालांकि एड्स रोग के प्रति लोगों की जागरुकता थोड़ी जरुर बढ़ी है, परंतु रोग के संबंध में उनकी जानकारी में कोई वृद्धि नहीं हुई. स्त्रियों में औसत जागरुकता 1988 में 85 प्रतिशत से बढ़ कर 1990 में 93 प्रतिशत हो गई है. उत्तरी भारत के शहरों में स्त्रियों में जागरुकता प्रतिशत 86 से बढ़कर 95 हो गया है.

सर्वेक्षण से जो हैरानी की बात उभर कर सामने आई है वह यह है कि अन्तरंग व्यक्तियों के बीच की बातचीत तक में यह विषय अभी तक निविद्ध और वर्जित है. इन अन्तरंग व्यक्तियों में चिकित्सक भी शामिल हैं. किसी भी क्षेत्र में किसी भी आयु वर्ग के लोगों ने चिकित्सकों से जानकारी प्राप्त होना स्वीकार किया.

सर्वेक्षण में शामिल लगभग आधे व्यक्तियों ने लोगों को एड्स रोग के बारे में शिक्षित करने के लिए रेडियो और दूरदर्शन के व्यापक उपयोग पर बल दिया. लगभग दस प्रतिशत व्यक्तियों ने इस सम्बन्ध में पहले छात्रों को शिक्षित किए जाने पर बल दिया. इसके अतिरिक्त 18 प्रतिशत अन्य व्यक्तियों का सुझाव था कि लोगों को एड्स के बारे में शिक्षित करने के लिए व्याख्यान और शिविर आयोजित किए जाने चाहिए.

सर्वेक्षण से यह सकारात्मक तथ्य भी सामने आया कि 1988 की तुलना में अब अधिक संख्या में लोग एड्स रोग को गम्भीर स्वास्थ्य समस्या मानने लगे हैं साथ ही शहरी क्षेत्रों के लगभग दो तिहाई व्यस्क व्यक्ति अब यह मानने लगे हैं कि एड्स रोग निकट भविष्य में देश में और अधिक गम्भीर समस्या का रुप ले लेगा. कम आयु के (34 वर्ष से कम) व्यक्तियों में ऐसा मानने वालों की संख्या कम थी.

—डा० विजय कुमार श्रीवास्तव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे बड़ा और 1-4 वर्ष की आयु के बच्चों में मृत्यु का 10 वां सबसे बड़ा कारण है.

विश्व में एड्स संक्रमण की व्यापकता के संबंध में उपलब्ध जानकारियों और संक्रमण की अवधि के आधार पर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों की मृत्यु दर पर एड्स रोग का प्रभाव जानने के लिए एक माडल विकसित किया है. इस माडल के अनुसार यह गणना की गई है कि यदि किसी आबादी में 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों की मृत्युदर 100 प्रति एक हजार है तो उस आबादी में 5 प्रतिशत गर्भवती स्त्रियों में एड्स रोग का संक्रमण होने पर बच्चों की मृत्युदर 9 प्रतिशत बढ़ जाएगी. गर्भवती स्त्रियों में संक्रमण दर दो गुनी हो जाने पर बच्चों की मृत्युदर भी दो गुनी अर्थात् 10 प्रतिशत होने पर बच्चों की मृत्यु दर 18 प्रतिशत, 20 प्रतिशत पर 36 प्रतिशत के हिसाब से बढ़ती जाएगी. इस आकलन के अनुसार यदि किसी औद्योगिक देश की 10 प्रतिशत गर्भवती स्त्रियां एड्स रोग से संक्रमित होगी तो 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों की अकेले एड्स रोग के कारण मृत्युदर अन्य सभी कारणों से होने वाली मृत्युदर के बराबर होगी.

विश्व में एड्स रोग के प्रादुर्भाव से पूर्व संयुक्त राष्ट्र संघ का अनुमान था कि 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों की मृत्युदर सन् 1988 की 164 प्रति 1000 से गिरकर सन् 2000 तक 130 प्रति 1000 हो जाएगी. परन्तु इस समय जो स्थिति है उससे लगता है कि यह दर सन् 2000 तक बढ़कर 185 प्रति 1000 हो जाएगी. इस तरह यह स्पष्ट है कि पिछले 3 दशकों में गहन वैज्ञानिक प्रयासों से शिशु मृत्युदर में जो कमी आई थी, एड्स ने उन सभी प्रयासों और सफलताओं पर पानी फेर दिया है.

अभी तक एड्स से संक्रमित गर्भवती स्त्रियों पर जितनी वैज्ञानिक जानकारी जुटाई जा सकी है उससे यह स्पष्ट हो गया है कि न तो गर्भावस्था का एड्स संक्रमण पर कोई विपरीत प्रभाव होता है और न ही एड्स संक्रमण गर्भावस्था की अवधि, प्रसव पीड़ा और शिशु जन्म के पश्चात मां के स्तनों से दुग्ध स्राव को किसी तरह प्रभावित करता है.

एड्स विषाणु मां के रक्त से अपरा (प्लेसेंटा) से होते हुए गर्भस्थ शिशु के रक्त में प्रवेश कर जाते हैं. इसी कारण गर्भावस्था की पहली तिमाही में भी गर्भस्थ शिशु के रक्त में एड्स विषाणु पाये गए हैं. वैज्ञानिकों को अभी तक प्राप्त जानकारी से ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला है जिससे यह संकेत मिलता हो कि एड्स संक्रमण गर्भवती स्त्रियों में गर्भपात को बढ़ा देता है.

इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि गर्भस्थ शिशुओं को ऐसी गर्भवती स्त्रियों से संक्रमण का खतरा कम होता है जिनमें एड्स रोग के लक्षण नहीं प्रकट हुए होते. इसके विपरीत जिन गर्भवती स्त्रियों को एड्स संक्रमण हाल ही में हुआ हो अथवा जिनमें रोग के लक्षण प्रकट हो गये हों उनसे गर्भस्थ शिशुओं को संक्रमण होने की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं. जो स्त्रियां पहले किसी संक्रमित शिशु को जन्म दे चुकी हों उनसे दूसरे शिशु को संक्रमण की सम्भावनाए 60-80 प्रतिशत तक बढ़ जाती हैं. संक्रमित स्त्रियों से जन्म लेने वाले शिशुओं में जन्मजात विकृतियों की सम्भावनाएं भी बढ़ जाती हैं.

संक्रमण और स्तनपान

शिशुओं को स्तनपान कराने वाली स्त्रियों के दूध में भी एड्स विषाणु पाए गए हैं. दूध में एड्स विषाणु की उपस्थिति ने इन सम्भावनाओं को भी जन्म दिया है कि एड्स रोग ग्रस्त माताओं द्वारा स्तनपान कराने से भी शिशुओं को एड्स का संक्रमण हो सकता है. परन्तु इस दिशा में अभ तक बहुत ही कम (लगभग न के बराबर प्रमाण प्राप्त हुए हैं. अभी तक नवजात शिशुअ को एड्स का संक्रमण उनके जन्म लेने से पू ही हुआ पाया गया है. स्तनपान के दौरा केवल उन्हीं माताओं के दूध से नवजा शिशुओं को संक्रमण प्राप्त होने के संकेत मि हैं जिन्हें प्रसवोपरान्त एड्स विषाणु से संक्रमि रक्त अथवा रक्त उत्पाद दिया गया हो.

विश्व स्वास्थ्य संगठन के सलाहकार दल स्तनपान और एड्स संक्रमण से संबंधित सार सूचनाओं पर विचार करके और साथ ही इ बात को ध्यान में रखकर कि विकासशील औ गरीब देशों में नवजात शिशुओं के जीवित रह और उनकी वृद्धि के लिए मां का दूध बहु आवश्यक है, यह निष्कर्ष निकाला है कि स्त्रिय द्वारा दूध के माध्यम से शिशुओं तक एड संक्रमण के प्रसार की बहुत ही क सम्भावनाओं की तुलना में स्तनपान के फाय कहीं अधिक हैं. इसी निष्कर्ष के आधार पर इ

एड्स विषाणु रेट्रोवायरस कुल का सदस्य है अर्थात् इसमें आनुवांशिक पदार्थ डी एन ए (डी-आक्सी राइबो न्यूक्लिक एसिड) न होकर आर एन ए (राइबोन्यूक्लिक एसिड) होता है. एड्स विषाणु का बाहरी आवरण प्रोटीन का होता है जिसके भीतर एक न्यूक्लियस होता है. न्यूक्लियस की संरचना किसी कोशिका के नाभिक (न्यूक्लियस) जैसी ही होती है. इसके अंदर आर एन ए से बनी हुई आनुवंशिक पदार्थ की दो बिल्कुल एक जैसी प्रतिलिपियां होती हैं. दोनों आर एन ए अणु प्रोटीन अणुओं से एक दूसरे के साथ जुड़े रहते हैं. आर एन ए को जोड़ने वाली प्रोटीन तीन प्रकार की होती है जिनका अणु भार क्रमशः 25,000, 18,000 और 13,000 होता है. ये तीनों 55,000 अणु भार वाली एक प्रोटीन से टूटकर तैयार होती हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सलाहकार दल ने मां द्वारा शिशु को स्तनपान कराए जाने पर बल दिया है, मां और शिशु में संक्रमण की स्थिति चाहे जो हो.

एड्स संक्रमण और गर्भ निरोध

गर्भावस्था में एड्स संक्रमण के खतरों को देखते हुए संक्रमित स्त्रियों और संक्रमित पुरुषों की पत्नियों द्वारा सुरक्षित और प्रभावशाली गर्भ-निरोधकों का उपयोग करके गर्भधारण से बचना बहुत आवश्यक है क्योंकि एड्स रोग ग्रस्त शिशु को जन्म देना और उसके मरने की प्रतीक्षा करना सन्तानहीन रहने की अपेक्षा कई गुना अधिक कष्टदायक है. विकसित देशों में गर्भनिरोधक के रुप में कण्डोम अथवा निरोध और नोनो-जाइनॉल-9 युक्त शुक्राणु नाशक के उपयोग की सिफारिश की गई है क्योंकि इनके उपयोग से न केवल गर्भधारण के विरुद्ध सुरक्षा मिलती है बल्कि एड्स विषाणु के संक्रमण के विरुद्ध भी सुरक्षा प्राप्त होती है. इस बात के प्रमाण मिले हैं कि अमेरिका में कण्डोम के सही और लगातार उपयोग से समलिंगियों में भी एड्स संक्रमण के प्रसार में कमी आई है. परन्तु इसके विपरीत विकासशील देशों में सही ढंग से और नियमित रुप से कण्डोम का उपयोग करने वालों की संख्या बहुत कम है. कण्डोम का गलत और अनियमित उपयोग इसका उपयोग न करने से अधिक खराब है क्योंकि इससे सुरक्षा की भ्रामक धारणा पुष्ट होती है. इसका परिणाम अनचाहे गर्भ के रुप में तो होता है, एड्स संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है. इन बातों को ध्यान में रखते हुए कण्डोम उपयोग के लाभ और इसके उपयोग के सही तरीकों के बारे में लोगों को शिक्षित करना बहुत जरुरी है.

स्त्रियों और पुरुषों में जिनका परिवार पूरा हो गया है, और अधिक शिशु जन्म की सम्भावनाओं को समाप्त करने के लिए किया जाने वाला आपरेशन वैसे सबसे अच्छा गर्भनिरोधक उपाय है. लेकिन एड्स विषाणु के संक्रमण से बचने के लिए कन्डोम का उपयोग ऐसे लोगों के लिए भी आवश्यक है. एड्स संक्रमण ग्रस्त पुरुषों द्वारा अपनी पसन्द के गर्भनिरोधक के उपयोग के साथ-साथ अपनी स्त्री साथी को संक्रमण से बचाए रखने के लिए भी कण्डोम का उपयोग बहुत जरुरी है.

सारणी-1 विभिन्न देशों में गर्भावस्था में सीरम धनात्मकता दर

देश	वर्ष	दर प्रति हजार
संयुक्त राज्य अमेरिका	1988	6
ब्रिटेन	1988	3
खांडा-शहरी	1986	210
खांडा-ग्रामीण	1986	14
जेरे	1987	60
भारत वर्ष	1989	6

(स्त्रोत : एम० रोजर्स, इम्प्लिकेशन आफ एड्स फार मदर एंड चिल्ड्रेन—पेरिस में 1989 में आयोजित एड्स पर अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन का कार्य विवरण, पृष्ठ 63-68)

एड्स से जुड़ी मनौवैज्ञानिक पीड़ाएं

एड्स ग्रस्त स्त्रियों और पुरुषों दोनों को गम्भीर भावनात्मक और शारीरिक पीड़ा झेलनी पड़ती है. बहुधा उन्हें अपने घर में, समाज में, सहकर्मियों से बहिष्कृत होकर शेष जीवन घुट-घुट कर मृत्यु की प्रतीक्षा करते बिताना पड़ता है. परन्तु स्त्रियों के लिए 'एड्स' कुछ अतिरिक्त समस्याएं लेकर आता है. एड्स ग्रस्त स्त्रियों को मां की भूमिका निभाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है. खराब स्वास्थ्य और बच्चे को रोग का संक्रमण हो जाने के डर से वह उनकी देखभाल नहीं कर पाती. उसकी इस असमर्थता से उपजी भावनात्मक पीड़ा, रोग जनित शारीरिक पीड़ा को कई गुना बढ़ा देती है. रोग के कारण अन्ततः उसकी मृत्यु एक कड़वी सच्चाई है जो इसके बच्चों को मां के प्यार से वंचित करके इन्हें अनाथ कर देगी, यह विचार मां को चैन से मरने नहीं देता.

इससे भी अधिक कष्टदायक स्थिति वह है जब एड्स विषाणु संक्रमित स्त्री से जन्म लेने वाला बच्चा भी संक्रमित होता है. जो मां स्वयं संक्रमण ग्रस्त है उसके लिए अपने संक्रमित शिशु की देखभाल भावनात्मक तौर पर कितनी अधिक कष्टकर और तनावग्रस्त होगी इसकी कल्पना की जा सकती है.

लेकिन यदि स्त्रियों को अपने परिजनों से भरपूर भावनात्मक और मनौवैज्ञानिक सहयोग और संबल मिलता रहे तो उनकी बहुत सी कठिनाइयां और परेशानियां काफी कुछ कम हो जाती हैं. लेकिन बहुधा ऐसा नहीं होता. अनेक बार सहारा और संबल तो दूर, संक्रमित स्त्रियों के जीवन साथी तक साथ छोड़ देते हैं. संक्रमित स्त्रियों को अक्सर अपने परिवार और स्वजनों से बहिष्कृत होकर दर-दर की ठोकरें खाने के लिए मजबूर होना पड़ता है. अपना पेट तक भरना उसके लिए नामुमकिन हो जाता है.

अभी तक एड्स के सम्बन्ध में जितनी वैज्ञानिक प्रगति हुई है उस से एड्स संक्रमित स्त्रियों को इसके गम्भीर परिणामों के सम्बन्ध में उचित और पर्याप्त शिक्षा तथा सलाह देकर रोग का सामना करने और रोग के दौरान सामने आने वाली परेशानियों के प्रति मानसिक और भावनात्मक रुप से तैयार किया जा सकता है. लेकिन स्त्रियों में अशिक्षा और विकासशील देशों में उनका घर की चारदीवारों में सिमटा जीवन उनके शिक्षा और सलाह प्राप्त करने के मार्ग में बाधक होता है.

एड्स ने स्त्रियों के लिए कुछ समस्याओं को भी जन्म दिया है. स्त्रियों को संक्रमित करने में इन समस्याओं की प्रमुख भूमिका है. अपने घरों में सीमित स्त्रियों को न तो एड्स की जानकारी होती है और न ही यह पता होता है कि यह रोग कैसे होता है और कैसे फैलता है. रोग के प्रति उनकी अज्ञानता भी उन्हें रोग का शिकार बना देती है.

स्त्रियों की दूसरी समस्या है एड्स और उनके संक्रमण तथा प्रसार के तरीकों का पता होते हुए भी अपने को संक्रमण से न बचा पाना.

(शेष पृष्ठ 468 पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे लड़ेंगे विषाणुओं से हम

☐ डा० जगदीप सक्सेना

तमाम वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद अभी भी कई विषाणु न केवल अजेय हैं, बल्कि उनके आक्रमण के चलते समूची मानव जाति आज मौत के साए से घिरती जा रही है. विषाणुओं की अद्भुत क्षमताओं के कारण, इन पर काबू पाने की हमारी अब तक की गई कई कोशिशें नाकाम रही हैं. हाल में वैज्ञानिकों ने विषाणुओं पर विजय पाने का एक नया रास्ता खोजा है—इन्हें परपोषी जीव की कोशिकाओं से संलग्न न होने दिया जाए. इसके लिए विषाणुओं की विस्तृत संरचना का पता लगना जरुरी है. वैज्ञानिकों ने कुछ विषाणुओं की त्रि-आयामी संरचना का पता लगाया है. विषाणु की सतह पर ऐसी जगहें भी ढूंढ़ ली गई हैं, जिन्हें अवरुद्ध करके विषाणु को कोशिका पर चिपकाने से रोका जा सकता है. यह तरकीब अन्य आनुवांशिक रोगों के अलावा जानलेवा 'एड्स' के विषाणु पर काबू पाने में भी कारगर हो सकती है. विश्व 'एड्स' दिवस के अवसर पर प्रस्तुत है विषाणुओं पर हमले की इस नई आशाजनक रणनीति का पूरा ब्यौरा.

☐ विषाणु जितने सूक्ष्म हैं, उतने ही अद्भुत भी. इनकी कार्यप्रणाली घुसपैठियों जैसी है. सबसे पहले ये कोशिका पर चुपके से चिपक जाते हैं. फिर उसका सब कुछ छीन लेते हैं. धीरे-धीरे पूरी कोशिका पर इनका कब्जा हो जाता है. अब कोशिका में जो कुछ भी होता है, विषाणु के इशारे पर. यहीं रहते हुए विषाणु अपनी तादाद तेजी से बढ़ाते हैं. धीरे-धीरे विषाणु के अधीन कार्य कर रही कोशिकाओं की संख्या कई गुना बढ़ जाती है. विषाणु के प्रभाव का नतीजा अब स्पष्ट दिखाई देने लगता है.

इसी अनूठी कार्य प्रणाली के कारण विषाणुओं पर काबू पाना बड़ा कठिन है. विषाणु के विरुद्ध इस्तेमाल की जा रही दवा हमारी कोशिकाओं को भी प्रभावित कर सकती है. यही वजह है कि विषाणु रोगों की अभी तक कोई प्रभावी दवा नहीं बन पाई है. हां, टीकों के जरिए बचाव का रास्ता जरुर है. टीकों से शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली उत्तेजित होकर उस विषाणु विशेष के विरुद्ध 'एंटीबाडी' बनाने लगती है. 'एंटीबाडी' में विषाणु की संरचना को याद रखने की शक्ति होती है. उस विषाणु विशेष पर हमला करने के इरादे से ये रक्त में घूमती रहती हैं. बाद में जब कभी उस विषाणु का आक्रमण होता है, 'एंटीबाडी' उसे पहचान कर उन्हें नष्ट करने की प्रक्रिया शुरु कर देती हैं. अभी तक केवल कुछ ही विषाणु रोगों का टीका बन पाया है, जैसे पोलियो, चेचक, खसरा आदि. इनफ्लुएंजा, 'एड्स' आदि रोगों के न तो टीके हैं और न ही कोई दवा.

हमले का नया रास्ता

वैज्ञानिकों की राय में केवल शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली पर निर्भर रह कर विषाणुओं का मुकाबला नहीं किया जा सकता. इसके लिए इनमें सीधे युद्ध करना होगा. एक अर्से से वैज्ञानिक इस युद्ध की तैयारी कर रहे हैं. पर अभी तक जो कुछ भी किया गया, वह अंधेरे में तीर मारने जैसा था. युद्ध से पहले दुश्मन को भली-भांति पहचानना, युद्ध की पहली शर्त है; और अभी तक हम इसी में नाकामयाब थे. हाल में वैज्ञानिकों ने कुछ विषाणुओं की त्रि-आयामी (3-डी) संरचना का पता लगाया है. अब हम इन विषाणुओं को पहले की तुलना में काफी बेहतर ढंग से पहचानने लगे हैं.

इस त्रि-आयामी पहचान ने विषाणुओं पर हमले का नया रास्ता खोल दिया है. अब यह संभव हो गया है कि विषाणुओं को कोशिका पर चिपकने ही न दिया जाए. वैज्ञानिकों ने कुछ विषाणुओं की सतह के हर उतार-चढ़ाव को भली-भांति जान-पहचान लिया है. अब कोशिका और विषाणु, दोनों की सतहों की संरचना के बारे में हमारी जानकारी काफी समृद्ध है. वैज्ञानिकों की रणनीति के अनुसार विषाणु की सतह बनी उन गुहिकाओं को रसायनों (दवाओं) से अवरुद्ध कर दिया जाएगा, जो कोशिका के उभारों पर फंस कर विषाणु को कोशिका से संलग्न करती हैं. पर विषाणु की संरचना का पता लगाना आसान काम नहीं हैं. इसमें दो मुख्य कठिनाइयां हैं—ये बड़े आकार की प्रोटीन हैं; और बहुत से विषाणु चारों ओर से वसा के आवरण से ढके रहते हैं.

विषाणु का त्रि-आयामी भेद

विषाणु के त्रि-आयामी भेद का पता सबसे पहले अमेरिका के दो वैज्ञानिकों डॉन विले और इयान विलसन ने सन् 1981 में लगाया. इन वैज्ञानिकों ने इनफ्लुएंजा विषाणु की सतह से निकलने वाली लंबी कील जैसी प्रोटीन की त्रि-आयामी संरचना ज्ञात की. इस प्रोटीन को हीमेग्लूटिनिन या एच० ए० के नाम से जाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ाता है. इनफ्लुएंजा विषाणु की सतह पर इस टीन के अलावा छोटी कील जैसी संरचना की क प्रोटीन और भी पाई जाती है, जिसे ्रामिनिडेस कहा जाता है. एनफ्लुएंजा षाणु बाहर से देखने पर रोएंदार गेंद जैसे गते हैं. ये रोएं इन्हीं दोनों प्रोटीनों के बने ते हैं. हमारी कोशिकाओं पर विषाणुओं को पकाने का काम एच० ए० प्रोटीन करती है. सलिए इनफ्लुएंजा विषाणु के विरुद्ध काम रने वाली एंटीबाडी का निशाना यही एच० ० प्रोटीन होती है. इनफ्लुएंजा के लिए ाजमाए जा रहे ज्यादातर टीकों में एच० ए० टीन मुख्य घटक है.

एच० ए० की संरचना का पता लगाने के नए इसे बिना कोई नुकसान पहुंचाए विषाणु ावरण से बाहर निकाल कर पानी में घोलना रुरी था. तभी इसका क्रिस्टलीकरण हो कता था. फिर एच० ए० क्रिस्टलों की रचना का एक्स-किरणों से अध्ययन करना ा. इस काम में विले को काफी कठिनाई हो ही थी. इसी बीच विले को पता लगा कि ग्लैण्ड के जॉन स्केहेल नामक वैज्ञानिक ने एक ज़ाइम की मदद से बड़ी आसानी से एच० ए० ो शुद्ध रुप में प्राप्त कर लिया है. इस एंजाइम ा नाम ब्रोमेलेन था, जिसे अनन्नास से नेकाला गया था. इस एंजाइम का एक ातिरिक्त फायदा यह था कि इससे एच० ए० ुलनशील बन जाती थी. इस खोज का पता गते ही विले और स्केहेल ने मिलकर काम करना शुरु कर दिया.

इस प्रकार एच० ए० प्रोटीन के शुद्ध क्रिस्टल तो अपेक्षाकृत आसानी से मिल गए पर इसकी त्रि-आयामी संरचना का पता लगाने में छह साल से ज्यादा का समय लग गया. इसके लेए विषाणु के दस प्रभेदों के हजारों क्रिस्टल रखे गए. विषाणु प्रोटीन की निरंतर आपूर्ति बनाए रखने के लिए हर हफ्ते मुर्गी के पांच हजार अंडों को विषाणु से संक्रमित किया जाता था. इस तरह छह सालों में पंद्रह लाख से ज्यादा अंडे खर्च हुए.

कमजोरी पकड़ी गई

एच० ए० प्रोटीन की त्रि-आयामी संरचना

स्त्रियां और 'एड्स'

इसमें शक नहीं कि 'एड्स' अंतरराष्ट्रीय महामारी का रुप धारण कर चुकी है. इसलिए 'एडस' पर काबू पाने के लिए प्रयास भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर करने होंगे. पूरी दुनिया को एक होकर 'एड्स' से जूझना होगा. 'एड्स' के खिलाफ इन अंतरराष्ट्रीय प्रयत्नों को संगठित करने का काम विश्व स्वास्थ्य संगठन कर रहा है.

आम आदमी में 'एड्स' के प्रति जागरुकता जगाने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन के तत्वावधान में हर साल 1 दिसंबर को दुनिया भर में विश्व 'एड्स' दिवस मनाया जाता है. यह सिलसिला सन् 1988 से शुरु हुआ है. इस दिन विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा चुने गए किसी एक मुख्य विषय पर जगह-जगह प्रदर्शनियां लगाई जाती हैं, अखबारों में लेख लिखे जाते हैं, रेडियों, टी वी पर जानकारी दी जाती है और वह सब कुछ किया जाता है जो आम आदमी में जागरुकता जगाने के लिए करना चाहिए. इस साल का मुख्य विषय है–'स्त्रियां और एड्स'. सन् 1988 के पहले विश्व 'एड्स' दिवस में 'एड्स' की रोकथाम में संचार माध्यमों की भूमिका पर जोर दिया गया था. दूसरे विश्व 'एड्स' के लिए मुख्य विषय, 'युवा और एड्स' चुना गया था.

इस साल विश्व 'एड्स' दिवस पर 'एड्स' की व्यापकता के बारे में जानकारी देते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने बताया है कि इस साल के मध्य तक उनके पास दुनिया के 150 से अधिक देशों से 'एड्स' के ढाई लाख से ज्यादा मामलों की खबर थी. विश्व स्वास्थ्य संगठन का अनुमान है कि वास्तविकता में दुनिया में 'एड्स' के रोगियों की तादाद सात लाख से ऊपर है.

'एड्स' महिलाओं, पुरुषों और बच्चों को समान रुप से प्रभावित करता है. विश्व स्वास्थ्य संगठन का अनुमान है कि इस समय दुनिया के कम से कम 60 लाख लोग 'एड्स' की विषाणु (एच० आई० वी० या हयूमन इम्यूनोडेफिशिएंसी वायरस) से संक्रमित हैं. इनमें से लगभग एक-तिहाई यानी 20 लाख महिलाएं हैं. विशेषज्ञों को आशा है कि वर्ष 1990-91 के दौरान कम से कम पांच लाख लोग और 'एड्स' की चपेट में आएंगे. इसमें दो लाख स्त्रियां भी शामिल होंगी. सन् 1992 के अंत तक कुल साढ़े तीन लाख स्त्रियां 'एड्स' से ग्रस्त होंगी. इस प्रकार अगले दो सालों में 'एड्स' की स्त्री रोगियों की तादाद, 'एड्स' के पहले दशक में 'एड्स' के रोगियों की कुल तादाद से ज्यादा हो जाएगी. भारत में 31 मई, 1990 तक कुल 2575 लोग 'एड्स' के प्रति सीरम-धनात्मक पाए गए. इनमें 1653 पुरुष और 922 स्त्रियां थीं.

स्त्रियों में 'एड्स' का रोग केवल उनके स्वास्थ्य की दृष्टि से ही खतरनाक नहीं है. इससे कई सामाजिक और आर्थिक समस्याएं पैदा हो सकती हैं. क्योंकि स्त्रियां 'एड्स' के रोगियों के देखभाल में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही हैं समाज और परिवार में उपेक्षिता की भांति जीवन बिताने के कारण इन्हें 'एड्स' संक्रमण का खतरा भी ज्यादा है. 'एड्स' की चपेट में आ जाने पर माताओं को रोग के कष्ट के अलावा मानसिक कष्ट भी होता है. उन्हें बराबर यह चिंता सताती रहती है कि उनके बाद उनके बच्चों की देखभाल कौन करेगा. यह मानसिक तनाव उन्हें और जल्दी मौत के मुंह में धकेल देता है.

'एड्स' से ग्रस्त गर्भवती स्त्रियों की समस्या और विकट है. उनके गर्भस्थ शिशु को भी 'एड्स' विषाणु के संक्रमण का खतरा रहता है. ऐसे प्रमाण मिले हैं कि 'एड्स' विषाणु से संक्रमित स्त्रियों के 25 से 40 प्रतिशत शिशु 'एड्स' विषाणु से ग्रस्त शिशु के रुप में जन्म लेते हैं. ऐसे शिशु अपनी पांचवी सालगिरह नहीं देख पाते.

स्त्रियों की इन पीड़ाओं को सामाजिक और मनोवैज्ञानिक मदद देकर कम किया जा सकता है. उसके परिजन, नाते-रिश्तेदार, अड़ोसी-पड़ोसी अगर उससे अच्छा व्यवहार बनाएं रखें तो उसे ढांढस बंधेगा. पर अक्सर ऐसा होता नहीं. 'एड्स' का नाम सुनते ही लोग दूर भागने लगते हैं. कई बार तो उनके पति ही उन्हें छोड़ देते हैं. अगर पत्नी अपने पैरों पर नहीं खड़ी है तो ऐसी हालत में उसके सामने जीवन-यापन की गंभीर समस्या उठ खड़ी होती है. 'एड्स' संक्रमण से वेश्याओं की तो रोजी-रोटी ही छिन जाती है. उन्हें घनघोर गरीबी में जिंदगी गुजारते हुए मौत का इंतजार करना पड़ता है. आजकल कई देशों में 'एड्स' के रोगियों को सांत्वना देने के लिए मनोवैज्ञानिक सलाहकार मौजूद हैं. 'एड्स' विषाणु से ग्रस्त स्त्रियों को खासतौर से उनकी जरुरत है.

—ज० स०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पता लगाने से विषाणु के बारे में कई नई बातों का पता लगा. यह देखा गया कि इनफ्लुएंजा विषाणु में अपना रुप बदलकर नया प्रभेद बन जाने की अद्भुत क्षमता है. जब बहुत बड़ी आबादी विषाणु के किसी एक प्रभेद के प्रति उदासीन हो जाती है तो विषाणु अपना प्रभेद बदलकर फिर से संक्रमण योग्य बन जाता है. यही वजह है कि अभी तक एनफ्लुएंजा का कोई कारगर टीका नहीं बन पाया है. प्रभेद बदलने के लिए विषाणु को अपना पूरा रुप नहीं बदलना पड़ता.

वैज्ञानिकों ने देखा कि प्रभेद बदलने के लिए विषाणु केवल कुछ जगहों पर अमीनों अम्ल के क्रम बदल देते हैं. वैज्ञानिकों ने बताया कि एच० ए० के एक अणु में एक जैसी तीन उप-इकाइयां होती हैं जिन्हें 'मोनोमर' कहा जाता है. हर 'मोनोमर' में एक कुंडली जैसी संरचना होती है, जो कोशिका से संबंध स्थापित करती है. शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली द्वारा विषाणु से लड़ने के लिए तैयार की गई 'एंटीबाडी' भी इन्हीं कुंडलियों पर आक्रमण करती हैं. विभिन्न प्रभेदों की कुंडलियों का गहराई से अध्ययन करने पर एक दिलचस्प बात पता लगी. हर 'मोनोमर' एक छोटी-सी गुहिका जैसी संरचना होती है, जिसमें मौजूद अमीनो अम्ल का क्रम कभी नहीं बदलता. वैज्ञानिकों ने विषाणु के जितने भी प्रभेद देखे, सभी में इन गुहिकाओं में अमीनो अम्ल का क्रम एक-सा पाया गया. इससे इन गुहिकाओं में वैज्ञानिकों की दिलचस्पी बहुत बढ़ गई.

वैज्ञानिकों ने विषाणुओं की संरचना और इनफ्लुएंजा की महामारियों का गहन अध्ययन किया. नतीजे के रुप में पता लगा कि एनफ्लुएंजा की महामारी तभी फैलती है जब एच० ए० अणु के प्रत्येक मोनोमर की सतह पर स्थित पांच विशेष स्थानों में कम से कम एक अमीनो अम्ल बदल जाता है. यह भी कहा जा सकता है कि महामारी फैलाने के लिए ही विषाणु यह बदलाव लाते हैं. देखा गया कि हर दो साल में एच० ए० मोनोमर में लगभग 14 अमीनो अम्ल बदल जाते हैं. इस तथ्य से यह निष्कर्ष भी निकाला गया कि विषाणु पर आक्रमण करने वाली 'एंटीबाडी' इन्हीं पांच विशेष स्थानों पर आक्रमण करती हैं. विषाणु इन स्थानों में अमीनो अम्ल को बदलकर एंटीबाडी को धोखा देने में कामयाब हो जाता है. इस तरह विषाणु हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली से हमेशा एक कदम आगे रहते हैं.

वैज्ञानिकों ने यह अनुमान तो लगा लिया था कि मोनोमर में मौजूद कभी संरचना न बदलने वाली गुहिका के माध्यम से ही विषाणु कोशिका पर चिपकते हैं. पर इसका कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं था. इसका वैज्ञानिक प्रमाण सन् 1988 में विलियम वीस नाम के शोध छात्र ने जुटाया. वीस को मार्गदर्शन देने का काम विले महोदय कर रहे थे. वैज्ञानिकों को यह पहले से मालूम था कि हमारी कोशिका की सतह पर मौजूद सियालिक या न्यूरामिनिक अम्ल के अणु इनफ्लुएंजा विषाणु को कोशिका से चिपकाने में मदद करते हैं. इसलिए वीस ने एच० ए० क्रिस्टलों को सियालिक अम्ल के घोल में डाल दिया. जैसी अपेक्षा थी, एच० ए० अणु और सियालिक अम्ल के अणु एक-दूसरे से चिपक गए. वीस ने बंधित अणुओं का गहराई से अध्ययन किया. पता लगा कि दोनों अणुओं की संरचना ऐसी है कि दोनों एक दूसरे पर भली-भांति बैठ जाते हैं. इस महत्वपूर्ण उपलब्धि के लिए वीस को कोलम्बिया युनिवर्सिटी से डॉक्टरेट की उपाधि मिली. अब इनफ्लुएंजा विषाणु की कमजोरी पकड़ में आ गई थी. इसलिए इस पर हमला करने का इरादा किया गया.

एनफ्लुएंजा विषाणुओं से टकराने के लिए सबसे पहले ऐसी दवाएं तैयार करने पर विचार किया जा रहा है, जो संरचना में सियालिक अम्ल जैसी हों, लेकिन एच० ए० अणु पर सियालिक अम्ल से भी ज्यादा मजबूती से बैठ सकें. नाक में ऐसी दवाओं का फुहारण करने से विषाणु निष्क्रिय हो जाएगा. इस ओर प्रयोग जारी हैं. इसके अलावा विषाणुओं को निष्क्रिय करने के और उपाय भी खोजे जा रहे है. इसके लिए विषाणु द्वारा परपोषी जीव को कोशिका झिल्ली को गलाने की प्रक्रिया को ठप्प करने की बात सोची जा रही है. इसमें भी दवाओं के उपयोग की संभावना है. परपोषी जीव की कोशिका झिल्ली को गलाने में भी एच० ए० अणु की महत्वपूर्ण भूमिका है. इसलिए एच० ए० की त्रि-आयामी संरचना का ज्ञान होना इसमें काफी मददगार साबित हो सकता है.

परमाणविक संरचना

वैज्ञानिक चाहते थे कि, पूरे इन्फ्लुएंजा विषाणु की त्रि-आयामी संरचना का पता लग सके. लेकिन ऐसा संभव नहीं हो सका क्योंकि चारों ओर से वसा के आवरण से ढका होने के कारण इसका क्रिस्टलीकरण संभव नहीं है. इसी वजह से 'एड्स' के विषाणु की त्रि-आयामी संरचना का पता भी नहीं लग पा रहा है. लेकिन कुछ विषाणु ऐसे हैं, जिन पर वसा का आवरण नहीं है. उनमें मौजूद न्यूक्लीय अम्लों के चारों ओर केवल प्रोटीन का आवरण होता है, इसलिए इनका क्रिस्टलीकरण संभव है.

सबसे पहले पूरे विषाणु की परमाणविक संरचना का पता लगाने का श्रेय स्टीफेन हैरिसन नामक वैज्ञानिक को है. उन्होंने सन् 1978 में टमाटर पर लगने वाले विषाणु (बुशी स्टंट वायरस) की संरचना बताई. सन् 1985 में दो अन्य विषाणुओं की परमाणविक संरचना का पता लगाया गया. एक तो सर्दी जुकाम करने वाले विषाणु राइनोवायरस-14 का और दूसरे पोलियो के विषाणु का.

राइनोवायरस-14 की परमाणविक संरचना का पता माइकेल रॉसमैन नामक वैज्ञानिक ने लगाया. उन्होंने देखा कि विषाणु की सतह पर 60 जगहों पर संकरी दरारें होती हैं. एंटीबाडी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हीं दरारों के किनारों पर चिपकती हैं. पर आकार में बड़ी होने के कारण ये दरारों के अंदर नहीं घुस पातीं. यह भी देखा गया कि यह विषाणु सतह पर अमीनो अम्लों को अदल-बदल कर सौ से भी ज्यादा रूप गढ़ लेता है, पर दरारों के अंदर अमीनो अम्ल के क्रम में कोई बदलाव नहीं आता. इससे अनुमान लगाया गया कि कोशिका की सतह से कुछ पतली संरचनाएं निकलती हैं, जो इन दरारों में घुसकर विषाणु को कोशिका से जोड़ देती हैं. बाद में नाक की भीतरी सतह की कोशिकाओं पर ऐसी संरचनाएं देखी गईं. इससे सर्दी-जुकाम के विषाणु पर काबू पाने का नया रास्ता मिल गया.

अमेरिका के स्टर्लिंग-विनश्राप अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने दो रासायनिक यौगिक बनाए जो सर्दी-जुकाम के विषाणु के संक्रमण को कम करते थे. वैज्ञानिकों का अनुमान था कि ये यौगिक उस प्रक्रिया को ठप्प कर देते हैं जिससे विषाणु अपनी आनुवांशिक सामग्री कोशिका में डालता है. बाद में संरचनात्मक अध्ययन करने पर और भी कई बातें सामने आईं. विषाणु-यौगिक का परसाणविक स्तर पर संरचनात्मक अध्ययन करने के लिए वैज्ञानिकों ने राइनोवायरस-14 विषाणु के क्रिस्टलों को 'विन-51711' और 'विन-52084' नामक दवाओं या यौगिकों के घोल में डुबोया. इस तरह पहली बार किसी दवा से बंधित विषाणु की संरचना देखने को मिली.

वैज्ञानिकों ने देखा कि ये रसायन दरारों के अंदर घुस जाते हैं. इसके बाद दरार की तलहटी में बने सूक्ष्म छिद्र से होते हुए एक थैलीनुमा संरचना में प्रवेश कर जाते हैं. इससे विषाणु की संरचना अकड़ जाती है. यह प्रभाव विषाणु पर दो तरह से असर डालता है. एक तो विषाणु की कोशिका से संलग्न होने की क्षमता नष्ट हो जाती है; दूसरे अपना प्रोटीन आवरण हटाकर आनुवांशिक सामग्री कोशिका में डालने की सामर्थ्य खत्म हो जाती है. इस प्रकार विषाणु प्रभावहीन हो जाते हैं. जल्दी ही इस प्रकार की दवाओं के नैदानिक परीक्षण शुरु होने वाले हैं.

राइनोवायरस-14 की परमाणविक संरचना का पता लगने के थोड़े समय बाद ही पोलियो के विषाणु की परमाणविक संरचना भी ज्ञात कर ली गई. यह काम तीन वैज्ञानिकों ने मिलकर किया—जेम्स होगले, डेविड फिलमैन और मेरी चाड. राइनोवायरस-14 और पोलियो के विषाणु में आश्चर्यजनक संरचनात्मक समानता पाई गई है. अब होगले महोदय पोलियो विषाणु के विभिन्न प्रभेदों को संरचना जानने में जुटे हैं ताकि केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में विषाणुओं के घुसने की प्रक्रिया का विस्तार से पता लग सके. इससे यह भी पता लगेगा कि यह विषाणु किस प्रकार लकवा पैदा करता है. यह जानकारी पोलियो के आक्रमण से निपटने में बड़ी सहायक सिद्ध होगी. होगले ने पोलियो विषाणु के कुछ प्रभेदों की संरचना का पता लगाया है. इससे पोलियो के टीके को अधिक ताप सहने योग्य बनाने की संभावना का पता लगा है. अगर इस दिशा में सफलता मिल गई तो टीके को रेफ्रीजरेटर में रखने की जरुरत नहीं पड़ेगी. इससे खासतौर से विकासशील देशों को बहुत लाभ होगा .

पोलियो विषाणु की संरचना का पता लगने से कुछ वैज्ञानिक एक नई संभावना पर भी खोज कर रहे हैं. क्या पोलियो-विषाणु से मिलते जुलते अन्य विषाणुओं के टुकड़ों को पोलियो-विषाणु के प्रोटीन आवरण पर चिपकाया जा सकता है? अगर ऐसा संभव हो गया तो पोलियो के टीके के माध्यम से ही अन्य संबंधित विषाणुओं से होने वाले रोगों के विरुद्ध भी टीका लगाया जा सकेगा. यह एक महत्वपूर्ण तथा क्रांतिकारी उपलब्धि होगी.

'एड्स' विषाणु से मुकाबला

आज के सबसे खतरनाक रोग 'एड्स' के विषाणु पर दुनिया भर में जोर शोर से अनुसंधान जारी है. अभी तक इसकी कोई प्रभावकारी दवा नहीं खोजी जा सकी है. हां, सीमित महत्व की एक दवा जरुर मौजूद है जिसे एजिडोथाइमिडीन (ए० जेड० टी०) का नाम दिया गया है. इसके जहरीले प्रभाव भी हैं. यह दवा विषाणु की तादाद बढ़ाने की क्षमता को नष्ट कर देती है. वैज्ञानिकों ने बताया है कि ए० जेड० टी० विषाणु में मौजूद 'रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेस' नामक एंजाइम की क्रियाशीलता नष्ट कर देता है. यह वह एंजाइम है जो विषाणु की आनुवांशिक सामग्री को डी० एन० ए० में बदलता है ताकि इसके जीन प्रभावित कोशिकाओं को भारी तादाद में विषाणु बनाने के निर्देश दे सकें. उल्लेखनीय है कि ए० जेड० टी० को 'एड्स' की दवा के रुप में विकसित नहीं किया गया था. लगभग 25 साल पहले इससे कैंसर के इलाज की संभावना थी. जब 'एड्स' की दवाओं की खोज हुई तो इसे कुछ आशाप्रद पाया गया और आजमाया गया. इस समय तक 'एड्स' के विषाणु की संरचना को कोई ज्ञान नहीं था.

अब विधिवत् वैज्ञानिक रुप से 'एड्स' की दवाएं खोजी जा रही हैं. इसमें 'एड्स' के विषाणु की संरचना का पता होना काफी सहायक सिद्ध हो सकता है. जैसा पहले बताया है, 'एड्स' के विषाणु का क्रिस्टलीकरण संभव नहीं है लेकिन दुनिया की अनेक प्रयोगशालाओं में 'एड्स' विषाणु महत्वपूर्ण घटकों की संरचना का पता लगाया जा रहा है. साथ ही कोशिका की सतह पर मौजूद ग्राही संरचनाओं के बारे में विस्तार से जानने की कोशिश भी जारी है.

इस दिशा में पहली सफलता फरवरी 1989 में मिली. मर्क कम्पनी में कार्यरत वैज्ञानिक मैनुअल नेविया और उनके सहयोगियों ने 'एड्स' विषाणु के एक महत्वपूर्ण एंजाइम प्रोटीएस की संरचना बताई. यह एंजाइम बड़ी पौलीप्रोटीन को टुकड़ों में बांटती है और कुछ आवश्यक विषाणु प्रोटीन को छोड़ता है. इसमें रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेस भी शामिल है. जब तक प्रोटीएस इन प्रोटीनों को मुक्त नहीं करता, तब तक ये कार्य नहीं कर सकती और न ही विषाणु अपनी तादाद बढ़ा सकते है. नेविया ने बताया की विषाणु की प्रजनन क्रिया को ठप्प करने के लिए ऐसी दवा विकसित की जा सकती है, जो उस जगह को बंद करके जहां प्रोटीएस एंजाइम प्रोटीनों को मुक्त करता है.

नेविया की रिपोर्ट के तुरंत बाद ही प्रोटीएस की संरचना बताने वाली एक अन्य रिपोर्ट भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्भुत विषाणु जीवन

विषाणु, जीव और निर्जीव के बीच की चारदीवारी पर खड़े पिंड हैं. ये जीव होने की सारी आवश्यक शर्तें पूरी नहीं करते. प्रजनन का ही मामला लें. विषाणुओं में प्रजनन के लिए इनका किसी जीवित कोशिका में शामिल होना जरुरी है प्रकृति ने इन्हें बड़ी कंजूसी से बनाया है. अपना जीवन चलाने के लिए इनके पास केवल प्रोटीन में लिपटे डी० एन० ए० या आर० एन० ए० के कुछ छोटे टुकड़े होते हैं. कभी-कभी प्रोटीन के आवरण पर वसा का एक आवरण भी चढ़ा रहता है. फिर भी इनकी सूक्ष्मता बरकरार रहती है.

अपने अत्यन्त सूक्ष्म आकार के कारण ही यह सालों तक वैज्ञानिकों की आंखों से ओझल रहे. हालांकि, यह अनुमान सन् 1890 के आस पास ही लग गया था कि सारे रोगों के लिए जीवाणु जिम्मेदार नहीं हैं. कुछ और पिंड भी हैं, जो संक्रमण फैलाते हैं. पर इन्हें देखने में चालीस साल से ज्यादा समय लग गया. सन् 1930 के आस-पास इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी विकसित होने पर पहली बार विषाणुओं को देखा गया. उल्लेखनीय है कि इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी की आवर्धन शक्ति बढ़िया से बढ़िया प्रकाश सूक्ष्मदर्शी से सौ गुना ज्यादा होती है. विषाणुओं की चौड़ाई या व्यास केवल 20 से 400 नैनोमीटर के बीच होती है. एक नैनोमीटर एक इंच के ढाई करोड़वें हिस्से के बराबर होता है. जीवाणुओं का औसत व्यास या चौड़ाई 1500 नैनोमीटर होती है, जबकि कोशिकाओं का आकार 10,000 नैनोमीटर के बराबर होता है. इन तुलनाओं से विषाणु की सूक्ष्मता आसानी से आंकी जा सकती है.

जैसा पहले बताया है कि विषाणु को अपना जीवन चलाने के लिए किसी जीवित कोशिका की जरुरत होती है. कोशिका मिलते ही यह उस पर चिपक जाता है और कोशिका भित्ति गलाकर उसमें प्रवेश कर जाता है. कोशिका में घुसते ही यह अपनी जीन उसमें छोड़ देता है, जो कोशिका का संचालन अपने हाथ में ले लेते हैं. अब कोशिका एक गुलाम की तरह अपनी जरुरतों की परवाह न करते हुए विषाणु-उप इकाइयों के उत्पादन में जुट जाती है. उप इकाइया मिलकर विषाणु पिंड या वाइरियान की रचना करती हैं.

कुछ विषाणु कोशिका से निरंतर उप इकाइयों का उत्पादन नहीं करवाते. ये अपने जीन परपोषी जीव की कोशिका के क्रोमोसोम पर चिपका देते हैं. इससे जब क्रोमोसोम का द्विगुणन होता है, तभी इनके जीन का भी अपने-आप द्विगुणन हो जाता है. 'एड्स' का विषाणु इसी प्रकार का है. इस वर्ग के कुछ विषाणुओं को 'रिट्रोवायरस' कहा जाता है. ऐसा इसलिए कि ये विषाणु आनुवांशिक क्रिया को उल्टे ढंग से सम्पन्न करते हैं. इनके जीन आर० एन० ए० के बने होते हैं. रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेस एंजाइम की मदद से ये विषाणु आर० एन० ए० के पूरक डी० एन० ए० का निर्माण करते हैं. अब इनमें भी अपनी अधीनस्थ कोशिका से भारी तादाद में विषाणुओं को तैयार करवाने की शक्ति आ जाती है. अगर इस प्रक्रिया में विषाणु का डी० एन० ए० गलत जगह बैठ जाए तो कैंसर की दशा उत्पन्न हो जाती है.

विषाणुओं की सूक्ष्मता जहां एक ओर समस्या बनी रही, वहीं दूसरी ओर इसने वैज्ञानिकों की काफी मदद भी की. जीवविज्ञान के अनेक आधुनिक सिद्धान्तों को गढ़ने में विषाणुओं की सरल संरचना सहायक सिद्ध हुई है. बैक्टीरियोफेज (जीवाणुओं का भक्षण करने वाले सूक्ष्म विषाणु) की आनुवांशिकी और रसायन के अध्ययन ने आणविक जैविकी को जन्म दिया है. आज के युग में आणविक जैविकी के महत्व को शायद बताने की जरुरत नहीं.

विषाणु के बारे में एक आम गलतफहमी और दूर कर दें. ज्यादातर विषाणु हानिकारक नहीं होते. ये परपोषी के साथ मिलकर उसे बिना कोई नुकसान पहुंचाए अपना जीवन चलाते हैं. इनकी भलाई इसी में है कि परपोषी ज्यादा से ज्यादा समय तक जीवित रहे. पर अपनी तादाद बढ़ाने के बारे में ये सदैव सचेत रहते हैं. यह चाहते हैं कि मनुष्य छींककर या किसी अन्य तरीके से संक्रमण फैलाता रहे. अगर मनुष्य किसी विषाणु संक्रमण से बहुत जल्दी मर जाता है तो यह विषाणु की कोई भयंकर भूल होती है. इसलिए कुछ रोगों को छोड़कर विषाणु को जानलेवा मानना गलती है.

—ज० स०

सामने आई. इनमें प्रोटीएस की संरचना क और अधिक विस्तार से बताया गया था. य काम नेशनल कैंसर इंस्टीट्यूट के वैज्ञानि एलैक्जेंडर व्लोवेडर और उनके सहयोगियों किया था. अब हमारे पास प्रोटीएस की संरचन के बारे में उतनी ही जानकारी थी, जितनी इ वर्ग के अन्य एंजाइमों पेप्सिन, रेनिन, आदि वे बारे में. इस तरह अब हमारे पास प्रोटीएस वे बारे में जानकारी का विशाल भंडार है. इ जानकारी का उपयोग करके दवाएं बनाने क कोशिश की जा रही है. दवाओं की कु कंपनियों ने ऐसे पेप्टाइड (अमीनो अम्ल क लड़ी) तैयार कर लिए हैं, जो प्रोटीएस क निष्क्रिय कर देते हैं. वैज्ञानिकों ने प्रोटीए बंधित पेप्टाइड की विस्तृत संरचना भी ज्ञात कर ली है. इससे दवाएं तैयार करने में काफ मदद मिल रही है.

नई चुनौती नया रास्ता

'एड्स' की कठिन चुनौती का सामना करने के लिए कुछ वैज्ञानिक एक नई दिशा में आगे बढ़ रहे हैं. ये वैज्ञानिक सी० डी०-4 नामक प्रोटीन की विस्तृत संरचना का पता लगा रहे हैं, जबकि सी० डी०-4 विषाणु का हिस्सा नही है. ऐसे वैज्ञानिकों में स्टीफैन हैरिसन, डॉन विले और वेन हेनड्रिक्सन अग्रणी हैं. सी० डी०-4 हमारे शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली की कोशिकाओं की सतह से निकलने वाली लंबी और गोल घुंडीदार संरचनाएं हैं. 'एड्स' विषाणु इन्हीं के माध्यम से कोशिका से संलग्न होता है. सी० डी०-4 का निचला हिस्सा कोशिका में धंसा रहता है, पर ऊपरी हिस्सा घुलनशील है और इसका क्रिस्टलीकरण संभव है. दुनिया की अनेक प्रयोगशालाओं में आधुनिकतम तौर-तरीकों से इस क्रिस्टल की संरचना का पता लगाया जा रहा है.

सी० डी०-4 की संरचना का पता लगने के पहले से ही वैज्ञानिक 'एड्स' के इलाज में सी० डी०-4 का उपयोग करने के प्रयोग कर रहे हैं. जीन इंजीनियरी की कला का उपयोग करके घुलनशील सी० डी०-4 तैयार किया गया है. यह कृत्रिम सी० डी०-4 'एड्स' विषाणु की सतह पर उन जगहों को अवरुद्ध कर देता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनके माध्यम से यह प्राकृतिक सी० डी०-4 से जुड़ता है. इस प्रकार 'एड्स' विषाणु संक्रमण योग्य नहीं रह जाता. घुलनशील सी० डी०-4 के अन्य प्रभाव भी जांच लिए गए हैं. जल्दी ही रोगियों पर भी परीक्षण किए जाएंगे.

सी० डी०-4 के उपयोग में एक समस्या है. हमारा शरीर घुलनशील सी० डी०-4 को बहुत जल्दी शरीर से बाहर निकाल देता है. इतनी जल्दी कि रक्त में सी० डी०-4 की पर्याप्त सांद्रता बनाए रखने के लिए रोगियों को हर रोज दो इंजेक्शन देने पड़ते है. वैज्ञानिकों ने इस समस्या का समाधान भी सोच लिया है. कुछ वैज्ञानिकों ने प्रतिरक्षा प्रणाली की कोशिकाओं को उत्तेजित करने वाली एंटीबाडी के पीछे घुलनशील सी० डी०-4 को जोड़ दिया है. इस संयोजन को 'इम्यूनोएडहेसिन' का नाम दिया गया है. वैज्ञानिकों को आशा है कि यह संयोजन अकेले सी० डी०-4 की तुलना में शरीर में 50 गुना अधिक देर तक टिक सकेगा और संक्रमित कोशिकाओं को नष्ट भी कर सकेगा. यह भी आशा की जा रही है कि यह संयोजन अपरा (प्लेसेन्टा) से होता हुआ गर्भस्थ शिशु तक भी पहुंच सकेगा. इस प्रकार 'एड्स' से ग्रस्त गर्भवती महिलाओं को अपने गर्भस्थ शिशु समेत सुरक्षा मिल सकेगी. एक अन्य शोध संस्थान के वैज्ञानिक घुलनशील सी० डी०-4 के जीन और एक संभावित विष (जो 'एड्स' ग्रस्त कोशिकाओं को मार सके) के जीन का मेल कराने में सफल हुए हैं. इस प्रकार तैयार प्रोटीन 'एड्स' ग्रस्त कोशिका के भीतर घुस जाती है और उसे विषाणु समेत नष्ट कर देती है.

इस प्रकार तैयार किए गए संयोजन अगर सुरक्षित और प्रभावकारी सिद्ध होते हैं तो यह एक क्रांतिकारी उपलब्धि होगी. इसकी सफलता का मतलब है कि 'एड्स'से ग्रस्त व्यक्ति भी नियमित रुप से इन संयोजनों का इंजेक्शन लेकर स्वस्थ जीवन बिता सकेंगे. ठीक वैसे ही जैसे मधुमेह के रोगी जीवन भर इंसुलिन का इंजेक्शन लेते हैं. उस खोज के प्रकाशित होने के छह महीने के भीतर ही इस संयोजनों पर परीक्षण शुरु हो गए हैं. अभी नतीजे आने बाकी हैं.

कुछ वैज्ञानिक कृत्रिम घुलनशील सी० डी०-4 का उपयोग करने के पक्ष में नहीं हैं. इनका मानना है कि ऐसा करने से प्राकृतिक सी० डी०-4 की सामान्य क्रिया ठप्प पड़ जाएगी, जो नई समस्याएं पैदा कर सकती हैं. अभी तक हमें सी० डी०-4 को सामान्य क्रिया के बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं है, इसलिए इससे छेड़छाड़ करना ठीक नहीं होगा. सी० डी०-4 का पक्ष लेने वाले वैज्ञानिकों की राय में इसकी विस्तृत संरचना का पता लगते ही यह समस्या हल हो जाएगी. तब हम सी० डी०-4 का केवल उतना सूक्ष्म टुकड़ा ही तैयार करेंगे जो 'एड्स' विषाणु से जुड़ता है. इस प्रकार प्राकृतिक सी० डी०-4 की सामान्य क्रिया भी चलती रहेगी.

विषाणुओं के संरचनात्मक ज्ञान ने विषाणु रोगों के इलाज का नया रास्ता खोल दिया है. अब विषाणु रोगों के इलाज की संभावनाएं भी नजर आने लगी हैं. चिकित्सा के क्षेत्र में यह एक नई क्रांति होगी. □

(पृष्ठ 442 का शेषांश)

पता नहीं, परंतु उसका घनत्व बेसाल्ट जैसा है. रेडार से लावा के बहाव का संकेत भी मिला है.

शुक्र का चुम्बकीय क्षेत्र बहुत क्षीण है, पृथ्वी की तुलना में उसकी तीव्रता केवल हजारवां हिस्सा है. शायद चुम्बकत्व के अभाव का कारण उसका मंद घूर्णन है जिसके कारण वहां कोई 'डाइनेमो' प्रभाव (पृथ्वी जैसा) नहीं उत्पन्न हो सकता.

ग्रह के बारे में आधुनिक अभिमतानुसार इसकी क्रोड लोहे तथा निकेल की बनी है जिनकी त्रिज्या लगभग 3000 किलोमीटर है. उसके ऊपर मेंटल की पर्तें हैं. ऐसा लगता है एकदम ऊपर परत कुछ 'प्लटों' में विभक्त है जिसकी परस्पर टकराहट से भूकम्प (शुक्रकम्प) उत्पन्न होते हैं. □

(पृष्ठ 462 का शेषांश)

अक्सर उन्हें अपने पुरुष साथी के बारे में यह जानकारी नहीं होती कि वह संक्रमित है अथवा नहीं. एड्स संक्रमित पुरुष साथी से होने वाले संक्रमण से बचने के लिए यह आवश्यक है कि स्त्रियां उन्हें यौन संबंध स्थापित करते समय दृढ़ता पूर्वक कण्डोम के उपयोग के लिए बाध्य करें. परन्तु पुरुष प्रधान समाज में अक्सर ऐसा नहीं हो पाता और पुरुषों की इच्छा सर्वोपरि होती है.

स्त्रियों को इन सारी समस्याओं से उबारने के लिए उनका शिक्षित और स्वावलम्बी होना तो आवश्यक है ही, उतना ही जरुरी है अधिक से अधिक संख्या में, उन्हें एड्स रोग, उसके संक्रमण के तरीकों और संक्रमण से बचने के उपायों और संक्रमित तथा रोगी व्यक्ति की देखभाल कर सकने के बारे में शिक्षित करना.

इस काम में शिक्षण-संस्थाओं, स्वयंसेवी संगठनों, प्रचार और जन संचार माध्यमों तथा पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण है. यदि ये सभी एक मिशन के रुप में कन्धे से कन्धा मिला कर इस काम में जुट जाएं तो इसमें कोई संदेह नहीं कि मानवता पर मंडराते 'एड्स' के खौफ को बहुत कुछ कम किया जा सकता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैंसरः असाध्यता का सिमटता दायरा

□ डा० अचल गर्ग

इस सदी का सबसे भयानक रोग कैंसर. संसार का कोई भी हिस्सा इस बीमारी से अछूता नहीं है. बच्चे, बूढ़े, स्त्री, पुरुष सभी वर्गों में यह रोग समान रूप से व्याप्त है, और वर्षों के कठोर परिश्रम के बाद भी अभी तक इस रोग का शत प्रतिशत इलाज नहीं खोजा जा सका है.

तो क्या मानव ने कैंसर से हार मान ली है? क्या यह रोग हमेशा ही हम पर हावी रहेगा? मौत का पर्याय कही जाने वाली यह बीमारी आखिर पैदा कैसे होती है? वैज्ञानिक और चिकित्सक वर्षों के अथक परिश्रम के बाद भी इस पर विजय क्यों नहीं पा सके हैं?

ये कुछ सवाल ऐसे हैं जिनका जवाब पाने के लिए आज हर व्यक्ति उत्सुक है. यद्यपि इसे अब असाध्य कदापि नहीं कहा जा सकता शायद कैंसर पर पूरी तरह काबू पाने के लिए हमें अभी वर्षों इंतजार करना पड़े. किंतु दशकों से किए जा रहे श्रम पूर्ण अनुसंधानों के फलस्वरूप वैज्ञानिकों के लिए कैंसर अब कोई हौवा नहीं रह गया है. कैंसर पर सितम्बर 1990 के अंक से आरंभ खोजपूर्ण लेखों की इस लेखमाला के पहले, दूसरे और तीसरे लेखों में आपने पढ़ा कैंसर का संक्षिप्त इतिहास, उसकी उत्पत्ति के कारणों का एक विवेचन और हमारे देश में इस रोग का फैलाव किस प्रकार बढ़ता जा रहा है. लेख माला के इस चौथे लेख में आइए हम पढ़े कि वैज्ञानिकों के प्रयत्नों के फलस्वरुप किस तरह कैंसर की असाध्यता का दायरा दिन प्रति दिन सिमटता जा रहा है.

□ कैंसर रोग की चिकित्सा अत्यधिक दुरुह तथा जटिल कार्य है. एक भाग में पैदा होकर शीघ्र ही शरीर के अन्य भागों में फैल जाने की इसकी विशेषता के कारण ही अब तक इस रोग पर नियंत्रण पाना संभव नहीं हो पाया है. इसकी चिकित्सा के लिए शल्य क्रिया, विकिरण तथा रासायनिक चिकित्सा जैसी पारम्परिक चिकित्सा विधियों का सहारा लिया जाता रहा है. पिछले कुछ वर्षों में इस रोग के अनेक गूढ़ रहस्यों पर से पर्दा उठने तथा चिकित्सा विज्ञान में हासिल की गई नित नई खोजों के फलस्वरुप अब कैंसर की अनेक नई चिकित्सा प्रणालियां भी विकसित की जा रही हैं. लेकिन अभी भी पारम्परिक चिकित्सा विधियों पर ही अधिक बल दिया जाता है.

शल्य-चिकित्सा

कैंसर के इलाज में शल्य-चिकित्सा का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है. शल्य-चिकित्सा का सहारा उस स्थिति में लिया जाता है जब कैंसर बहुत अधिक फैला न हो तथा यह विश्वास हो कि कैंसर ग्रस्त भाग को काट कर निकाल देने से रोगी का जीवन बचाया जा सकता है. शरीर के बाहरी अंगों जैसे त्वचा, कान, आंख, स्तन, जनन अंग आदि में पैदा हुए कैंसर के इलाज में शल्य-चिकित्सा बहुत उपयोगी है. शरीर के कुछ भीतरी अंगों जैसे आंत, मलाशय, गर्भाशय, हड्डी, स्वर यंत्र, तथा मुंह आदि भागों में पैदा हुए कैंसर के इलाज में भी शल्य-चिकित्सा का सहारा लिया जाता है. रक्त कैंसर व स्नायु तंत्र के कुछ प्रकार के कैंसर में शल्य-चिकित्सा का उपयोग नहीं किया जा सकता.

किसी व्यक्ति में कैंसर की पुष्टि होते ही सबसे पहला प्रयास यह होता है कि कैंसर को जहां का तहां नष्ट कर दिया जाए. इसके लिए शल्य-क्रिया सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती है क्योंकि इसके द्वारा कैंसर ग्रस्त भाग को काट कर शरीर से निकाल ही दिया जाता है. अतः शल्य-चिकित्सा तभी सफल हो सकती है जब कैंसर ज्यादा विकसित न होकर केवल थोड़े से स्थान में ही सीमित हो.

अनेक बार कैंसर ग्रस्त भाग को निकालने के लिए पूरा का पूरा अंग काट डालना पड़ता है. गर्भाशय, स्तन, स्वर यंत्र आदि अंगों के कैंसर की शल्य-चिकित्सा के दौरान इन अंगों को पूरा का पूरा निकाल दिया जाता है. इन अंगों के निकाल दिए जाने के बाद रोगी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्य जीवनचर्या पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है. हां इससे अपंगता या शारीरिक विकृति अवश्य पैदा हो जाती है.

प्रायः देखा गया है कि कैंसर शुरु होने के कुछ दिनों बाद ही कैंसरीय भाग से कुछ कोशिकाएं निकल कर लसिका पर्वो (लिम्फ नोड) में एकत्र हों जाती हैं. लसिका पर्व शरीर के लगभग सभी जोड़ों में पाए जाते हैं. शल्य-चिकित्सा के बाद इन्हीं लसिका पर्वो में से निकलकर कैंसर कोशकाएं एक बार फिर रक्त में मिल जाती हैं और कुछ अंगों में पुनः कैंसर पैदा कर देती हैं. इस स्थिति का सामना न करना पड़े इसके लिए प्रायः कैंसरीय भाग की शल्य-चिकित्सा के साथ-साथ लसिका पर्व भी निकाल दिए जाते हैं ताकि कैंसर को दुबारा पैदा न होने दिया जाए. अनेक बार शल्य-चिकित्सा के बाद विकिरण चिकित्सा तथा कैंसर रोधी रासायनिक दवाओं की भी मदद ली जाती है ताकि शरीर में उपस्थित बची हुई कैंसर कोशिकाएं भी नष्ट की जा सकें.

विकिरण चिकित्सा

विकिरण चिकित्सा का अर्थ है रेडियोधर्मी किरणों की मदद से कैंसर ग्रस्त भाग का सेक करना. इसमें प्रमुख है कोवाल्ट किरणों से सेक करना. रेडियोधर्मी किरणें सीधे कोशिका के केंद्रक में उपस्थित गुण सूत्रों को प्रभावित करके उनकी विभाजन क्षमता नष्ट कर देती हैं जिससे अन्ततः कोशिका भी समाप्त हो जाती है. चूंकि रेडियोधर्मी किरणों का सामान्य कोशिकाओं की तुलना में कैंसर कोशिकाओं पर जल्दी व अधिक प्रभाव पड़ता है अतः विकिरण की मदद से कैंसर कोशिकाएं आसानी से नष्ट की जा सकती हैं. जैसे-जैसे कैंसर कोशिकाएं नष्ट होती जाती हैं कैंसरीय गांठ भी आकार में छोटी होने लगती है. बाद में छोटे आकार की गांठ शल्यक्रिया द्वारा आसानी से बाहर निकाल दी जाती है.

विकिरण चिकित्सा से पूर्व कैंसरीय गांठ की स्थिति की बिल्कुल सही जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक होता है. इसके बाद उस क्षेत्र को चिन्हित कर दिया जाता है. कैंसर की गांठ के स्थान, उसके आकार, प्रकृति तथा व्यक्ति की शारीरिक संरचना के आधार पर दी जाने वाली रेडियोधर्मी किरणों की कुल मात्रा भी पहले से ही तय कर लेना आवश्यक होता है.

रेडियोधर्मी किरणों की सारी मात्रा एक बार में नहीं बल्कि थोड़ा-थोड़ा कर कई दिनों तक दी जाती है. ऐसा करने से कैंसर कोशिकाएं तो नष्ट की जा सकती हैं परंतु सामान्य कोशिकाओं पर रेडियोधर्मिता का कम प्रभाव पड़ता है. चिकित्सा के लिए निर्धारित भाग को छोड़ कर उसके आस-पास के अन्य भागों को ढक दिया जाता है तथा मरीज को ऐसी स्थिति में लिटाया या खड़ा किया जाता है जिससे सेक करने में आसानी हो. मशीन को संचालित करने वाला तकनीशियन प्रायः एक मोटी दीवार के पीछे से मशीन का संचालन करता है जिसमें एक खिड़की बनी होती है. खिड़की से वह मरीज पर निगाह रख सकता है. एक बार में लगभग 5-6 मिनट तक सेक की जाती है.

रसायन चिकित्सा

सन् 1940 के आस पास पहली कैंसर रोधी दवा की खोज हुई थी. तब से लेकर अब तक ढेरों ऐसे रसायनों का पता लगाया जा चुका है जिनमें कैंसर नष्ट करने की क्षमता होती है. इनमें अनेक संश्लेषित रसायन तथा हारमोन भी शामिल हैं. शल्य व विकिरण चिकित्सा के विपरीत रसायन चिकित्सा का प्रभाव व्यक्ति के पूरे शरीर पर पड़ता है. वैसे अनेक बार रसायन चिकित्सा विकिरण या शल्य-चिकित्सा के साथ ही दी जाती है.

अब तक तीस से भी अधिक कैंसररोधी रासायनिक दवाओं का पता लगाया जा चुका है जिन्हें एल्काइलेटिंग रसायन, प्रतिजैविक, प्रति चयापचय कोशिका विभाजन रोधी आदि समूहों में बांटा जा सकता है.

एल्काइलेटिंग समूह के रसायन सीधे डी० एन० ए० से क्रिया करते हैं. बुस्फेन, सिस-प्लास्टिन, साइक्लोफोस्फेमाइड, मेफलान, थायोटेपा, स्ट्रेप्टोजोरोसिन तथा क्लोरोजोरोसिन आदि इस समूह की कुछ प्रमुख कैंसर रोधी दवाएं हैं. कुछ प्रतिजैविक (एंटोबायोटिक) दवाओं में भी कैंसररोधी गुणों की पुष्टि हुई है. एक्टिनोमाइसिन-डी, एड्रिएमाइसिन, ब्लियोमाइसिन, डोनोरुबीसिन तथा माइटोमाइसिन-सी आदि इस समूह की प्रमुख कैंसररोधी दवाएं हैं.

कुछ रसायन कोशिका में डी एन ए के विभाजन को रोक सकते हैं. ऐसे रसायनों को प्रतिचयापचयक (एंटी मेटाबोलाइट) समूह के अन्तर्गत रखा गया है. इस समूह की कुछ प्रमुख दवाएं हैं:—5-फ्लुअरोसिल, 6-मेटाकैप्टोप्यूरीन तथा मीथेट्रेक्सेट आदि. इसी प्रकार कोशिका विभाजन रोकने में सक्षम रसायन भी कोशिकाओं की बढ़वार रोक कर उन्हें नष्ट कर डालते हैं. विनब्लास्टिन, विनक्रिस्टिन तथा विन्डेसिन आदि रसायन इनमें प्रमुख हैं. इन सब के अलावा कुछ ऐसे भी कैंसररोधी रसायन होते हैं जो उपरोक्त चारों रसायनों से अलग प्रकार से कार्य करते हैं. इन्हें एक अन्य समूह में रखा गया है. इस समूह के सभी कैंसररोधी रसायनों की कैंसर नष्ट करने की क्रियाविधि भी अलग प्रकार की होती है. इनमें एस्पाराजीनेज, एटोपोसाइड, हैक्सामिथाइल मीलामाइन तथा हाइड्रोक्सीयूरिया आदि प्रमुख हैं.

उपरोक्त सभी श्रेणी के रसायनों में एक बात समान रुप से देखने को मिलती है कि ये सभी 'कोशिका विष' की भांति कार्य करते हैं चाहे वे डी एन ए को प्रभावित करें या फिर कोशिका की विभाजन क्षमता को. जब कोशिका की बढ़ने तथा विभाजित होकर नई कोशिकाएं बनाने की क्षमता नष्ट हो जाती हैं तो कैंसर की गांठ भी धीरे-धीरे सिकुड़ने लगती है.

कैंसर चिकित्सा के दुष्प्रभाव

शल्य-चिकित्सा के दौरान रोग ग्रस्त भाग को काट कर निकाल देने से रोगी को अपने शरीर के एक अंग से हाथ धोना पड़ता है जिससे अनेक बार अपंगता तथा शारीरिक विकृति भी हो जाती है. वैसे भी शल्य-चिकित्सा अत्यन्त पीड़ाकारक क्रिया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैंसर असाध्य नहीं है यदि इलाज समय पर किया जाए

कैंसर की चिकित्सा रोग शुरु होने के बाद जितनी जल्दी शुरु कर दी जाए रोगी के ठीक होने की संभावनाएं उतनी ही ज्यादा होती हैं. परंतु इस बात के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को यह पता हो कि कैंसर की शुरुआत की अवस्थाओं में किस-किस प्रकार के लक्षण प्रकट होते हैं. लक्षण शुरु होते ही यदि कोई व्यक्ति तुरंत चिकित्सक से सलाह ले ले और चिकित्सा शुरु कर दे तो रोग पर आसानी से काबू पाया जा सकता है.

यहां कैंसर की प्रारंभिक अवस्था से जुड़े कुछ संकेत दिए गए हैं जिन के आधार पर कैंसर को इस की प्रारम्भिक अवस्था में ही आसानी से पहचाना और रोका जा सकता है.

शरीर के किसी मांसल भाग (जैसे स्त्रियों में स्तन) में अचानक किसी गांठ का पैदा हो जाना या त्वचा का सख्त हो जाना कैंसर का संकेत हो सकता है. हालांकि यह आवश्यक नहीं है कि हर गांठ कैंसर से ही संबंधित हो या कैंसर की गांठ में दर्द ही हो, पर फिर भी शरीर में किसी भी स्थान पर गांठ के पैदा होते ही चिकित्सक को दिखाना अवश्य चाहिए.

स्त्रियों में स्तन कैंसर काफी अधिक प्रचलित है. अतः 40 वर्ष से ऊपर की स्त्रियों को विशेष सावधानी की आवश्यकता है. ऐसी उम्र की स्त्रियों को प्रत्येक माह स्वयं ही हाथ के स्तन दबा कर निरीक्षण करना चाहिए कि कहीं त्वचा किसी भाग में सख्त या गंठीली तो नहीं हो रही है.

किसी घाव का लंबे समय तक न भरना भी एक खतरनाक संकेत है. घाव का ठीक हो जाना और कुछ दिनों में बारबार उसी स्थान पर पुनः पैदा होने की स्थिति में लापरवाही नहीं बरतनी चाहिए क्योंकि हो सकता है कि वहां कैंसर शुरु हो गया हो.

निगलने में काफी तकलीफ होने लगे तो यह गले के कैंसर का संकेत हो सकता है.

आवाज में अपने आप अचानक ही परिवर्तन आ जाए जैसे आवाज में भारीपन आना, आवाज बैठ जाना इत्यादि भी तो गले के कैंसर का खतरा हो सकता है.

शरीर के किसी भाग में उपस्थित मस्से या तिल में एकाएक वृद्धि होने लगे, दर्द रहने लगे या खून बहना शुरु हो जाए तो तुरंत चिकित्सक को दिखाना चाहिए.

महिलाओं में मासिक धर्म एकाएक बहुत अधिक बढ़ जाए या अनियमित हो जाए तो इसका कारण योनि का कैंसर भी हो सकता है. ऐसे लक्षण प्रकट होते ही डाक्टर से जांच करवा लेनी चाहिए.

अचानक अपच तथा कब्ज रहने लगना या दस्त शुरु हो जाना, शौच के समय दर्द महसूस होना, पेशाब के समय रुकावट या अन्य परेशानियां महसूस होना बड़ी आंत या मूत्राशय के कैंसर के संकेत हो सकते हैं.

उपर्युक्त लक्षणों में कोई भी लक्षण यदि 15 दिन तक लगातार जारी रहे तो चिकित्सक को दिखाने में देरी नहीं करनी चाहिए. हो सकता है वह लक्षण वहां कैंसर की शुरुआत के कारण ही पैदा हुआ हो.

—डा० अचल गर्ग

जिसमें आपरेशन के बाद घाव भरने में अनेक सप्ताह का समय लग सकता है. इस दौरान यदि थोड़ी सी भी लापरवाही हो जाए तो घाव में संक्रमण हो सकता है जिससे अनेक जटिल समस्याएं पैदा हो सकती हैं.

विकिरण चिकित्सा के दौरान भी मरीज पर काफी विपरीत प्रभाव पड़ते हैं. कमजोरी इनमें प्रमुख हैं इलाज के साथ-साथ मरीज की कमजोरी बढ़ती जाती है लेकिन विकिरण चिकित्सा समाप्त होते ही मरीज अपने आपको बेहतर महसूस करने लगता है. अनेक रोगियों की भूख समाप्त हो जाती है, दस्त लगने लगते हैं, तथा वजन भी गिरने लगता है. विकिरण के प्रभाव वाले क्षेत्र में त्वचा का रंग बदल कर लाल हो जाता है तथा उस भाग से बाल झड़ जाते हैं. लम्बे समय तक विकिरण चिकित्सा लेने से सामान्य कोशिकाएं भी नष्ट होने लगती हैं. अनेक वैज्ञानिकों का मत है कि लंबे समय तक ली गई विकिरण चिकित्सा के फलस्वरुप रोगी में कुछ वर्षों के बाद रक्त कैंसर होने का खतरा भी हो जाता है.

रसायन चिकित्सा के दौरान भी रोगी पर दवाओं के अनेक दुष्प्रभाव देखे जाते हैं दुष्प्रभावों की प्रकृति तथा भयानकता दवा विशेष पर निर्भर करती है. कई बार एक ही दवा के कारण अलग-अलग व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के दुष्प्रभाव दिखाई पड़ते हैं. वैसे सामान्य तौर पर चिकित्सा के दौरान व्यक्ति में कमजोरी आना, भूख समाप्त हो जाना, उल्टी व जी मिचलाना, दस्त लगना, वजन में तेजी से कमी आना, खून की कमी हो जाना, बाल झड़ना, गंजापन, मुंह में घाव हो जाना, त्वचा पर चकते हो जाना आदि लक्षण दिखाई देते हैं. अनेक बार मस्तिष्क तथा तंत्रिकाओं पर भी दवाओं का विपरीत प्रभाव देखा गया है. महिलाओं में दवाओं के प्रभाव से मासिक चक्र बिगड़ जाता है. गर्भावस्था के दौरान ली गई दवाओं का सीधा प्रभावं भ्रूण पर पड़ता है और गर्भस्थ शिशु में अनेक विकृतियां पैदा हो जाती हैं.

अनेक बार रासायनिक दवाएं कैंसर ठीक तो कर देती हैं लेकिन कुछ समय बाद इन दवाओं के प्रभाव से व्यक्ति में पुनः कैंसर पैदा हो जाता है. ये दवाएं कैंसर की गांठ नष्ट करने के दौरान स्वस्थ कोशिकाओं के डी एन ए को भी प्रभावित करती हैं. इसका परिणाम यह होता है कि कुछ वर्षों के बाद रोगी में दुबारा से नया कैंसर पैदा हो जाता है जो वस्तुतः रासायनिक दवाओं के कारण पैदा होता है.

कैंसररोधी रासायनिक दवाओं तथा अन्य विधियों के दुष्प्रभावों के कारण इनकी उपयोगिता अत्यन्त सीमित हो जाती है. फिर इस बात की कोई गारन्टी भी नहीं दी जा सकती कि इलाज के बाद रोगी ठीक हो ही जाएगा. इन्हीं बातों से प्रेरित होकर वैज्ञानिक ऐसी वैकल्पिक कैंसर चिकित्सा की खोज में जुट गए हैं जो सुगम और प्रभावी होने के साथ साथ हानिरहित हो अर्थात उसका व्यक्ति पर कोई दुष्प्रभाव न पड़ता हो.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यूट्रोनों से कैंसर का इलाज

हाल ही में कैंसर के इलाज के लिए एक नई विधि का विकास किया गया है जिसे न्यूट्रोन चिकित्सा कहते हैं. इस विधि में कैंसरीय भाग को सेक एक्स किरणों की बजाए न्यूट्रोनों से की जाती है.

न्यूट्रोन वास्तव में प्रत्येक परमाणु के नाभिक का एक अवयव है. परमाणु में तीन प्रकार के कण उपस्थित होते हैं—प्रोटोन, इलेक्ट्रोन तथा न्यूट्रोन. प्रोटोन व न्यूट्रोन परमाणु के नाभिक में उपस्थित रहते हैं जबकि इलेक्ट्रोन नाभिक के चारों ओर चक्कर काटते रहते हैं. प्रोटोनों पर धन आवेश पाया जाता है तथा इलेक्ट्रोनों पर ॠण आवेश हैं. जबकि न्यूट्रोन आवेश रहित होते हैं इनका आकार एक सेंटीमीटर के सौ खरबवें हिस्से के बराबर होता है लेकिन इनमें काफी मात्रा में ऊर्जा संचित रहती है. वैज्ञानिक अब कैंसर की चिकित्सा में इसी ऊर्जा का उपयोग करने की कोशिश कर रहे हैं.

कैंसर की न्यूट्रोन चिकित्सा का विचार सन् 1932 में इनकी खोज के तुरंत बाद ही वैज्ञानिकों के दिमाग में आया था—जो कुछ कारणों से उस समय मूर्त रुप न ले सका. परंतु अब यह सिद्ध हो चुका है कि न्यूट्रोन शरीर पर एक्स किरणों की तुलना में बहुत कम कुप्रभाव डालते हैं तथा एक्स किरणों की तुलना में प्रभावी भी ज्यादा हैं.

वास्तव में हाइड्रोजन के अणु न्यूट्रोनों का अवशोषण कर लेते हैं. अतः शरीर के जिस भाग में हाइड्रोजन अणुओं की जितनी अधिक मात्रा होती है उतनी ही अधिक मात्रा में वहां न्यूट्रोनों का अवशोषण होता है. यही कारण है कि मांसल भागों में जहां हाइड्रोजन जल के अणु के रुप में उपस्थित होता है, न्यूट्रोन तेजी से सोख लिए जाते है. परन्तु हड्डियों में जहां जल अनुपस्थित होता है, इनका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता. इस प्रकार हड्डियां इनके प्रभाव से सर्वथा अप्रभावित रहती हैं जबकि एक्स किरणें हड्डियों को भी क्षतिग्रस्त कर सकती हैं. इसके अलावा कुछ प्रकार के कैंसर जिनमें एक्स किरणों के प्रति प्रतिशोधक क्षमता विकसित हो जाती है, न्यूट्रोन चिकित्सा से आसानी से काबू में लाए जा सकते हैं. यह भी देखा गया है कि न्यूट्रोन चिकित्सा से ठीक किए गए कैंसरों के पुनः पैदा होने का कोई खतरा नहीं होता.

न्यूट्रोन चिकित्सा में अब तक की सबसे बड़ी बाधा रही है इनके उपयोग में होने वाला अत्यधिक व्यय. न्यूट्रोन पैदा करने वाली मशीन साइक्सोट्रोन काफी बड़ी और महंगी होती है. अतः छोटे अस्पतालों में इनका उपयोग करना काफी मुश्किल होता था. परन्तु अब नई साइक्लोट्रोन मशीनों का विकास कर लिया गया है जिनमें इन समस्याओं का निवारण कर दिया गया है. इन नई मशीनों से 3-4 करोड़ इलेक्ट्रो वोल्ट के न्यूट्रोन पैदा किए जा सकते हैं जो शरीर में किसी भी गहराई तक पहुंच कर कैंसर कोशिकाओं को नष्ट कर सकते हैं. नई मशीनों में न्यूट्रोन फैंकने वाले हिस्से को मुख्य रुप से घूमने वाला बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं ताकि रोगी के शरीर के किसी भी हिस्से में न्यूट्रोन डाल कर इलाज किया जा सके. आशा है कि आगामी दशक तक न्यूट्रोनों से कैंसर का इलाज काफी लोकप्रिय हो जाएगा और इनकी मदद से विकिरण चिकित्सा से होने वाले कुप्रभावों से भी रोगी को बचाया जा सकेगा.

शरीर में भी छिपी है कैंसर की दवा

यह तो बहुत पहले ही स्पष्ट हो गया था कि कोई रोग शरीर पर तभी हावी होता है जब व्यक्ति की रोग प्रतिरोधक क्षमता समाप्त या कम हो जाती है. शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता ही उसे बाहरी आक्रमणकारी रोगाणुओं से सुरक्षा प्रदान करती है. दूसरे शब्दों में कहा जाए तो प्रत्येक रोग की दवा प्राकृतिक रुप से स्वयं शरीर के भीतर उपस्थित होती है बस जरुरत है तो रोग प्रतिरोधी क्षमता को जागरुक तथा सुदृढ़ बनाने की, ताकि शरीर में रोग की शुरुआत होते ही शरीर स्वयं उसकी पहचान कर उसे जहां का तहां दबा दे, नष्ट कर दें.

अब इस धारणा को वैज्ञानिक आधार भी मिल गया है. अमेरिका के एक प्रसिद्ध कैंसर विज्ञानी प्रो० रोजनबर्ग ने हाल ही में सिद्ध किया है कि रोगी की प्राकृतिक रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ा कर कैंसर का उपचार किया जा सकता है और ऐसा उन्होंने करके दिखाया भी है. अपने प्रयोगों के दौरान रोजनबर्ग ने 41 ऐसे मरीजों को चुना जिसका जीवनदीप कैंसर के कारण बुझने ही वाला था. परंतु जब उन्हें विशेष रुप से तैयार एक दवा दी गई तो देखते ही देखते उनका कैंसर सूखने लगा और 14 रोगी तो लगभग सामान्य हो गए. यह विशेष दवा और कुछ नहीं बल्कि शरीर में तैयार होने वाला वही पदार्थ था जो बाहरी संक्रमणों से व्यक्ति की रक्षा करता है. एक साथ उच्च मात्रा में यह पदार्थ देने से रोगियों की प्रतिरोधक क्षमता एकाएक कई गुणा बढ़ गई जिसके परिणामस्वरुप कैंसर समाप्त हो गया. प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करने वाला यह प्राकृतिक पदार्थ 'साइटोकाइन' कहलाता है.

शरीर में ही उपस्थित प्राकृतिक प्रतिरोधी पदार्थ अर्थात् साइटोकाइन की मदद से इलाज की यह तकनीक एकदम नई है तथा वैज्ञानिकों ने इस चिकित्सा का नाम जैविक उपचार (बायलोजिकल थेरेपी) रखा है.

साइटोकाइन एक प्रकार के घुलनशील प्रोटीन होते हैं जो शरीर की रक्षा प्रणाली द्वारा किसी बाहरी संक्रमण को नष्ट करने के लिए पैदा किए जाते हैं. अब अनेक साइटोकाइनों की खोज की जा चुकी है. इनमें से कुछ साइटोकाइन शरीर प्रतिरक्षा में संलग्न कोशिकाओं को उत्तेजित करने वाले तथा कुछ संक्रमित तथा कैंसर कोशिकाओं पर सीधे आक्रमण करने वाले होते हैं.

यद्यपि साइटोकाइनों की प्रकृति तथा कैंसर रोग की चिकित्सा में इनकी संभावित उपयोगिता का पता बहुत पहले ही चल चुका था परंतु इनके उपयोग में सबसे बड़ी समस्या इन्हें शुद्ध रुप में प्राप्त करने की थी. साइटोकाइन आमतौर से अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में पैदा किए जाते हैं तथा संक्रमण के समय एक ही कोशिका कई प्रकार के साइटोकाइन एक साथ पैदा करती है. इसके परिणामस्वरुप साइटोकाइन एक मिश्रण के रुप में रक्त में पहुंचते हैं. अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में उत्पन्न मिश्रण में से प्रत्येक साइटोकाइन को अलग से शुद्ध रुप में प्राप्त करना लगभग असंभव सा कार्य है परंतु पिछले दशक में आनुवंशिक इंजीनियरी के क्षेत्र में हुई उपलब्धियों के फलस्वरुप अब इन सभी साइटोकाइनों की पहचान कर ली गई है तथा उन्हें बड़ी मात्रा में प्राप्त करने का रास्ता भी खुल गया है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साइटोकाइनों को चार वर्गों में बांटा जा सकता है. ये हैं इन्टरफेरान, ट्यूमर नेक्रोसिस फैक्टर, इन्टरल्यूकिन तथा कालोनी स्टीमुलेटिंग फैक्टर.

कैंसर की प्राकृतिक दवा के रुप में सबसे पहले इन्टरफेरान का पता चला था. यह कोशिकाओं द्वारा उस समय पैदा किया जाता है जब वे किसी वायरस या कैंसर कोशिका के संपर्क में आती है. इन्टरफेरान खतरे को तत्काल भांप कर कोशिका को सचेत करके उसकी सुरक्षा निश्चित कर देता है ताकि कोई वायरस उसमें प्रवेश न कर सके. इसके साथ-साथ खतरे के संकेत पड़ौसी कोशिकाओं को भी भेज दिए जाते हैं ताकि वे समय रहते अपनी सुरक्षा पंक्ति को मजबूत कर सकें.

कोशिकाएं तीन प्रकार के इन्टरफेरान का निर्माण करती हैं. इन्हें अल्फा, बीटा तथा गामा इन्टरफेरान के नाम से जाना जाता है. अल्फा-इन्टरफेरान अपने आप में 15 प्रकार के समान प्रकृति के इन्टरफेरानों का मिश्रण होता है. इसके विपरीत बीटा-इन्टरफेरान 1 या 2 प्रकार के तथा गामा-इंटरफेरान केवल एक ही प्रकार का होता है. इन्टरफेरानों की मदद से एक प्रकार के रक्त कैंसर (हेयरी सेल ल्यूकीमिया) तथा एक प्रकार के अस्थि मज्जा का कैंसर (क्रोमिक माइलोजीनस ल्यूकीमिया) को ठीक करने में आशातीत सफलता मिली है.

इंटरफेरान की भांति ट्यूमर नेक्रोसिस फैक्टर भी दो प्रकार के होते हैं—अल्फा तथा बीटा. ये मेक्रोफेज (बृहतमकक्ष) तथा लिम्फोसाइट (लसीका कोशिका) नाम की रक्त कोशिकाओं द्वारा पैदा किए जाते हैं. ऐसे संकेत मिले हैं कि इन प्राकृतिक प्रोटीनों में कैंसर व सामान्य कोशिका को पहचानने की क्षमता पाई जाती है तथा ये केवल कैंसर कोशिकाओं को ही नष्ट करते हैं. इंटरफेरान की भांति यह प्रोटीन भी कोशिका को किसी संभावित घातक संक्रमण की पूर्व सूचना देकर उसे सचेत कर देता है. साथ ही कैंसर कोशिका पर हमला कर के उसे नष्ट भी कर सकता है. इस प्रकार यह शरीर को रोग की पूर्व चेतावनी देकर तथा कैंसर कोशिकाएं पर आक्रमण कर सुरक्षा की दोहरी भूमिका अदा करता है. कई मरणासन्न कैंसर रोगियों में, जिनका इलाज किसी भी तरह संभव नहीं था, ट्यूमर नेक्रोसिस फैक्टर का अध्ययन किया गया है ताकि कैंसर पर पड़ने वाले इसके प्रभावों का पता लगाया जा सके.

तीसरे प्रकार के साइटोकाइन का नाम है इंटरल्यूकीन-2 जिसका निर्माण टी-लसीका कोशिकाओं में होता है. हालांकि यह कोशिका की वृद्धि को प्रभावित करने वाला पदार्थ है तथा श्वेत रक्त कोशिकाओं को तेजी से विभाजित होने के लिए प्रेरित करता है, लेकिन इस रसायन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि जब किसी कोशिका पर चिपक जाता है तो वह कोशिका एक मारक कोशिका का रुप ले लेती है. ये मारक कोशिकाएं कैंसर कोशिकाओं को आसानी से पहचान कर उन्हें नष्ट कर देती हैं. लेकिन सामान्य कोशिकाएं इनके मारक गुण से सर्वथा अप्रभावित रहती हैं. डा० रोजनबर्ग द्वारा खोजा गया पदार्थ इंटरल्यूकीन-2 ही था.

साइटोकाइन की चौथी व अन्तिम श्रेणी में 'कालोनी स्टीमुलेटिंग फैक्टर्स' नामक प्राकृतिक पदार्थ शामिल किए गए हैं. कार्य तथा प्रकृति में ये इंटरल्यूकीन-2 से मिलते जुलते हैं. अपरिपक्व श्वेत रक्त कोशिकाओं तथा अस्थि मज्जा के विकास में इन रसायनों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है. इंटरल्यूकीन-2 की भांति ये भी श्वेत कोशिकाओं को तेजी से विभाजित होने को लिए प्रेरित करते हैं ताकि रक्त कोशिकाएं बाहरी संक्रामक कारकों अथवा कैंसर कोशिकाओं को नष्ट कर सकें. वैसे शरीर में चार प्रकार के कॉलोनी स्टीमुलेरिंग फैक्टर्स पाए जाते हैं जो विभिन्न कोशिकाओं को प्रेरित करने तथा शरीर को कैंसर सहित अनेक घातक रोगों से बचाने का कार्य करते हैं.

कैंसर की उत्पत्ति से लेकर प्रसार तक की पूरी कार्य शैली का रहस्य खुल चुका है. यह जानकारी वैज्ञानिकों को उस राह पर ले जा सकती है जिस पर चल कर वैज्ञानिक कैंसर नियंत्रण के अपने लक्ष्य तक पहुंच सकते हैं. रोजेनबर्ग द्वारा विकसित 'बायलोजिकल थेरेपी' यद्यपि अभी अपने शैशव काल ही में है, लेकिन इससे कैंसर के सकारात्क इलाज की आशाएं बहुत बलवती हो गई हैं. कैंसर की असाध्यता का दायरा निःसंदेह सिमटने लगा है.

(क्रमशः)

अपना घर सजाइये

हिन्दी में पत्राचार द्वारा गृह मज्जा सीखिए

इन्टीरियर डेकोरेशन

(सर्टीफिकेट एवं डॉबी कोर्स)

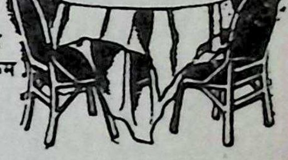

गृहसज्जा का तकनीकी ज्ञान.प्राप्त करें
सुविधानुसार घर बैठे खाली समय में अध्ययन
आसान भाषा में विशेषज्ञों द्वारा तैयार पाठ्यक्रम
मंहगी पुस्तकें खरीदने की जरूरत नहीं
कोर्स फीस का आसान किश्तों में भुगतान

STUDY AT HOME

महिलाओं, गृहिणीयों, एवं छात्र-छात्राओं के लिए सर्वोत्तम.
अपनी योग्यता बढ़ाएं तथा घर भी सजाएं
बेडरूम, ड्राइंग/डाइनिंग, रसोईघर, आंगन आदि की सजावट स्वयं कम खर्च में करें.
रंगयोजनाओं, बहुपयोगी बिल्ट-इन फर्नीचर, परदे, प्रकाश व्यवस्था, नयी सजावट सामग्री, पौधों, फर्नीचर-अरेन्जमेन्ट, कपबोर्ड तथा अलमारियों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी

विवरण के लिए जवाबी लिफाफा भेजें :

AID

एकैडमी ऑफ इन्टीरियर डेकोरेशन
10A/14 शक्ति नगर, दिल्ली-110007

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूवैज्ञानिक घड़ियां—2

जैवीय पदार्थों से काल-निर्धारण

□ डा० विजय कुमार उपाध्याय

□ चन्द्रमा एवं सूर्य पृथ्वी पर ज्वारीय बल उत्पन्न करते हैं. इन बलों के कारण उत्पन्न घर्षण बल पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूर्णन वेग को मन्दित कर रहा है. हाल में किए गए अध्ययनों से पता चला है कि आज की स्थिति में पृथ्वी के अक्ष पर घूर्णन वेग का मन्दन दो सेकंड प्रति एक लाख वर्ष की दर से हो रहा है.

यह भी पता चला है कि चन्द्रमा धीरे-धीरे पृथ्वी से दूर हटता जा रहा है. जब यह पृथ्वी के और निकट रहा होगा तो स्पष्ट है कि पृथ्वी के अक्ष पर घूर्णन वेग में मन्दन की दर आज की तुलना में अधिक रही होगी. दूसरी ओर पृथ्वी सूर्य के चारों ओर अपने परिपथ पर लगातार एक ही वेग से भ्रमण करती रही है. इस वेग में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आ रहा है. इसका तात्पर्य यह है कि दिन की लंबाई (एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक) तो बढ़ रही है, परंतु वर्ष की लंबाई में कोई परिवर्तन नहीं आया है. अतः यह स्पष्ट है कि पृथ्वी तथा चन्द्रमा की उत्पत्ति के प्रारम्भिक काल से आज तक एक वर्ष में दिनों की संख्या लगातार घटती जा रही है.

उपर्युक्त कथन की सत्यता की जांच की एक विधि है. कुछ पौधे दैनिक तथा मौसमी एवं वार्षिक वृद्धि वलय (रिंग) विकसित करते हैं. पौधों में विकसित वृद्धि वलयों की चौड़ाई तथा एक दूसरे से दूरी उस क्षेत्र के तापक्रम, प्रकाश तथा आर्द्रता-परिवर्तन पर निर्भर करते हैं. प्रत्येक वलय के दो खण्ड होते हैं—पहला है ग्रीष्म खंड जिसकी कोशिकाएं छोटी तथा दीवार मोटी होती है, तथा दूसरा है बसंत खंड जिसकी कोशिकाएं बड़ी-बड़ी तथा दीवार पतली-पतली होती हैं (चित्र-1).

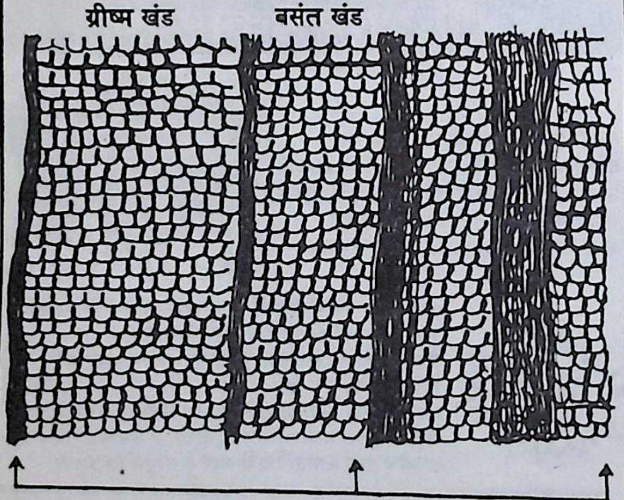

चित्र—1. वृद्धि वलय

वृक्षों के वृद्धि वलय के अध्ययन को वृक्ष कालानुक्रमिकी (डेन्ड्रोक्रोनोलोजी) के नाम से जाना जाता है. वृक्ष कालानुक्रमिकी की सहायता से संसार के अनेक स्थानों पर पुरातत्ववेत्ताओं ने अनेक पुरातात्विक अवशेषों का काल निर्धारण किया है. परंतु इस प्रकार काल निर्धारण के लिए यह अत्यावश्यक है कि पुरातात्विक अवशेषों में काष्ठीय अवशेष सुरक्षित रहा हो. इस विधि द्वारा किसी क्षेत्र में लगातार कई हजार वर्षों की कालानुक्रमिकी तथा इतिहास बहुत ही सुगमतापूर्वक निर्धारित किया जा सकता है. इस प्रकार संसार के अनेक प्रमुख ऐतिहासिक भग्नावशेषों में उपलब्ध दरवाजों तथा छत से प्राप्त बल्लियों के विश्लेषण से उनके निर्माण-काल निर्धारित किए जा चुके हैं. संयुक्त राज्य अमेरिका के कैलिफोर्निया क्षेत्र में उपलब्ध एक प्रकार का वृक्ष है सिकोइया जिसमें वृद्धि वलय के बहुत लम्बे क्रम पाए जाते हैं. उसी प्रकार कैलिफोर्निया, नेवादा तथा उताह में एक अन्य वृक्ष ब्रिस्लकोन पाइन पाया जाता है. इसका भी जीवन काल बहुत लंबा है. वृद्धि वलय के आधार पर यह पाया गया है कि उपर्युक्त वृक्ष लगभग 4800 वर्षों से जीवित है. इस प्रकार के मृत वृक्षों की सहायता से 6225 वर्ष ई० पू० तक के पुरातात्विक अवशेषों का काल-निर्धारण किया जा चुका है.

जंतुओं में भी ऋतु परिवर्तन के स्पष्ट संकेत पाए जा सकते हैं. ये संकेत उनकी वृद्धि दर में छिपे रहते हैं. कुछ जल में निवास करने वाले जीव जैसे क्लैम के खोल (शैल) उसी प्रकार के वृद्धि वलय विकसित करते हैं जैसे कि पौधों में होते हैं. मछलियों की शल्कों (स्कैल्स) में भी वृद्धि वलय से मिलते जुलते संकेत स्पष्ट विकसित रहते हैं. उसी प्रकार मछलियों के कांटों (स्पाइन्स) तथा कर्ण बालुका (ओटोलिथ),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

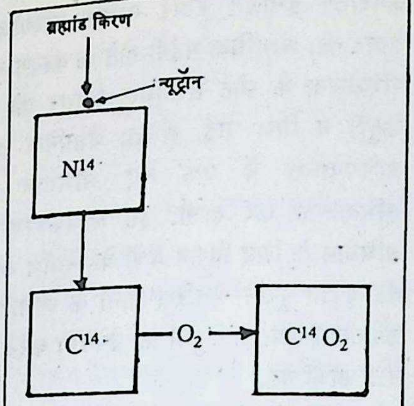

चित्र–2. ब्रह्मांड किरणों द्वारा नाइट्रोजन से कार्बन-14 का निर्माण, तत्पश्चात् $C^{14}O_2$ का निर्माण.

स्तनपायी जंतुओं के सींग तथा कुछ सरीसृप (रेप्टाइल्स) की अंग अस्थियों में भी ऋतु परिवर्तन के संकेत तथा वृद्धि वलय दिखाई पड़ते हैं. सबसे आश्चर्य की बात तो यह पाई गई है कि मूंगों तथा मौलस्क जाति के जंतुओं में दैनिक विकास वलय विकसित होते हैं. इस प्रकार के दैनिक वृद्धि वलय जवाश्मित प्रवालों में स्पष्ट रुप से विकसित पाए जाते हैं. इन जीवाश्मित प्रवालों (कोरल्स) की सहायता से यह पाया गया है कि साइलुरियन काल में (लगभग 42 करोड़ वर्ष पूर्व) एक वर्ष में 420 दिन हुआ करते थे, जबकि 30 करोड़ वर्ष पूर्व एक वर्ष में दिनों की संख्या घट कर 390 हो गई थी. क्रिटेशस काल में (लगभग 8 करोड़ वर्ष पूर्व) एक वर्ष में 370 दिन हुआ करते थे. इन संकेतों से यह पता चलता है कि विगत 1.5 अरब वर्षों में दिन की लंबाई लगभग दुगनी हो गई है.

रेडियो कार्बन डेटिंग : रेडियो कार्बन डेटिंग विधि की खोज डब्लयू० एफ० लिब्बी तथा उसके साथियों द्वारा सन् 1947 ई० में की गई. इस विधि द्वारा 70,000 वर्ष तक पुराने पदार्थों का काल-निर्धारण किया जा सकता है. यह विधि ब्रह्माण्ड किरणों द्वारा उत्पादित कार्बन के एक समस्थानिक C^{14} के क्षय पर आधारित है. इस विधि द्वारा पुराने काष्ठीय अवशेष, लकड़ी का कोयला, समुद्री जंतुओं के कवच (शैल) तथा मीठे जल में निक्षेपित कार्बोनेट चट्टानों का काल-निर्धारण सफलतापूर्वक किया गया है. इस विधि का महत्व विश्वस्तरीय जलवायु परिवर्तन, हाल की भूवैज्ञानिक घटनाओं तथा प्रागैतिहासिक मानव की विशेषताओं के अध्ययन में काफी अधिक रहा है.

कार्बन के तीन समस्थानिक प्रकृति में पाए जाते हैं. ये हैं: C^{12}, C^{13} तथा C^{14}. इनमें से दो समस्थानिक C^{12} तथा C^{13} तो स्थिर हैं, परन्तु C^{14} रेडियो-सक्रिय होने के कारण क्षयशील है. C^{14} परिवर्तित होकर नाइट्रोजन उत्पन्न करता है. C^{14} का अर्द्ध जीवन काल 5570 ± 40 वर्ष होता है. चूंकि परिवर्तन की यह दर पृथ्वी पर उपलब्ध किसी भी भौतिक स्थिति से प्रभावित नहीं होती, अतः किसी भी पदार्थ के नमूने से C^{14} के विलुप्त होने की दर सीधी उसकी आयु से संबंधित होती है.

चूंकि पृथ्वी की आयु लगभग 4.5 अरब वर्ष है, अतः यह स्पष्ट है कि पृथ्वी की उत्पत्ति के साथ उत्पन्न C^{14} अब तक पूरी तरह विलुप्त हो चुका होगा. परंतु अभी भी C^{14} पृथ्वी पर उपलब्ध है तो इसका कारण यह है कि पृथ्वी के पर्यावरण में लगातार इसकी सृष्टि हो रही है. जब ब्रह्माण्ड किरणें पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करती हैं जो उनमें उपस्थित न्यूट्रॉन कण वायुमंडल के नाइट्रोजन (N^{14}) के साथ प्रतिक्रिया कर C^{14} परमाणु उत्पन्न करते हैं. C^{14} परमाणु वायुमंडल की आक्सीजन से प्रतिक्रिया कर अविलम्ब $C^{14}O_2$ अणुओं को जन्म देते है चित्र-2. चूंकि C^{14} के परमाणुओं की विखंडन द्वारा क्षय-दर उसके परमाणुओं की संख्या पर निर्भर करती है, अतः C^{14} के परमाणुओं की मात्रा पृथ्वी के पर्यावरण में तब तक निश्चित रहती है, जब तक उसकी उत्पत्ति की दर को नहीं बदल दिया जाए.

ब्रह्मांड किरणों द्वारा उत्पन्न C^{14} गतिशील पर्यावरण में उपस्थित सभी कार्बन परमाणुओं के साथ मिश्रित हो जाता है. चूंकि कार्बन-14 की पर्यावरण के विभिन्न घटकों में मिश्रित होने की दर उसकी क्षय दर (5570 वर्ष) से अधिक है, अतः इसकी मात्रा पर्यावरण में लगभग नियत रहती है. जब कोई पदार्थ पृथ्वी के गतिशील पर्यावरण से हटाया जाता है तो उसमें उपस्थित C^{14} का क्षय 5570 वर्ष के अर्द्ध-जीवन काल की दर से प्रारंभ हो जाता है.

कार्बन-14 की मात्रा पदार्थों में बहुत ही कम होने के कारण उसके विश्लेषण में काफी कठिनाई होती है. सजीव पदार्थों में प्रति 10^{12} कार्बन परमाणुओं में कार्बन-14 का सिर्फ एक परमाणु रहता है. इतनी कम मात्रा का पता लगाना अति आधुनिक उपकरणों के लिए भी कठिन काम है. परंतु सौभाग्यवश कार्बन-14 रेडियो-सक्रिय है. अतः इसके क्षय के कारण जो बीटा कम विकिरित होते हैं, उनका पता गाइगर मुलर काउंटर नामक उपकरण से आसानी से लग जाता है. चूंकि किसी कार्बन के नमूने से एक निश्चित समय में विकिरित बीटा कण उस नमूने में उपस्थित कार्बन-14 परमाणुओं की संख्या के सीधा समानुपाती होता है, अतः किसी नमूने के आयु-निर्धारण के लिए उससे विकिरित बीटा कणों की संख्या की तुलना विभिन्न ज्ञात काल के नमूनों से की जाती है. जिस काल के नमूने के बराबर बीटा कणों की संख्या पाई जाती है, वही अनजान नमूने की आयु मान ली जाती है. इसके लिए निम्न सूत्र का उपयोग किया जाता है:

$$t = 8040 \ln (A_0/A) \text{ वर्ष}$$

जहां t अनजान नमूने की आयु है, A_0 उस कार्बन से विकिरित बीटा कणों की संख्या है जिसकी आयु मालूम है तथा A अनजान नमूने के कार्बन से विकिरित बीटा कणों की संख्या है.

कार्बन की रेडियो-सक्रियता की सही माप के लिए बहुत ही आधुनिक तथा विशिष्ट रासायनिक तथा रेडियो-रासायनिक विधियों को उपयोग में लाने की आवश्यकता होती है. इसका कारण यह है कि जिन बीटा किरणों की जांच करनी होती है, उनकी संख्या बहुत ही कम होती है (लगभग 13 विखंडन प्रति मिनट प्रति ग्राम). इन विकिरणों को अंकित करने के लिए नमूनों को अति संवेदनशील विकिरण गणक (काउंटर) के भीतर रखना पड़ता है.

(शेष पृष्ठ 477 पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैजलन: शुक्र की टोह में

□ प्रमोद पाण्डे

□ सौर-परिवार के सभी ग्रहों में हमारा निकटतम पड़ोसी शुक्र ही ऐसा ग्रह है जो आमाप, संहति, घनत्व और संरचना में पृथ्वी से सबसे अधिक साम्यता रखता है. परंतु वायुमंडल, तापमान तथा अन्य गुणों में यह पृथ्वी से काफी भिन्न भी है. वैज्ञानिकों का विचार है कि अपने विकास क्रम के आरम्भिक वर्षों में दोनों ही ग्रह एक जैसी प्रक्रिया से गुजरे परंतु कुछ समय बाद पृथ्वी और शुक्र के विकास पथ अलग हो गए और यहीं से भिन्नता का सिलसिला शुरु हुआ. इन के विकास क्रम में यह बदलाव क्यों और कैसे आए? यह प्रश्न सौरमंडल की अनबूझ पहेलियों में से एक है.

यूं तो शुक्र पृथ्वी का पड़ोसी ग्रह है परंतु इसके संबंध में बहुत विस्तृत जानकारियां अभी वैज्ञानिकों को नहीं हैं. शुक्र की सतह के गंधक के अमल के सघन बादलों से घिरे होने के कारण शुक्र की सतह को प्रकाश दूरबीन की सहायता से नहीं देखा जा सकता.

साधारणतः शुक्र के धरातल का अध्ययन रेडार द्वारा प्रेषित रेडियो तरंगों के माध्यम से ही हो पाता है. क्योंकि रेडियो तरगें ही गंधक अम्ल के बादलों को भेद कर शुक्र की सतह तक पहुंचती हैं और सतह द्वारा परावर्तित रेडियो तरंगों को ग्रहण कर ही सतह की जानकारी मिल पाती है. हालांकि पृथ्वी से किए गए अध्ययनों से ग्रह के घूर्णन काल, पृष्ठीय सर्फेस लक्षणों तथा वायुमंडलीय घटकों की स्थूल जानकारी प्राप्त हो जाती है परंतु इन रेडार 'चित्रों' से ग्रह के पृष्ठ लक्षणों का विभेदन स्पष्ट नहीं हो पाता.

पृथ्वी से हो पाने वाले सीमित अध्ययनों को देखते हुए शुक्र की खोजबीन का सिलसिला अंतरिक्ष यानों की मदद से सत्तर के दशक से आरंभ हुआ और अब तक रूस और अमेरिका कुल मिलाकर बीस अंतरिक्ष यान शुक्र तक भेज चुके हैं. परंतु इन सभी के द्वारा लिए गए रेडार तथा अन्य चित्रों में शुक्र की सतह के सूक्ष्म लक्षणों जैसे ज्वालामुखी पर्वतश्रेणियों और गड्ढों आदि की संसूचना संभव नहीं हो पाई. इन विस्तृत सूचनाओं के अभाव से ग्रह के भूगर्भीय विकास क्रम का अध्ययन नहीं हो पाता.

इन बातों को ध्यान में रखते हुए, शुक्र के सष्ट और पूर्ण मानचित्रण तथा विस्तृत अध्ययन के लिए एक महत्वाकांक्षी अंतरिक्ष अभियान 'मेजलन' पिछले वर्ष 4 मई 1989 को अमेरिकी अंतरिक्ष शटल 'एटलाण्टिस' में रखकर सफलता पूर्वक प्रक्षेपित किया गया. लगभग पंद्रह महीनों की यात्रा के बाद यह गत 10 अगस्त को अपनी मंजिल पर सकुशल पहुंचा. इस समय इसकी जांच पड़ताल जारी है और तीन महीनों की कड़ी जांच परख के बाद इन पंक्तियों के छपने तक यान शुक्र के मानचित्रण का अपना मुख्य कार्य आरंभ कर देगा.

अल्प लागत से निर्मित यह अंतरिक्ष यान अपने में अनूठा है. उच्च विभेदन रेडार मानचित्रण वाले ऐसे अभियान का प्रस्ताव सबसे पहले अमेरिका राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी ने 1970 में किया और गम्भीर वाद-विवाद के बाद एक्स शोध केंद्र के वैज्ञानिकों ने इसे सिन्थेटिक एपर्चर रेडार तकनीक से सज्जित करने की सलाह दी.

यह रेडार तकनीक सामान्य प्रचलित रेडार से थोड़ी भिन्न है. जहां प्रचलित रेडार तकनीक में एक प्रेषित से रेडार संकेत भेजकर किसी वस्तु से परावर्तित प्रतिध्वनि को ग्रहण कर, वस्तु को रेडार स्क्रीन में एक बिन्दु के रुप में देखा जा सकता है, वहीं सिन्थेटिक एपर्चर रेडार तकनीक में रेडियो संकेत एक विशाल एन्टिना की मदद से पिंड पर फोकस किया जाता है और प्रतिध्वनि संकेतों को ग्रहण कर इसकी विस्तृत सूचना ले ली जाती है.

इस तकनीक की महत्ता को समझते हुए सन् 1982 में अमेरिका वैज्ञानिकों ने वीनस आर्बिटिंग इमेजिंग रेडार नामक परियोजना तैयार की. अत्यधिक महंगी होने के कारण मूल परियोजना के छोटे संशोधित रुपांतर को भी मंजूरी न मिल पाई. अंततः वैज्ञानिक तथा अभियन्ताओं ने एक नए अभियान की अभिकल्पना कर डाली. इस अभिकल्पना में अभियान के लिए विशेष यंत्रों के निर्माण करने की अपेक्षा पुराने अंतरिक्ष यानों के अतिरिक्त उपकरणों तथा कल पुर्जों का उपयोग करने की बात सोची गई.

इसी आधार पर 'वीनस राडार मैपर' नामक अभियान तैयार हुआ, जिसमें 'वोयजर', 'गैलीलियों' 'वाइकिंग' अंतरिक्ष अभियानों के लिए निर्मित अतिरिक्त उपकरणों और कंप्यूटर का उपयोग हुआ. इसके अतिरिक्त कुछ यंत्रों की पूर्ति अंतरिक्ष शटल और सौर अभियान 'यूलेसिस'' से भी की गई. इस विशेष अंतरिक्ष यान का केवल एक तिहाई हिस्सा ही ऐसा है जो विशेष रुप से निर्मित किया गया है. सन् 1984 में यान तैयार हुआ. वैज्ञानिकों का विचार था कि यह प्रस्तावित वीनस इमेजिंग रेडार अभियान जैसा सक्षम तो नहीं, पर अब तक शुक्र पर भेजे सभी अंतरिक्ष यानों की तुलना में बेमिसाल था. आज यही अंतरिक्ष यान 'मैजेलन' के नाम से शुक्र की परिक्रमा कर रहा है.

'मैजलन' के मुख्य कोर संरचना के एक ओर बारह फुट व्यास का डिश एंटिना लगा है तथा इसके दोनों ओर विशाल सौर पैनल लगे हैं जो यान की ऊर्जा आवश्यकता पूरी करेंगे. विशाल एंटिना के ठीक पीछे अग्र उपकरण माडयूल है जिसमें सिन्थेटिक एपर्चर रेडार की इलेक्ट्रोनिकी तथा तीन घूर्णास्थापी जैसे प्रतिक्रिया चक्के लगे हैं.

अग्र उपकरण माडयूल के ठीक पीछे मुख्य इलेक्ट्रोनिक संयंत्र लगाएं गए हैं और साथ ही विशाल सौर पैनल को भी इसी भाग से संबद्ध किया गया है. इसके पार्श्व में तारक क्रमवीक्षक लगा है जो यान के दिशा अनुस्थापन में सहायक है. ढांचे के सबसे पीछे मकड़ीनुमा संरचना में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

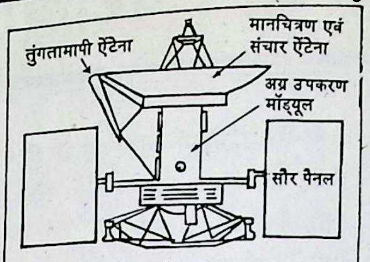

चित्र– मैजलन

उन्नतांश (आल्टिट्यूड) नियंत्रण प्रणोदकों को स्थापित किया गया है.

हालांकि मैजलन में केवल एक ही मुख्य वैज्ञानिक उपकरण सुसज्जित है परंतु यह तीन अलग-अलग वैज्ञानिक यंत्रों का कार्य करता है. यह बहुउपयोगी उपकरण प्रत्येक सेकेंड में कई बार तीन अलग-अलग तरह के आंकड़ों को इक्कट्ठा करने का कार्य करेगा—सिंथेटिक एपर्चर रेडार, तुंगतामापन (आल्टीमीमीटरी) तथा माइक्रोवेव रेडियो मीटरी.

ग्रह का मानचित्रण करने के लिए सर्वप्रथम मुख्य एंटिना में लगे राडार प्रेषित कोडित माइक्रोवेव स्पंद ग्रह की ओर भेजे जाएंगे. यह स्पंद सघन अम्ल बादलों को भेद कर सतह से परावर्तित होंगे. इन परावर्तित स्पंदों को ग्रहण कर पृथ्वी तक प्रेषित किया जाएगा जहां पर कम्प्यूटर की सहायता से इनकी आवृत्ति और समय का विश्लेषण कर सतह के रेडार चित्र बनाए जाएंगे. हॉर्न के आकार के तुंगतामापी एंटिना से स्पंद भेजकर यान और ग्रह धरातल की ठीक-ठीक दूरी ज्ञात की जाएगी. इसके साथ ही इस परावर्तित स्पंद का सिंथेटिक एपर्चर रेडार प्रतिध्वनि से संयोजित कर पृष्ठ चट्टानों के वैद्युत गुणों का निर्धारण भी हो सकेगा. इसी दौरान कुछ समय के लिए प्रेषित्र का उपयोग न करते हुए ग्रह द्वारा उत्सर्जित रेडियो तरंगों का सीधे अध्ययन कर ग्रह के ऊष्मीय गुणों के संबंध में सूचना ली जाएगी. इस तरह से तीन भिन्न प्रयोगों से तीन बिल्कुल अलग प्रकार की सूचनाएं वैज्ञानिकों की मिलेंगी.

योजनानुसार 'मेजलन' इस समय अपनी निर्धारित ध्रुवीय कक्षा में शुक्र की परिक्रमा कर रहा है. निर्धारित परीक्षण पूर्ण होते ही यह यान अपना कार्य आरंभ कर देगा. ऐसी स्थिति में ग्रह की परिक्रमा के दौरान मैजलन शुक्र के उत्तरी ध्रुव के निकट पहुंचेगा, विशाल डिश एंटिना ग्रह की ओर मुड़ेगा और क्रमशः सिंथेटिक एपर्चर रेडार तुंगमापी तथा रेडियो मीटरी मापन शुरु हो जाएगा. जैसे-जैसे यान उत्तर से दक्षिण ध्रुव की ओर बढ़ेगा मानचित्रण का कार्य चलता रहेगा. 54° दक्षिणी अक्षांश तक पहुंचने तक यान का टेप-रिकॉर्डर पर्याप्त आंकड़े इकट्ठे कर लेगा. अब प्रतिक्रिया चक्कों की सहायता से यान की दिशा बदली जाएगी जिससे एंटिना का मुख पृथ्वी की ओर हो जाए. संकलित आंकड़े पृथ्वी को प्रेषित होंगे जिसे पृथ्वी पर डीप एंटिना नेटवर्क के तीन केंद्रों (कैलिफोर्निया, मैड्रिड तथा कैनबरा) में से एक द्वारा ग्रहण किया जाएगा.

इसी दौरान यान अपनी दिशा का सही निर्धारण भी करेगा, आंकड़ा प्रेषण का कार्य पूरा होने के बाद उत्तरी ध्रुव के निकट आते ही इसकी दिशा फिर ग्रह की सतह की ओर हो जाएगी और मानचित्रण का कार्य एक बार फिर शुरु होगा. परंतु ग्रह के अक्षीय घूर्णन के कारण अब एंटिना के सामने ग्रह का परिवर्तित भाग आ चुका होगा. इस प्रकार एक नई पट्टिका का मानचित्रण हो सकेगा. साथ ही हर दूसरे चक्कर में मानचित्रण 72° अक्षांश से 68° दक्षिणी अक्षांश तक चलेगा. क्योंकि शुक्र का घूर्णन काल 243 दिनों का है, अतः मानचित्रण का कार्य 243 दिनों में पूरा हो जाएगा. परंतु यदि किसी तकनीकी कारणवश कोई भाग छूट जाता है तो यह कार्य आगे भी चलता रहेगा. मुख्य कार्य पूरा हो जाने के बाद कुछ अन्य महत्वपूर्ण अध्ययन भी किए जाने की योजना वैज्ञानिकों की है. इसके साथ ही इसकी कक्षा का सूक्ष्म अध्ययन भी होगा जिससे ग्रह के गुरुत्व क्षेत्र की जानकारी मिल सके. यदि शुक्र के किसी भाग में पदार्थ का विशेष संकेंद्रण हुआ तो यान की कक्षा में आया भटकाव इसकी सूचना दे देगा. मानचित्रण के बाद यदि सतह के किसी लक्षण के विशिष्ट अध्ययन की आवश्यकता हुई तो उस भाग के त्रि-आयामी चित्र भी अतिरिक्त समय में लिए जाएंगे.

इन सभी अध्ययनों से संभवतः ग्रह पर सक्रिय ज्वालामुखी होने के प्रमाण मिल सकेंगे. मानचित्रण का कार्य पूरा होने के बाद शुक्र के पृथ्वी से भी अधिक संपूर्ण पृष्ठ मानचित्र हमारे पास होंगे क्योंकि पृथ्वी पर समुद्र की तलहटी का संपूर्ण मानचित्र अभी नहीं हो पाया है. □

(पृष्ठ 475 का शेषांश)

इस गणक को बाहरी विकिरण से पूरी तरह परिरक्षित रखा जाता है. मापों को अंकित करने के लिए नमूने को पहले कार्बन से कार्बन ब्लैक में परिवर्तित कर दिया जाता है. इसके बाद इसे इस्पात के बेलनाकार बर्तन में रखकर एक सुग्राही गाइगर काउंटर में घुसाया जाता है. उसके बाद पठनों को अंकित किया जाता है. हाल के अनुसंधानों से पता चला है कि यदि नमूने में उपस्थित कार्बन को कार्बन ब्लैक के बदले कार्बन की किसी गैस में परिवर्तित कर दिया जाए (जैसे कार्बन डाइआक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, मीथेन एसिटिलीन आदि) तो माप अंकित करने में अधिक आसानी होगी तथा निष्कर्ष अधिक सही होगा.

उपर्युक्त रेडियो कार्बन डेटिंग का उपयोग कई समस्याओं के समाधान के लिए किया जा चुका है. एक प्रमुख उदाहरण है प्लिस्टोसीन काल में हुए मौसम-परिवर्तन की कालानुक्रमिकी निर्धारित करना. इसके अतिरिक्त इस विधि से लकड़ी, हड्डी, बाल, जंतुओं के बाहरी खोल, पीट, लिगनाइट आदि का काल-निर्धारण किया जाता है. इस विधि द्वारा निर्धारित किए गए काल की जांच उन अभिलेखों से की जाती है जो ज्ञात ऐतिहासिक काल के हैं. उदाहरण के लिए मिश्र में ज्ञात ऐतिहासिक काल में उपयोग में लाए गए लकड़ी के खंभों की जांच जब रेडियो कार्बन विधि से की गई तो निर्धारित काल वही आया जो होना चाहिए था. अतः यह स्पष्ट है कि यह विधि बहुत ही सन्तोषजनक है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए

□ श्याम लाल धीमान

वस्तुपरक बहु विकल्पी प्रश्नों की इस कड़ी में भौतिक विज्ञान से संबंधित ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षाओं के स्तर के प्रश्न प्रस्तुत किए गए हैं. सही उत्तर का चुनाव करके उत्तर तालिका से मिलान कीजिए. मूल्यांकन: 26—30 सही—सर्वोत्तम; 20—25 सही—उत्तम; 15—19 सही—अच्छा; 10—14 सही—सामान्य.

1. एक रेडियो सक्रिय तत्व का अर्द्धजीवन काल 1600 वर्ष है. 80,000 वर्षों में वह विघटित (डिस्इन्टीग्रेट) होकर अपनी प्रारम्भिक मात्रा का कितना भाग रह जाएगा:
   (क) $\frac{1}{5}$ (ख) $\frac{1}{32}$
   (ग) $\frac{1}{16}$ (घ) $\frac{1}{4}$.

2. पेन्टोड में कितनी ग्रिड होती हैं:
   (क) 1 (ख) 2
   (ग) 3 (घ) 4.

3. न्यूक्लिआन कहते हैं:
   (क) अल्फा कण को
   (ख) बीटा कण को
   (ग) न्यूट्रिनों को
   (घ) प्रोटान अथवा न्यूट्रान अथवा दोनों को.

4. किसी इलेक्ट्रानिक वाल्व के तन्तु (फिलामेंट) को गर्म करने की लिए वोल्टता दी जाती है:
   (क) 6.3 वोल्ट (ख) 4 वोल्ट
   (ग) 10 वोल्ट (घ) 2 वोल्ट.

5. प्रत्यावर्ती विद्युत वाहक बल के दिष्टीकरण का अर्थ होता है:
   (क) वोल्टता की धनात्मकता
   (ख) वोल्टता की ऋणात्मकता
   (ग) वोल्टता की धनात्मकता अथवा ऋणात्मकता की ध्रुवता
   (घ) शून्य वोल्टता.

6. वह युक्ति जो सेल की दिष्टधारा को प्रत्यावर्ती धारा में परिवर्तित करती है, कहलाती है:
   (क) प्रवर्धक (ख) दिष्टकारक
   (ग) दोलक (घ) संसूचक.

7. ट्रायोड प्रवर्धक में ग्रिड को कैथोड के सापेक्ष सदैव ऋणात्मक विभव पर रखते हैं क्योंकि:
   (क) इससे प्रवर्धन अधिक होता है
   (ख) अधिक प्रवर्धन को रोकने के लिए ऐसा करते हैं
   (ग) कैथोड के इलेक्ट्रानों पर नियंत्रण के लिए ऐसा करते हैं
   (घ) इससे ग्रिड परिपथ में धारा नहीं बहती और निर्गत वोल्टता का तरंग रुप निवेशित वोल्टता (इनपुट वोल्टेज) के समान होता है.

8. किसी वस्तु की तेज धार पर से प्रकाश के मुड़ने को कहते हैं:
   (क) व्यतिकरण (ख) विवर्तन
   (ग) अपवर्तन (घ) प्रकीर्णन.

9. एक लड़का समतल दर्पण की ओर 3 मीटर प्रति सेकंड की गति से आ रहा है. दर्पण में उसके प्रतिबिम्ब की उसके पास आने की दर होगी:
   (क) 1.5 मीटर/सेकंड
   (ख) 6 मीटर/सेकंड
   (ग) 4 मीटर/सेकंड
   (घ) 4.5 मीटर/सेकंड.

10. वोल्ट-सेकंड/ओह्म निम्न में से किसकी इकाई है:
   (क) बल की
   (ख) ऊर्जा की
   (ग) संवेग की
   (घ) आवेग की.

11. तार को खींचने पर निम्न में से क्या परिवर्तित हो जाएगा:
   (क) विशिष्ट प्रतिरोध
   (ख) प्रतिरोध
   (ग) यंग प्रत्यास्थता गुणांक
   (घ) तार के पदार्थ की विशिष्ट ऊष्मा.

12. सम आयतनी प्रक्रम के लिए निम्न में से कौन सम्बन्ध ठीक है:
   (क) $dQ = du$
   (ख) $dQ = -dv + dw$
   (ग) $du = -dw$
   (घ) $dQ = -dw$.

13. बर्तन में पानी को ठंडा करने के लिए उसको बर्फ पर रखने की अपेक्षा उसमें बर्फ डालना अधिक उपयुक्त है क्योंकि:
   (क) बर्फ पर बर्तन रखने से वह पिघल जाती है
   (ख) उस पर बर्तन के फिसलने का खतरा रहता है
   (ग) बर्तन में नीचे का पानी जमकर बर्फ बन सकता है जो बर्तन को तोड़ सकता है.
   (घ) बर्तन में पानी का ठंडा होना उसमें संवहन धाराओं के उत्पन्न होने पर अधिक निर्भर करता है जो बर्तन में बर्फ डालने पर ही संभव है.

14. यदि n ओह्म के n तार समान्तर क्रम में जुड़े हैं तो उनका परिणामी प्रतिरोध होगा:
   (क) n^2 ओह्म
   (ख) n ओह्म
   (ग) 1 ओह्म
   (घ) प्रतिरोध शून्य होगा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

15. $(P+\frac{a}{V^2})(V-b) = RT$ (वान्डर वाल समीकरण) में 'a' की विभा होगी.

(क) $[M^2 L^4 T^{-2}]$

(ख) $\frac{[L^5 T^{-2}]}{[M]}$

(ग) $[M L^5 T^{-1}]$

(घ) $\frac{[L^5]}{[M^{-1} T^2]}$

16. विमा की दृष्टि से निम्न में कौन सही है:

(क) $\upsilon = \frac{2}{h}$

(ख) $\upsilon = \frac{h}{g}$

(ग) $\upsilon = \frac{1}{gh}$

(घ) $\frac{h}{v^2} = \frac{1}{2}$

17. पानी में ध्वनि तरंगें होती है:

(क) अनुप्रस्थ

(ख) अनुदैर्घ्य

(ग) अप्रगामी

(घ) अनुप्रस्थ व अनुदैर्घ्य दोनों.

18. ध्वनि तरंगों में ध्रुवण का गुण:

(क) नहीं होता है

(ख) कम होता है

(ग) अधिक होता है

(घ) स्थिति के अनुसार सब संभव है.

19. वायलिन यन्त्र है:

(क) कम्पित छड़ वाला

(ख) कम्पित वायु स्तम्भ वाला

(ग) कम्पित झिल्ली वाला

(घ) कम्पित डोरी वाला.

20. तने हुए तन्तु की कम्पनावृत्ति निम्न में किस पर निर्भर नहीं करती:

(क) तन्तु की लम्बाई पर

(ख) द्रव्यमान पर

(ग) तनाव बल पर

(घ) तन्तु के पदार्थ पर.

21. अभिग्राही (रीसिवर) में निम्न में से कौन सा भाग नहीं रहता:

(क) एरियल

(ख) प्रवर्धक

(ग) माडुलक

(घ) सीकर.

079405

22. गुस्से में मनुष्य की ध्वनि का तारत्व बढ़ जाता है क्योंकि स्वर तन्तुओं में:

(क) तनाव घट जाता है

(ख) तनाव बढ़ जाता है

(ग) स्वर तन्तु मोटे हो जाते हैं

(घ) स्वर तन्तु पतले हो जाते हैं.

23. ध्वनि की तीव्रता निम्न में से किस पर निर्भर नहीं करती है:

(क) ध्वनि तरंग का आयाम

(ख) माध्यम का वेग

(ग) माध्यम का घनत्व

(घ) ध्वनि तरंग की लम्बाई.

24. यदि एक जेट विमान ध्वनि वेग से श्रोता से दूर जा रहा है तो उसे विमान की ध्वनि:

(क) नहीं सुनाई पड़ेगी

(ख) लगातार सुनाई पड़ेगी

(ग) कभी-कभी सुनाई पड़ेगी

(घ) क्षीण ध्वनि सुनाई देगी.

25. सुदूर प्रसारण के लिए शार्ट वेव (लघु तरंगें) प्रयुक्त की जाती हैं, मीडियम वेव (माध्य तरंगे) नहीं. इसका कारण है:

(क) मीडियम वेव भू तरंगों के रुप में दूर जाने पर क्षीण हो जाती हैं

(ख) मीडियम वेव शक्तिशाली नहीं होती

(ग) शार्ट वेव अधिक शक्तिशाली होती हैं

(घ) शार्ट वेव भू तरंगों के रुप में चलती हैं.

26. किसी वाद्ययन्त्र की ध्वनि पहचानी जाती है:

(क) तारत्व के कारण

(ख) तीव्रता के कारण

(ग) प्रबलता के कारण

(घ) गुणता के कारण.

27. माइक्रोफोन एक ऐसा यन्त्र होता है जो:

(क) ध्वनि तरंगों को विद्युत तरंगों में बदलता है

(ख) विद्युत तरंगों को ध्वनि तरंगों में बदलता है

(ग) ध्वनि तरंगों को प्रवर्धित करता है

(घ) विद्युत तरंगों को प्रवर्धित करता है.

28. डायोड प्रयुक्त होता है:

(क) प्रवर्धक में

(ख) दोलक में

(ग) संसूचक में

(घ) माडुलक में.

29. इलेक्ट्रोनिक वाल्व के तन्तु से:

(क) क्षेत्र उत्सर्जन होता है

(ख) तापायनिक उत्सर्जन होता है

(ग) प्रकाश वैद्युत उत्सर्जन होता है

(घ) द्वितीयक (सेकेंडरी) उत्सर्जन होता है.

30. विद्युत लाईन के घरेलू परिपथ में अधिक अधिभार (लोड) नहीं लगाना चाहिए. क्योंकि ऐसा करने से:

(क) मोटे तार का फ्यूज लगाना पड़ता है

(ख) परिपथ में सीमा से अधिक धारा बहने लगती है और विद्युत लाइन अथवा प्रयुक्त उपस्कर जल सकता है

(ग) वोल्टता अधिक हो जाती है

(घ) धारा कम हो जाती है.

उत्तर

1. (ख); 2. (ग); 3. (घ); 4. (क); 5. (ग); 6. (ग); 7. (घ); 8. (ख); 9. (ख); 10. (ख); 11. (ख); 12. (क); 13. (घ); 14. (ग); 15. (घ); 16. (घ); 17. (ख); 18. (क); 19. (घ); 20. (घ); 21. (ग); 22. (ख); 23. (घ); 24. (क); 25. (क); 26. (घ); 27. (क); 28. (ग); 29. (ख); 30. (ख)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेडिकल कॉलेज में प्रवेश ?

बहुत आसान है !

यदि आप प्रवेश–परीक्षा की तैयारी

TOCAB **Computer-aided STAM' 91**

(Short Term Assignment Module)

के द्वारा करें ।

- **यह है** — सरल अँग्रेजी भाषा में सक्षिप्त–अवधि (लगभग 2 माह) का विशेष पत्राचार–कोर्स ।
- **इसमे है** — 3400 से भी अधिक Multiple Choice Questions (MCQs), वस्तुनिष्ठ प्रश्न ।
- **इसकी विशेषता है** — आपके उत्तरो की TOCAB के अत्याधुनिक कम्प्यूटर द्वारा जाँच—जिसमें है आपकी गलतियों की विवेचना के साथ–साथ, सही उत्तर की व्याख्या ।
- **यह आपको तैयार करता है** — CBSE के All India Pre- Medical/ Pre-Dental Test 1991 (जिसके द्वारा विभिन्न मेडिकल कॉलेजो की 15% सीट भरी जाती है) तथा अन्य प्रादेशिक प्रवेश–परीक्षाओं के लिए ।

■ विवरण के लिए, आज ही लिखें :

TOCAB, 2324 (AW), हडसन लाइन
गुरू तेग बहादुर नगर, दिल्ली – 110009
दूरभाष : 721 20 26.

इन्जीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश ?

बहुत आसान है !

यदि आप प्रवेश–परीक्षा की तैयारी

TOCAB **Computer-aided STAM' 91**

(Short Term Assignment Module)

के द्वारा करें ।

- **यह है** — सरल अँग्रेजी भाषा में सक्षिप्त–अवधि (लगभग 2 माह) का विशेष पत्राचार–कोर्स ।
- **इसमे है** — 2500 से भी अधिक Multiple Choice Questions (MCQs), तथा अन्य वस्तुनिष्ठ प्रश्न और Numerical Problems for Competitions!
- **इसकी विशेषता है** — आपके उत्तरो की TOCAB के अत्याधुनिक कम्प्यूटर द्वारा जाँच—जिसमें है आपकी गलतियों की विवेचना के साथ–साथ, सही उत्तर की व्याख्या ।
- **यह आपको तैयार करता है** — IIT–JEE, Roorkee (Screening Test तथा Main Tests दोनो के लिये) DCE/DIT, UPSEE, BIT Ranchi AMU, PCET तथा अन्य प्रादेशिक प्रवेश–परीक्षाओं के लिए ।

■ विवरण के लिए, आज ही लिखें :

TOCAB, 2324 (AW), हडसन लाइन
गुरू तेग बहादुर नगर, दिल्ली – 110009
दूरभाष -: 721 20 26

"अच्छा ! अब हिन्दी में भी . . . !!"

TOCAB

की नई प्रस्तुती

Computer-aided Teleteaching Course

For ENGINEERING/MEDICAL ENTRANCE TESTS 1991

अब हिन्दी माध्यम में भी

2 अक्तूबर, 1990 से प्रारंभ

निःशुल्क **SAMPLE TEST EXERCISE**

अथवा

Prospectus के लिए

(पाँच रुपये के डाक टिकट सहित) तुरन्त लिखें

टॉकैब टेलीटीचिंग इन्सटीट्यूट
2324, (AW) हडसन लाइन्स,
श्री गुरु तेग बहादुर नगर, दिल्ली–110 009
दूरभाष : 721 20 26

A division of "TOP CAREER BUILDERS PVT. LTD."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविष्कारक . . .

आपका आविष्कार एक बालक के समान है, जिसे चाहिए सुरक्षा और सहारा

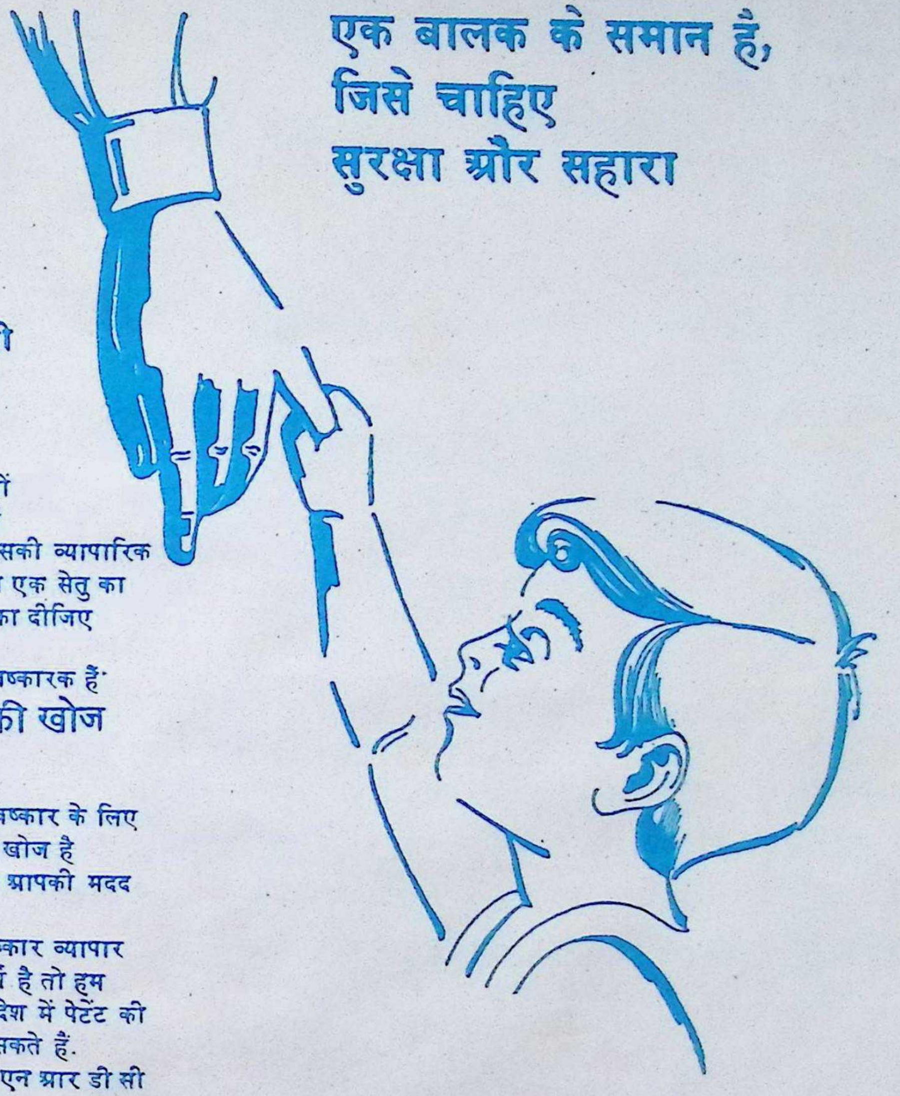

आइए एन आर डी सी के साथ बढ़िए

हमें अपने
विचारों और उद्यमों
उद्यमों व परिणामों
आविष्कार और इसकी व्यापारिक
उपयोगिता के बीच एक सेतु का
काम करने का मौका दीजिए

यदि आप एक आविष्कारक हैं
और अवसर की खोज में हैं,

या फिर अपने आविष्कार के लिए
आपको बाजार की खोज है
तो एन आर डी सी आपकी मदद
कर सकता है.
यदि आपका आविष्कार व्यापार
की संभावना से पूर्ण है तो हम
इसे भारत और विदेश में पेटेंट की
सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं.
आपका आविष्कार एन आर डी सी
का पुरस्कार भी जीत सकता है,
जो साल में दो बार, सराहनीय
आविष्कारों के लिए दिया जाता है.
एन आर डी सी आपके आविष्कार
पर आधारित पायलट संयंत्रों/
प्रोटोटाइपों के विकास के लिए
वित्तीय सहायता भी दे सकता है.
हम आपके आविष्कार के
व्यापारीकरण के लिए उद्यमी की
पहचान कर सकते हैं.

देर न कीजिए आज ही लिखिए !

एन आर डी सी
NRDC

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र
कैलाश कालोनी एक्सटेंशन
नई दिल्ली-110048
फोन. : 6419945, 6432121, 6432627
टेलीग्राम : अनुसंधान विकास
टेलेक्स-031-71358

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

D(SE)48/90

"भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक के कार्यालय
नई दिल्ली में पंजीकृत, पंजीकरण संख्या : आर०एन० 21740/71"

उपयुक्त प्रौद्योगिकी के विकास और संवर्धन की
त्रैमासिक पत्रिका

07940S

"ग्राम शिल्प"

यदि आप गांव में रहते हैं
गांवों के विकास से सम्बन्धित कार्य में लगे हैं
या गांवों की समस्याओं का हल
विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सहायता से करना चाहते हैं
और गांवों में विज्ञान और प्रौद्योगिक जानकारी का
प्रसार करने में रुचि रखते हैं

तो **"ग्राम शिल्प"**

आपकी पत्रिका है

ग्रामीण प्रौद्योगिकी पर नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन की त्रैमासिक पत्रिका "ग्राम शिल्प" का वार्षिक मूल्य 3 रुपए और एक प्रति का मूल्य 1 रुपया है. एक से अधिक वर्ष के लिए चन्दे की रियायती दरें उपलब्ध हैं. ग्राहक बनने के लिए मूल्य मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट द्वारा निम्न पते पर भेजें. विज्ञापन की दरों के लिए लिखें:

एन.आर.डी.सी
NRDC

प्रबन्ध निदेशक
नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
(भारत सरकार का उपक्रम)
20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केन्द्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन
नई दिल्ली-110048

एजेंटों के लिए आकर्षक कमीशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, नई दिल्ली के लिए श्री डी०एन० भटनागर द्वारा सम्पादित और प्रकाशित तथा तारा आर्ट प्रेस, वी-4, हंस भवन, वहादुरशाह ज़फर मार्ग, नई दिल्ली-110002 में मुद्रित.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar